प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय,
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली–१

पहली बार : १९५९
अल्पमोली-संस्करण
मूल्य : डेढ रुपया

मुद्रक
युगान्तर प्रेस,

प्रकाशकीय

हर आदमी तंदुरुस्त रहना चाहता है, लेकिन दुर्भाग्य से बहुत कम लोग जानते हैं कि स्वस्थ रहने के लिए हमे किस प्रकार रहना चाहिए, हमारी वेश-भूषा कैसी होनी चाहिए, हमे किस प्रकार का भोजन करना चाहिए, प्रकृति की देनो का लाभ किस तरह लेना चाहिए, आदि-आदि। परिणाम यह कि लोग बीमार पडते हैं और अपनी अजानकारी के कारण अपने रहे-सहे स्वास्थ्य को तो बिगाडते ही हैं, पैसे की भी बरबादी करते हैं।

एडोल्फ जस्ट की यह पुस्तक इस दिशा मे बडे काम की है। इसमे तन्दुरुस्त रहने के इतने सरल उपाय बताये गये हैं कि उन्हें हर कोई कर सकता है, साथ ही यह भी बताया है कि बीमार पडने पर बिना विशेष खर्च के हम बीमारी से कैसे छुटकारा पा सकते है।

पुस्तक की व्यापक उपयोगिता को देखते हुए हमारी इच्छा है कि इसका सब जगह प्रचार हो और इसीलिए इसका मूल्य इतना कम रक्खा गया है।

हमे विश्वास है कि पाठक स्वय तो इस पुस्तक को पढेंगे ही, अपने मित्रो को भी इसे पढने की प्रेरणा देंगे।

—मत्री

निवेदन

'प्राकृतिक जीवन की ओर' एडोल्फ जस्ट की प्राकृतिक चिकित्सा-संबंधी साहित्य मे बेजोड़ पुस्तक 'रिटर्न टु नेचर' का अनुवाद है।

गांधीजी ने 'आत्मकथा' मे अपने प्राकृतिक चिकित्सा-प्रेम का भी उल्लेख किया है और बताया है कि 'रिटर्न टु नेचर' ने ही उनको प्राकृतिक चिकित्सा की ओर आकृष्ट किया तथा इसके प्रयोगो से, विशेपकर मिट्टी के प्रयोग से, उन्होंने स्वयं तो लाभ उठाया ही, औरों को भी लाभान्वित किया। यह पढ़ते हुए इच्छा हुई कि अगर इस 'रिटर्न टु नेचर' का अनुवाद होता तो बहुत-से लोग लाभ उठा सकते थे।

– सन् १९३६ में जब मैं प्राकृतिक चिकित्सा से परिचित हुआ तो 'रिटर्न टु नेचर' का भी परिचय मिला और ज्ञात हुआ कि प्राकृतिक चिकित्सा के मूल सिद्धांतों को समझने के लिए यह पुस्तक अत्यावश्यक है—यह तो नीव का वह पत्थर है जिस पर प्राकृतिक चिकित्सा की सारी इमारत खड़ी की गई है। १९४१ मे एक मित्र के पास यह पुस्तक मिली। उसे पढ़ा। लगता था, कविता पढ रहा हूं, लेखक सादगी से सत्य का अन्वेषण करता जा रहा है और उसके प्रकाश मे हमारा मोह, हमारी मूढता, हमारी गलत धारणाएं विलीन होती जा रही है। गांधीजी की आत्मकथा के बाद यह पुस्तक थी, जिसने मुझे इस कदर सोचने का सामान दिया।

इच्छा हुई कि इसका मैं अनुवाद करूं। उस समय इच्छा ने और जोर पकड़ा—जब यह ज्ञात हुआ कि हिंदी को छोड़कर हिन्दुस्तान की प्रायः सभी मुख्य भाषाओ मे इसके अनुवाद मौजूद है और गुजराती मे तो इसके एक नहीं, पांच-पाच अनुवाद हुए हैं।

सन् १९४३ में गोरखपुर-जेल मे नजरबंदी के दिनो मे मैने इसका अनुवाद आरंभ किया और जून १९४४ में, जब मैं नजरबंदी से रिहा किया गया, यह

अनुवाद पूरा हो चुका था।

मुझे हर्ष है कि पुस्तक का अल्पमोली संस्करण पाठको के हाथो मे पहुच रहा है।

गांधीजी सन् १९४६ मे प्राकृतिक चिकित्सा की ओर विशेष रूप से झुके थे और अपना शेष जीवन इसी मे लगाना चाहते थे। २ जून १९४६ के 'हरिजन' मे उन्होने लिखा था, "कूने, जस्ट और फादर कनाइप ने जो लिखा है, वह सबके लिए है और सब जगहो के लिए है; वह सीधा है, उसे जानना हमारा धर्म है। कुदरती इलाज जानने वालो के पास उसकी थोड़ी-बहुत जानकारी होती है और होनी चाहिए।" यहां जस्ट से मतलब उनकी उक्त पुस्तक 'रिटर्न टु नेचर' से ही है।

[signature]

विषय-सूची

प्राकृतिक जीवन की ओर

: १ :

प्रकृति के बोल

सृष्टिकर्ता ने मनुष्य को सर्वथा नीरोग और सदाचारी बनाया, न शरीर मे कोई मलिनता थी न आत्मा मे। भला सर्वशक्तिमान्, सर्व-मंगलमय, सर्वज्ञ ईश्वर की रचना अपूर्ण, सदोष, रोगी, पापी, कंगाल और दुःखी कैसे हो सकती थी ! मनुष्य पाप-ताप से विमुक्त आनंदपूर्ण स्वर्ग मे रहता था। इसी स्वर्गीय आनद की बात सुनने पर लोग स्वर्ग को पृथ्वी की नहीं, आकाश की वस्तु मानने लगते हैं। यह सकारण है।

आज कही एक भी तो मनुष्य स्वस्थ नही दिखाई देता। पृथ्वी पर सर्वत्र रोग और शोक का साम्राज्य है। जन्म से मृत्युपर्यंत मनुष्य को रोग और दुःख घेरे रहते हैं। संसार से आत्मीयता, भ्रातृभाव उठ गये हैं। घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, पाप और अपराधों ने चारो ओर पाव फैला रखे है। आज एक भी ऐसा व्यक्ति नही मिलेगा जो चिंता, कष्ट, शोक, संताप, उदासी और नैराश्य से घिरा हुआ न हो।

मनुष्य इस दशा को क्यो पहुंचा ? प्रकृति की अवहेलना कर विज्ञान के भ्रम-जाल मे पड़ने के कारण।

प्रकृति-माता तो आज भी हमे स्वास्थ्य का सीधा और सुगम मार्ग बताने को कुठित नही है।

प्रकृति की सीख पर ध्यान न देने के कारण ही मनुष्य हजारो किस्म के रोगों का शिकार बना हुआ है। वन के पशुओ और गगनचारी पक्षियो

ने कभी अपने सिर पर से प्रकृति-माता का वरद हस्त हटने नही दिया; अतः वे रोगों से मुक्त तो हैं ही, उनमे पाप और अपराध-सरीखी वस्तु भी नही पाई जाती ।

आज प्रकृति के प्रागण मे कदाचित् ही कोई स्थान हों जो मनुष्य के हाथ की सफाई की करामात से अछूता हो, जहां अपना कुशल कर लगाकर कुछ-न-कुछ विगाड़ न दिया हो। इस कारण पशुओं या पेड़ों मे रोगों के कुछ चिह्न मिल जायेगे, पर मनुष्य के अनंत दुःख और घोर कष्टों की तुलना मे उनकी कोई गिनती नही है ।

प्रकृति के संपर्क मे रहनेवाले पशु-पक्षी सर्वदा एवं सर्वथा नीरोग रहते हैं; पर उन्मुक्त प्रकृति से उनका संबंध-विच्छेद कर देने पर, प्रकाश, वायु, पृथ्वी और जल से उनका ताल्लुक तोड़ देने पर उन्हे वह आहार नही मिलता जो प्रकृति ने उनके लिए उपजाया है; और तब वे सहज मे रोगों के पजे मे फंसने लगते है ।

विज्ञान का चश्मा अपनी आंखो से उतारकर खुले दिल और दिमाग से प्रकृति की ओर देखने पर हमे स्पष्ट दिखाई देता है कि हमारे रोगी वने रहने का एकमात्र कारण है हमारा प्रकृति के वोल पर ध्यान न देना । हम उसके प्रत्येक नियम को कुचलते चलते हैं, हम उसके वताये रास्ते से भटके हुए है ।

प्रकृति की न्याय-परायणता के संवध मे दो मत नही हो सकते । जहां वह अपना कोई भी नियम भंग करनेवाले अपराधी को दंड देती है वहां उसके नियमानुसार चलने पर वह पुरस्कार देना भी नहीं भूलती ।

कैसा भी कोई रोग क्यो न हो, मनुष्य उससे मुक्त होने का अधिकारी है, अपनी नियत प्रसन्नता प्राप्त करने का हकदार है । एकमात्र मार्ग उसका यही है कि वह ईमानदारी से प्रकृति की शरण

जाय। उसे प्रकृति के बोलों पर चलने की हर तरह से कोशिश करनी चाहिए। भोजन उसे वही ग्रहण करना चाहिए जो प्रकृति-माता ने उसके लिए अपने हाथों पकाया है। उसे जल, वायु, आकाश, पृथ्वी और प्रकाश से प्राकृतिक संबध जोड़ना चाहिए। प्रकृति की भाषा अत्यत सुबोध है, वह अपने आदेश सब प्राणियो को—पशु और मनुष्य दोनो को बहुत स्पष्ट रूप मे देती है।

प्रकृति की कभी यह इच्छा नही रही है कि मनुष्य जीवन के सच्चे रास्ते और स्वास्थ्य-प्राप्ति की सरल पद्धति के सबध मे इतना अनभिज्ञ और इतना परेशान रहे कि उसे अपने साथियो से इन नियमो पर वाद-विवाद करना पडे और अपनी अनभिज्ञता के कारण उसे चिंता और शका का शिकार बनना पडे। अब हम मनुष्य से शिक्षा न लेकर प्रकृति की सीख सुनेगे।

प्रकृति के सिखावन के ढग कुछ निराले है। उसकी शिक्षा न पुस्तको मे लिखी मिलती है न वह बद कोठरियो मे बिठाकर शिक्षा देती है। वह अपनी इच्छा को साफ-साफ और सही-सही मनुष्य की नैसर्गिक प्रवृत्ति और ज्ञानेद्रियो द्वारा प्रकट करती है। सयत मनुष्य का विवेक भी जागृत रखती है।

ससार के हर हिस्से के जगली कहानेवाले लोग आज भी स्वास्थ्य-सबंधी नियमो का पालन करते है। यह सर्वविदित है कि प्रकृति के इन बच्चो की ज्ञानेद्रिया इतनी तेज और नैसर्गिक प्रवृत्ति इतनी सतर्क होती है कि स्वास्थ्य के लिए हानिकर या उसे जोखिम मे डालने-वाली किसी भी वस्तु को वे तुरंत ताड़ जाते है। उदाहरणार्थ, वे न कभी वनस्पति-शास्त्र का अध्ययन करते है न किसी अन्य शास्त्र का, पर जहरीले पौधो को पहचानने मे वे कभी धोखा नही खाते।

पहले विकसित मनुष्य-जाति का सुसभ्य प्राणी भी जीवन-समुद्र

तरने के लिए शुभ नक्षत्रों से ही प्रकाश लेता था और रोग एवं दुःख से वचा रहता था, पर उसकी बुद्धि के विकास में 'अपनी बुद्धि से अपना नाश' रूपी खतरा छिपा हुआ था।

पशु से ऊपर मनुष्य को जो बुद्धि मिली है वह इसलिए कि वह ईश्वर के साथ अपना संवंध समझ सके, ईश्वर के शिव और सुदर रूप को जान सके और प्रभु के योग्य पुत्र की भांति आचरण कर अपना जीवन उन्नत कर सके। मनुष्य की बुद्धि मे ही मनुष्य की विशिष्टता की पराकाष्ठा छिपी हुई है, पर मनुष्य ने अपनी बुद्धि का उपयोग किया अपनेको कुदरत के रास्ते से अलग करने मे। पहले उसने प्रकृति के वोल की ओर से अपने कान वंद किये और अपनी तर्क-शक्ति की प्रेरणा पर चलने लगा। उसमे अपना शिक्षक और अपना नियता स्वयं वनने की इच्छा उत्पन्न हुई; वह अपना ईश्वर आप ही वन वैठा। अपनी तर्क-शक्ति और बुद्धि-वल को उसने विशेष एवं कठिन अध्ययन-अन्वेषण में लगाया। उसके आधार पर उसने जीवन के लिए भोजन, वस्त्र, कार्य, शिक्षा इत्यादि के वर्तमान नियम वनाये। यही से आधुनिक सभ्यता का जन्म हुआ।

मानव-बुद्धि के इस दुरुपयोग द्वारा विज्ञान की उत्पत्ति हुई। ऐसी गलत नीव पर खड़े किये गए विज्ञान से अनर्थ के सिवा और क्या आशा की जाती ?

यहां हम औषधोपचार, रसायनशास्त्र, देह-रचनाशास्त्र और जीवन-विज्ञान के उपदेशों एवं उनके द्वारा प्रस्तुत प्रमाणों पर विचार करेंगे।

कुदरत की आवाज हमेशा मनुष्य के प्रति ईमानदारी रही है, पर विज्ञान वाइविल की कथा के सर्प की भाति प्रारंभ से ही उसे धोखा देने, पथ-भ्रष्ट करने और गलत शिक्षा देने मे लगा रहा। यद्यपि प्रारंभ से ही विज्ञान की प्रशंसा के गीत गाये जाते रहे हैं कि यह सुख-शाति

का प्रदाता है, पर मनुष्य ने विज्ञान की जितनी ही अधिक सुनी, विशेषतः औषध-विज्ञान की, उतना ही वह रोग और दुर्भाग्य का अधिकाधिक शिकार बना।

निश्चित रूप से स्वास्थ्य और सुख प्राप्त करने का एक ही उपाय है कि मनुष्य विज्ञान और विज्ञानसम्मत सभी वस्तुओ से किनाराकशी अख्तियार करे।

विज्ञान के इस धूर्त सर्प से पूर्णत अपनी रक्षा कर सकना तो अत्यत कठिन है, क्योकि बचपन से ही मनुष्य के कानो मे विज्ञान की गुनगुनाहट पडती रही है और पोथियो द्वारा भी यह विष उसके दिमाग मे पहुंचता रहा है। मनुष्य का अधिकाश स्वास्थ्य और सुख इसी विज्ञान की भेट हो गया है, तथापि आज जिधर देखो उधर देवता की भाति विज्ञान की पूजा हो रही है।

शका-कुशंकाओ को त्यागकर अब जब एक बार फिर मनुष्य प्रकृति का आश्रय लेने को तैयार हुआ तो विज्ञान आरोग्यशास्त्र, रोगशास्त्र, कीटाणुवाद, पौष्टिक भोजन, आवश्यक क्षार, सर्दी-गरमी इत्यादि की पुकार मचाकर उसे पथ-भ्रष्ट करने पर तुला हुआ है। ऐसी दशा मे मनुष्य का भटक जाना बहुत आसान है, पर उसे चाहिए कि सब ओर से ध्यान हटाकर प्रकृति की आवाज, नैसर्गिक प्रवृत्ति, विवेक और ज्ञानेंद्रियो पर चलने का प्रयत्न करे।

प्रश्न यह उठता है कि क्या आज का मनुष्य प्रकृति से वही पथ-प्रदर्शन प्राप्त कर सकता है जो पशु अपनी नैसर्गिक प्रवृत्ति के द्वारा पाता है ?

इसमे सदेह नही कि मनुष्य को प्रकृति की आवाज पर चलना बद किये एक युग हो गया। इस कारण उसकी नैसर्गिक प्रवृत्ति और विवेक कुठित हो गये हैं और ज्ञानेद्रिया निस्तेज हो गई है तथापि हमारे पथ-

प्रदर्शन करने भर को वे पर्याप्त हैं। कविवर गेटे ने लिखा है :

"हमारे हृदय में बैठा हुआ देवता बहुत मंद-मंद बोलता है, आवाज धीमी है उसकी, पर है स्पष्ट। वह देवता हमें बताता रहता है कि हम क्या ग्रहण करें और क्या नहीं।"

प्रकृति की वाणी पर ध्यान देना आरंभ करने पर एक बार फिर प्रत्येक वस्तु मेरे सामने स्पष्ट हो गई। विशेष-विशेष विषयों के संबंध का ज्ञान, जिसकी प्राप्ति की मुझे आवश्यकता थी, प्राप्त हो गया। इसके लिए मुझे किसी प्रकार के अन्वेषण या शोध में अपना समय गंवाना नही पड़ा।

जो कुछ मैने सीखा है कुदरत से ही सीखा है। उसीने मुझे रास्ता दिखाया है।

मनुष्य जितना ही अधिक प्रकृति की ओर ध्यान देगा उतना ही उसका विवेक और नैसर्गिक प्रवृत्ति जाग्रत होगी और ज्ञानेंद्रियां तेज होगी। आज भी वह बच्चों और पशुओं से प्रकृति के निर्देशों के संबंध में बहुत-कुछ सीख सकता है। इन सौभाग्यशाली जीवों ने अपने पथ-प्रदर्शक के भावों की रक्षा की है। हर गाढ़े समय पर हमे इनसे सहायता लेंनी चाहिए।

विज्ञान के मोहक रूप से बचने की शक्ति प्राप्त कर लेने पर प्रकृति मनुष्य का आसानी से पथ-प्रदर्शन कर सकेगी। फिर स्वास्थ्य और सुख के मिलने मे क्या देर लग सकती है ? तब मनुष्य की दशा समुद्र मे पड़ी उस बेपतवार की नाव की भांति नही रह जायगी जिसके भाग्य मे चट्टानो से टकराकर टूट जाना ही बदा है।

: २ :

प्राकृतिक स्नान

पिछली शताब्दी मे अनेक प्रतिभाशाली एव महान् व्यक्ति प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली के उन्नयन मे लगे रहे। उनकी प्रतिभा ने उन्हे प्रकृति के नियमों से परिचित कराया। प्रिसनीज, स्क्राथ, ग्रेहम, रूसो, रिकली, कनाइप, कूने, डेंसमूर, ट्राल आदि ने इस दिशा मे महान् कार्य किये और अक्षय कीर्ति कमाई। उन्होने अधेरे मे से प्रकाश की किरणे खोज निकाली।

पर इन सभी सज्जनो ने नैसर्गिक प्रवृत्ति को पथ-प्रदर्शन का मौका नही दिया। और न कभी प्रकृति की अन्य सब आवाजो का, जिनका मैंने अक्सर जिक्र किया है, पूरी ईमानदारी से अनुसरण किया। उन्होंने बच्चो और पशुओं के जीवन का भी पूरा अध्ययन नही किया। ये छोटे प्राणी आज भी इस सभ्यता के युग मे पले प्रौढ़ मनुष्यो की अपेक्षा प्रकृति की राह का अधिक अनुसरण करते है। इन सज्जनों ने प्रकृति के उपादानो एवं इच्छाओ पर भी ध्यानपूर्वक और समझदारी से विचार नही किया, इसलिए उनकी शिक्षा और उनका बताया मार्ग पूर्ण नही है। उसमे अनेक भूले और गलतिया मिलती हैं। उनकी उपचार-पद्धतियो को लोग बहुत-कुछ भूल गये है और वह दिन दूर नही है जब वे विस्मृति के गर्त मे सर्वथा विलीन हो जायंगी।

मनुष्य को प्रकृति से अपना संबंध-विच्छेद किये हजारो वर्ष हो गये। अब धीरे-ही-धीरे वह प्रकृति और उसके नियमो के सबध मे अपना कर्तव्य समझ सकता है।

प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली के निर्माण मे हाथ बटानेवाले सभी सज्जन हमारी अधिक-से-अधिक प्रशंसा के पात्र है। वे प्राकृतिक

नियमों के निकट पूरी तरह से नही पहुच सके एव उनकी पद्धति सदोष है—इसके लिए न तो हमे उनकी निंदा करनी चाहिए और न उन्हे दोषी ठहराना चाहिए।

दुनिया के सभ्य समाज में हुए अवतक के सभी आदोलनों में प्राकृतिक चिकित्सा-संवंधी आंदोलन सवसे अधिक गंभीर और शक्तिशाली है। उसका सवंध मनुष्य की सवसे वड़ी निधि—स्वास्थ्य से है। स्वास्थ्य पर ही उसके जीवन के सारे आनंद एवं खुशिया निर्भर हैं और स्वास्थ्य ही उसे प्रत्येक प्रकार के दुःख, कष्ट और त्रास से वचा सकता है। अतः इस विपय पर अपने विचार प्रकट करते समय हमे न किसीके संवंध में चुप रहने की जरूरत है और न किसीके दोषों पर परदा डालने की। हमें चाहिए कि इस महान् कार्य मे लगे हुए लोगों पर अपनी सतर्क दृष्टि रखे और प्रत्येक वस्तु, हित और व्यक्ति को उसके सामने गौण समझे।

इस दृष्टि से मै पहले की प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति और पुराने ढंग के शाकाहार की गलतियां प्रकाश मे लाने से नही झिझकूगा, पर ऐसा करने मे किसीको कष्ट पहुंचाने की मेरी ज़रा भी इच्छा नही है।

अव मै एक ऐसी जीवन-पद्धति और चिकित्सा-पद्धति का जिक्र करूंगा जिसका विज्ञान से कोई संवध नही है। इसमे हमे, जैसा कि मैंने पहले कई वार कहा है, प्रकृति-गुरु से पथ-प्रदर्शन प्राप्त करना होगा और निश्चय ही एक दिन एक उज्ज्वल सुदर प्रभात की वेला मे तमसावृत गगन को भेदकर सूर्य की किरणे प्रस्फुटित होगी और मानव-जाति प्रसन्नतापूर्वक उसका स्वागत करेगी।

यह चिकित्सा-पद्धति प्रकृति-गुरु की भाति ही अत्यत सीधी और आसान है। इस पद्धति मे सभी रोगों और रोगियों की एक ही प्रणाली

से चिकित्सा होती है और इसकी मान्यता है कि सभी रोगो का कारण अप्राकृतिक जीवन है तथा प्रकृति के नियमो एवं कार्यो मे कही वैषम्य नही है। मेरी धारणा है कि सभी प्रचलित प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धतिया धीरे-धीरे इस एक सच्ची प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति मे विलीन हो जायगी।

इस पद्धति मे, जिसे सीखना कहा जाता है उस अर्थ मे, सीखने को कुछ नही है। कोई भी, जिसने अपनेको आधुनिक विज्ञान की चकाचौंध से मुक्त कर लिया है एव बुद्धिमत्ता को आधुनिक अर्थो में ग्रहण करने से अपनेको बचा लिया है, इसका व्यवहार कर सकता है। इस पद्धति का अनुसरण करनेवाला सारे चिकित्सक-समुदाय, भेषज-पडितो आदि की गुलामी कर लेने और परवशता से बच जाता है।

प्रकृति कभी गलती नही करती। अत. प्रकृति मे वह विरोधाभास और चूक नही है, जिसके कारण लोग प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली को अपनाते झिझकते है।

जो रोगी हर तरह का पथ-प्रदर्शन प्रकृति से ही प्राप्त करता है उसे प्रकृति विना किसी प्रकार की कठोरता दिखाये, वडी कोमलता से, विना कष्टकर अभावो मे डाले, वडे आराम, मौज, शीघ्रता और निश्चयात्मक भाव से स्वास्थ्य, शक्ति और जीवन के तेजोमय कुसुमो से भरे, हरे-भरे प्रकाशपूर्ण उद्यान का अधिकारी वनाती है। सवसे वड़ी वात तो यह है कि सख्त-से-सख्त प्राणलेवा रोग, जिन्हे देखकर चिकित्सक अपनेको असहाय पाता है, प्रकृति के हाथो पड़कर अपनी सारी भयकरता खो देते और नष्ट हो जाते है।

सच्ची प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति की रोग-भंजक शक्ति मस्तिष्क और आत्मा तक पहुचती है। दिमाग के काले परदे फट जाते हैं और

आत्मा स्वास्थ्यदायक शक्ति-जल मे अवगाहन करती है। मनुष्य पाप, दोष, घृणा, ईर्ष्या एवं अशुभ चिंतन से मुक्ति पा जाता है और पीड़ित मनुष्य के हृदय मे फिर शांति, आनंद, मातृभाव एवं प्रसन्नता को स्थान मिलता है।

अंत मे नूतन वसंत अपनी उषा-सुंदरी लिये अवतीर्ण होता है और मनुष्य को इस पृथ्वी पर स्वर्ग का आनंद मिलने लगता है।

मै अपनी चिकित्सा करते वक्त एक वार प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली की गलतियों, उलझनों एवं इसके द्वारा मनुष्य और प्रकृति के वीच खड़े किये गए झगड़े को देखकर इससे भाग खड़ा हुआ था। जिस प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति का मै वर्णन करने जा रहा हूं, अंत में जाकर उसीमे मुझे सत्य, शांति और आनंद मिला।

जव इस शताव्दी मे लोगों ने नैसर्गिक प्रवृत्ति द्वारा प्रेरित होकर एक वार फिर प्रकृति की राह पकड़ी तो उन्हे ज्ञात हुआ कि सभी रोग शरीर एव रक्त के दूषित होने—उनमे रोगों के कीटाणु एवं विजातीय द्रव्य के प्रवेश पाने से होते हैं। इस सत्य की जानकारी के वाद औषधोपचार की सीख के अनुसार रोगियों के शरीर मे विष एवं कोई भी विजातीय वस्तु—दवा आदि डालकर रोग का भूत भगाने की कोशिश वंद कर दी गई। फिर लोगों ने रोगी शरीर मे से विजातीय द्रव्य निकालने की कोशिश प्राकृतिक उपचार के केवल एक साधन—जल द्वारा की।

इस दिशा मे विंसेट प्रिसनीज नामक एक किसान सज्जन अग्रणी थे, इसलिए उन्हें आधुनिक प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली को सही नीव पर खड़ा करनेवाला पहला आदमी कहना चाहिए।

आरभ मे जल-चिकित्सा-प्रणाली ही प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली थी। पहले-पहल केवल जल-चिकित्सालय स्थापित हुए।

इसलिए मेरी पहली कोशिश यही हुई कि मै स्वय पहले प्रकृति से जल के सही प्रयोग सीखू ।

इस कोशिश मे मैंने महसूस किया कि मेरी अतर्ध्वनि, जिसे नैसर्गिक प्रवृत्ति कहना चाहिए, जल के किसी खास प्रयोग के लिए प्रेरित नही कर रही है ।

पर मुझे कुछ वनवासियो से ज्ञात हुआ कि प्रकृति के प्रागरण मे विचरनेवाले पशु, जो अपने सारे कार्य नैसर्गिक प्रवृत्ति के अनुसार करते हैं, स्नान के विषय मे कुछ खास नियम बरतते हैं ।

मैने उनकी आदतो का अध्ययन करना आरंभ किया और इन तथ्यो पर पहुंचा ।

नदी मे कूदकर और सारे बदन को धो-धोकर नहाना प्रकृति के अनुकूल नही है । नदी अथवा टब मे नहाते वक्त सारे बदन को भिगोना प्रकृति के विरुद्ध है ।

धरती पर विचरनेवाले पशु नहाते वक्त सारे बदन को भिगोना नापसद ही नही करते वरन् ऐसा करते घबराते भी हैं । अगर आप किसी पशु (खास तौर से बदर) को पानी मे उछाल दे तो देखेंगे कि वह बडी आतुरता से किनारे पर पहुंचने की कोशिश करता है । ऐसा प्रतीत होता है कि सभी पशु बडी अनिच्छा से और सो भी दवाव पड़ने पर ही स्नान करते है ।

अप्राकृतिक जीवन व्यतीत करने के आदी घरेलू पशुओ मे से इक्के-दुक्के पानी से प्रीति करनेवाले मिल जाये तो उन्हे नियम का अपवाद ही समझना चाहिए ।

देखा यह जाता है कि पृथ्वी पर विचरण करनेवाले उच्च प्रकार के पशु (स्तनपायी पशु), खास तौर से जंगली सूअर और हिरन, मुक्त प्रकृति के साथ (जगल मे) रहते समय आदतन छोटे पकिल

दलदलो या गढो मे लोटते है। पहले वे धरती से केवल अपना पेट सटाते हैं, फिर उसे कीचड मे इधर-उधर से रगडते हैं ।

इसके बाद पशु उठता है और साधारणतया अपना कूल्हा और गुदा-द्वार कीचड़ मे गड़ाकर बैठता है। इसके बाद वह कुछ क्षण तक कीचड़ मे लोटता है, उसका सारा बदन धरती के सपर्क मे आ जाता है और फिर उठकर वह अपने सारे शरीर को सूखी जमीन, पेड़ या अन्य किसी चीज पर रगडता है। पशुओं की इस क्रिया को शिकारी लोग 'गदहलोट' कहा करते है।

अब देखिये पक्षी क्या करते है। वे सोते या नाले पर जाकर अपनी गरदन पानी में डुबोते हैं और इस प्रकार गरदन और पीठ के बीच बनी गहरी जगह के द्वारा और पखो को पानी मे छपककर अपने शरीर पर पानी छिड़कते है। फिर वे अपनी चोच, गरदन और पंख-कुहनियों (यह नाम मै दो पंखों के जोड को दे रहा हूं क्योंकि उसकी शकल मनुष्य की कुहनी-सी होती है) से अपने शरीर को रगड़ते या घिसते हैं।

कई बार यह निरर्थक प्रश्न किया गया है कि जबकि पक्षी केवल स्वच्छ जल मे स्नान करते है, हमारे जगल का राजा सुदर लाल हिरन, जो हमेशा अपने शरीर को साफ रखता है, अपनी माद को भी गंदी होने से बचाता है तथा और हर तरह से भी साफ रहता है, नहाते वक्त कीचड़ मिले जल मे क्यों लेटता है ?

इस संबध मे मेरा मत यह है कि स्तनपायी पशु कीचड़ मे इसलिए नहाते है कि वे अपने पेट और जननेंद्रिय को कीचड़ मे अच्छी तरह रगड़ और घिस सके। बहते स्वच्छ जल के नीचे की कठोर भूमि पर ऐसा कर सकना सम्भव नही है।

पक्षियों की बनावट पशुओं से भिन्न होती है। वे अपने शरीर

को अपने अनेक अगों से रगड और घिस सकते है। अत. उन्हे इस कार्य के लिए कीचड की जरूरत नही होती।

कीचड़ की आवश्यकता शरीर को रगड़ने के लिए ही होती है, इस बात को जंगल मे रहनेवाले सभी लोग युक्तिपूर्ण मानते है।

तब यह बात तो साबित हो जाती है कि उच्च प्रकार के पशु स्नान करते हैं।

अन्य पशु इसलिए स्नान नही करते कि प्रकृति ने उन्हे ऊचे पहाड और पथरीली जगह मे रहने को बनाया है, जहा जल सदा नही मिलता। हिंसक जानवर भी स्नान नही करते। वे क्यो स्नान नही करते यह भी स्पष्ट[1] है। स्नान से शाति मिलती है, यदि शिकार पर जीनेवाले जानवर शात हो जाय तो उनका काम ही बिगड़ जाय। उनके लिए यह स्वभावत· आवश्यक है कि वे खूख्वार और गरम बने रहे, तभी वे अपना शिकार कर सकते है। उनकी खून की यह चाह[2] ही उनके मासाहारी होने का कारण है।

फिर कोई कारण नही कि जीवों का सिरमौर मनुष्य क्यो न

---

[1]घरेलू कुत्ता जब तेज गरमी पडती है तो कभी-कभी पानी की जगह मे चला जाता है, इसे स्नान का नाम नही दिया जा सकता।

[2]मासाहार के कारण शिकारी जानवर के मुंह मे खून किस प्रकार लग जाता है, यह आसानी से समझा जा सकता है।

शिकारी कुत्ता जबतक उसे निरामिष भोजन दिया जाता है, शिकार पर हमला न कर केवल शिकार को हाकने का काम करता है, पर ज्योही उसे गोश्त खिलाने लगते हैं, वह शिकार को पकडने और मारने का काम करने लगता है।

एक अजायबघर के एक बदर का स्वभाव बडा स्नेही और शात था, पर जब उसे गोश्त खिलाने लगे तो वह बदमिजाज हो गया और अपने रखवाले को भी, जिससे पहले उसकी दोस्ती थी, काट खाने को दौडने लगा।

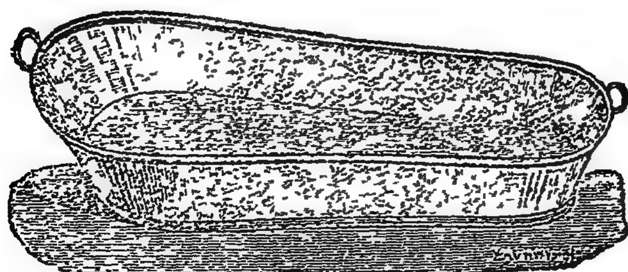
यदि शिकारी जानवर क्रूर और खूख्वार न हो तो शिकार कर ही न सके।

स्नान करे। यही मानना ठीक होगा कि प्रकृति चाहती है कि मनुष्य स्नान करे ताकि उसकी शारीरिक और आध्यात्मिक शक्ति बनी रहे और उनका पूर्ण विकास हो सके।

मनुष्य की नैसर्गिक प्रवृत्ति हमेशा से उसे स्नान के लिए प्रेरित करती रही है। यद्यपि उसके अंदर की आवाज उसे साफ-साफ बता नही रही है कि वह किस तरह स्नान करे, फिर भी प्रत्येक को अपना पेडू, मलद्वार, जननेंद्रिय को जल द्वारा ठंडा रखने की आवश्यकता प्रतीत होती ही है।

अतः पशु अपने शरीर की बनावट के अनुसार अलग-अलग रीति से स्नान करते है। स्तनपायी पशु और पक्षी भिन्न-भिन्न रीति से स्नान करते है।

जिस किसीने पशुओं को ध्यानपूर्वक स्नान करते देखा होगा उसे इस बात की प्रतीति हुई होगी कि पशु कीचड़ (या पानी) मे स्नान करते वक्त अपनी जननेंद्रिय को ठडा करने या रगड़ने का बहुत ध्यान रखते हैं। इससे यह भलीभांति समझा जा सकता है कि मनुष्य को, जबकि वह खास तौर से खुले मे बिना किसी बाहरी

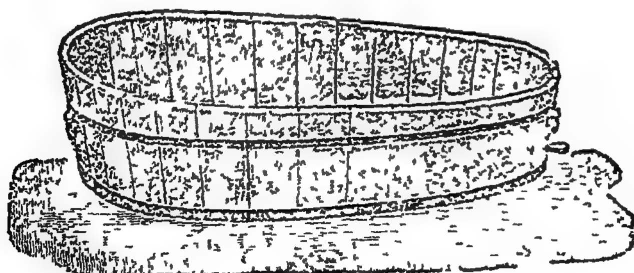


प्राकृतिक स्नान के लिए टीन का बना हुआ टब

वस्तु या किसी व्यक्ति की सहायता से स्नान करता है, किस प्रकार स्नान करना चाहिए ।

अब मै प्राकृतिक स्नान का वर्णन करूगा । इन दिनो अधिकाश लोग कमरो मे ही स्नान करते हैं और सबको सब समय बाहर खुली जगह मे स्नान की सुविधा भी नही है, अतः लोगो को पानी रखने के लिए टब की या किसी पात्र की आवश्यकता पडती है । इस स्नान के लिए कोई भी पात्र या टब[1] हो सकता है, पर वह इतना बडा जरूर होना चाहिए कि उसमे पैर सिकोडकर घुटने ऊचे किये हुए आसानी से बैठा जा सके ।

स्नानार्थी को अपने टब मे साढे तीन इच गहरा पानी, जो स्वाभाविक रूप मे ठडा हो, भरकर इस प्रकार बैठना चाहिए कि जल उसके पैरों, नितंबो और जननेद्रिय के अधिकतर भाग पर आ जाय । नितब और पैरो के तलवे टब के पेदे से लगे रहे और घुटने हमेशा ऊपर उठे रहे ।



लकड़ी का बना हुआ एक टब

[1]टब जस्ते और लकडी दोनो ही प्रकार के हो सकते है, पर लकडी के बने टब को अधिक लाभकर समझना चाहिए ।

इस प्रकार टब मे बैठने के बाद सटे हुए घुटने फैला दिये जाते हैं और पानी को हथेली (चुल्लू) से पेडू पर जोर से मारा जाता है।

इस प्रकार पेडू पर पानी मार लेने के बाद तुरंत पेडू के बीच के भाग को दोनों किनारों को और सारे पेडू को ही एक या दोनों हाथों से तेजी से मला जाता है। पानी मारना और पेडू रगड़ना थोड़ी ही देर चलता है और फिर यदि स्त्री यह स्नान ले रही है तो उसे ऊरुसंधि (दोनों जांघों के बीच का भाग) और जननेंद्रिय के ऊपरी भाग को खुले हाथ से जल के अंदर (टब के पेंदे मे नितंब लगे रहेंगे तो यह भाग जल के अंदर ही रहेगा) रगडना चाहिए। पुरुष भी ऊरुसंधि के चारों ओर, अंडकोश को और मलद्वार और जननेंद्रिय के बीच की सीवन के चारो ओर पानी के अंदर ही खुले साथ से रगड़ें। इसके बाद हाथों से पानी ले-लेकर सारे शरीर को धो डालना चाहिए। शरीर धोने मे देर न लगे इसके लिए इस काम मे किसी दूसरे आदमी से भी सहायता ली जा सकती है। फिर सारे शरीर को खुले हाथों से (तौलिए या अंगोछे से नही) रगड़-रगड़कर अच्छी तरह सुखा लेते है। शरीर को सुखाने के लिए तौलिए या अंगोछे का व्यवहार बिल्कुल न करना चाहिए।

अच्छा हो कि स्नान के बाद रगड़ने की सारी क्रिया खुद ही करें। इससे कसरत का भी लाभ मिलेगा। जरूरत समझी जाय तो शरीर को दूसरे से भी रगडवाकर सुखाया जा सकता है। इससे भी लाभ होगा, हानि की कोई संभावना नही है। शरीर रगड़ने के संबंध मे अपने विचार मैं विस्तार से फिर कहूंगा।[1]

[1]स्नान के साथ जननेंद्रिय धोने और रगडने की जो क्रिया बताई गई है वह खास तौर से स्त्रियो के लिए है, पर पुरुषो के लिए भी बहुत लाभदायक है। इससे जननेंद्रिय की उत्तेजना और जलन खास तौर से दूर होती है।

स्नान के बाद कमरे मे और सुविधा हो तो खुली जगह मे थोड़ी देर नगे बदन टहलना अच्छा है, पर स्नान के बाद शरीर मे गरमी आ जाय, इसका सदा ध्यान रखना चाहिए। तेजी से टहलने, कसरत या किसी भी श्रमसाध्य कार्य से गरमी जल्द आ जाती है। यदि टहलने या कसरत आदि द्वारा गरमी न लाई जा सके तो कबल वगैरह कुछ गरम चीज ओढकर लेट रहना चाहिए।

उष्णता और शक्ति के स्रोत धूप मे रहकर शरीर मे गरमी लाना अति उत्तम है।

प्राकृतिक स्नान कितनी देर तक किया जाय ? इसका उत्तर शरीर की स्थिति और गरमी पर निर्भर है। इस विषय मे प्रत्येक को अपनी रुचि समझने और अदर की आवाज सुनने की कोशिश करनी चाहिए। ठंडक के दिनो मे दो से पाच मिनट तक यह स्नान करना काफी होता है। गरमी के दिनो मे और खूब गरमी हो तो यह स्नान दस मिनट तक या इससे अधिक समय तक भी किया जा सकता है। जितना समय स्नान मे लगाया जाय उस समय का आधा पेड़ू और जननेंद्रिय भाग के मलने मे लगाया जाय।

स्नान के लिए जो समय यहां निश्चित किया जा रहा है उसमे स्नान के बाद सारे शरीर को धोने और उसे रगडकर सुखाने मे लगनेवाला समय सम्मिलित नही है। कितनी बार यह स्नान किया जाय ? इस प्रश्न का उत्तर भी प्रत्येक व्यक्ति को स्वय देना चाहिए।

ग्रीष्म ऋतु मे यह स्नान नित्य किया जा सकता है और यदि खुली जगह मे[1] सूर्य के प्रकाश मे या प्रकाशभरे कमरे मे किया जाय

---

[1]खुले मे स्नान करने के लिए पत्थर या सीमेंट के टब बनवाये जा सकते है। सभी टब कुशादा होने चाहिए। छोटे टब मे अच्छी तरह स्नान करते नही बनता।

तो दिन में दो वार भी स्नान कर सकते हैं। जाड़े के दिनों में यह स्नान दो-तीन दिन मे एक वार करना काफी होगा। कभी-कभी कुछ समय के लिए इस स्नान को बिल्कुल भी वंद कर दे सकते है।

ज्वर से जलते हुए रोगी और पुष्ट शरीरवाले व्यक्ति ठंडी देहवाले कमजोर, रक्ताभाव के रोगी की वनिस्वत अधिक वार स्नान करेंगे।

कई लोग यह स्नान थोड़ी देर तक करते है और कई वार करते हैं, कई इसे देर तक करना और देर में करना पसंद करते है, पर ये दोनों वाते प्रकृति के संपर्क मे रहनेवाले वन के पशु मे भी देखी जाती है।

प्राकृतिक स्नान के लिए गरम पानी कभी न लिया जाय। यदि वह स्नान कमरे मे किया जाय तो उसकी खिड़किया खुली रहनी चाहिए ताकि कमरा ठंडा रहे।

स्नान के वाद पैरों और मलद्वार को अच्छी तरह साफ पानी से धो डालना चाहिए। इससे ये स्थान साफ रहेगे। स्वास्थ्य की दृष्टि से यह वहुत आवश्यक है।

यह स्पष्ट है कि खुली जगह मे स्नान करना अत्युत्तम और अधिक प्राकृतिक है।

खुले मे प्राकृतिक स्नान की सुविधा हर कही भी मिल सकती है, क्योंकि जहा आदमी रहते है वहां थोड़ा-वहुत पानी तो आसानी से मिल ही जाता है।

सारा शरीर डुवोकर स्नान करने की सुविधा प्रकृति के प्रांगण मे हर जगह नही है। ऐसा स्नान वहुत थोड़ी-सी जगहों मे किया जा सकता है—केवल उन्ही जगहों मे जहां वड़ा नाला, नदी, झील या तालाव होता है। इसलिए खुले मे प्राकृतिक स्नान की सुविधा साधारण

स्नान की सुविधा की वनिस्वत अधिक जगहो मे और आसानी से पाई जा सकती है ।

प्राकृतिक स्नान जिस प्रकार वैठकर करते है उसमे वडा आराम मिलता है । वह आसन कष्टकर तो किसी प्रकार है ही नही ।

प्राकृतिक स्नान जल के अन्य सभी प्रयोगो से भिन्न है, खास तौर से इस माने मे कि यह स्नान करते समय नहानेवाला चुपचाप वंठा या लेटा नही रहता, वल्कि शरीर के कुछ विशेप अगो को हरदम रगडता रहता है और अत मे अपने सारे शरीर को तौलिए या इसी तरह की किसी अन्य चीज से नही वल्कि खुले हाथ से रगडता है ।

आजतक के प्रचारित जल के सभी प्रयोग इस प्राकृतिक स्नान से भिन्न है, अत. वे प्राकृतिक नही है । उनसे लोगो को कभी समुचित लाभ नही हुआ और अनेक वार वे नुकसान करते देखे गये है । प्रकृति यह चाहती है कि लोग उसकी इच्छानुसार ही चलें । अबतक के प्रचलित सभी स्नानों से प्राकृतिक स्नान प्रत्येक दृष्टि से अधिक सरल और लाभकर है । इसमे थोडे-से पानी (गरम पानी की तो विलकुल नही) की जरूरत होती है और यह अपने-आप लिया जा सकता है, इसमे किसी सहायक की आवश्यकता नही होती । इसके लिए जिस टब की जरूरत होती है वह वहुत साधारण प्रकार का होता है और अन्य टवो की वनिस्वत आसानी से हटाया-उठाया जा सकता है । आप मजे मे इसे खाट के नीचे सरका दे सकते है और सबेरे उठते ही इसम स्नान कर सकते है ।

इसलिए यह आशा की जाती है कि इस स्नान का अन्य जटिल स्नानो की वनिस्वत कुटुवो मे और साधारण जनता मे अधिक शीघ्रता से प्रचार होगा ।

यात्रा करते समय या अन्य किसी मौके पर इस स्नान के लिए

आवश्यक टब या कोई बड़ा पात्र न मिले तो यह स्नान एक अन्य सरल रीति से किया जा सकता है। इस रीति मे केवल हाथ धोनेवाली चिलमची (टीनिया) की जरूरत होती है।

स्नान करनेवाला पानी से भरी चिलमची पर बैठ जाता है और मलद्वार को धोता तथा जननेंद्रिय पर हाथ से कुछ मिनट तक पानी डाल-डालकर उसे ठंडा करता रहता है। इसके बाद क्रम से पेड़ू और सारे शरीर को धोकर बदन को रगड़-रगडकर सुखाता है।

इस तरह का स्नान कही भी किसी समय भी किया जा सकता और इससे सरल और सादा दूसरा स्नान सभवत. है भी नही।

यह स्नान इस प्रकार से करने के बाद भी थोड़ी देर तक नगे बदन टहलना अच्छा है। इससे स्नान के लाभ मे वृद्धि होती है।

प्राकृतिक स्नान चाहे किसी रीति से भी क्यो न किया जाय, सभी प्रचलित जल-प्रयोगों से अधिक लाभकारी है।

मैंने इस स्नान की रीति पर जितना ही अधिक विचार किया मुझे अधिकाधिक स्पष्ट होता गया कि स्नान की यह रीति नहानों की अन्य सभी रीतियो से निश्चय ही श्रेष्ठ है। यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि पृथ्वी के आदिम निवासी को हफ्तों और संभवतः कभी-कभी महीनों तक गीली जगह में चलना पड़ता था और कभी-कभी उसे बरफ पर भी चलना पड़ता था, और बहुत सभव है कि उसे घटों ऐसी जगह मे खड़ा रहना और जमीन पर चूतड़ रखकर बैठना भी पडा होगा। इसलिए प्रकृति ने मनुष्य के पैरो और नितबो की अवश्य ही ऐसी रचना की है कि वे पानी और ठडक बर्दाश्त कर सके, पर प्रकृति ने जो रचना आवश्यकतावश की है उसमे मनुष्य का सबसे बड़ा लाभ भी छिपा है। आज का सुसभ्य मनुष्य अपने पांवो को और मलद्वार को अप्राकृतिक रीति से गरम रखता है जिसकी वजह

से भीतर सूजन आ जाने के कारण कहीं-कही खून की हरकत रुक जाती है (ववासीर का मस्सा वगैरह हो जाता है) और फलत. एक बडे लाभ से वह वचित ही नही रहता वरन् नुकसान उठाता है। इसलिए अनेक प्राकृतिक चिकित्सक अपने रोगियो को गीली जगह मे घंटो टहलने की और कुछ देर खडे रहने की राय देते है और उन्हे ऐसी चीज पर वैठने से मना करते है जिससे गुदाद्वार मे गरमी पहुंचने का डर हो और गुदाद्वार से थोडा पानी चढाकर रोकने की भी सलाह देते है। यह सभी जानते है कि गुदाद्वार के अतिम छोर पर मल के रुके रहने और ववासीर वगैरह हो जाने से वहा गरमी पैदा होती है, जिसका मस्तिष्क पर वहुत बुरा असर पडता है। अत इस स्नान से सिर की शिकायते दूर हो जाती है। पैरो और नितवो के पानी मे रहने से रक्तसचालन सम होता है। पेडू की गरमी के कारण रोग होता है और रोग मे पेडू की गरमी वढ जाती है, ऐसी हालत मे पेडू को ठंडा करना कितने अधिक लाभ का होगा।

प्राकृतिक स्नान मे प्राकृतिक चिकित्सा-शास्त्र के विशिष्ट प्रतिनिधियों द्वारा रोगनिवारणार्थ लाई जानेवाली सभी विधियो का जैसे—नगे पाव टहलना, पानी मे खडे रहना, मलद्वार को गरम होने से बचाना, एनिमा का प्रयोग, वायु और प्रकाश-स्नान, पेडू की ठंडी पट्टी, पेडू-स्नान, जल-स्नान, जननेंद्रिय को ठडक पहुचाना, तरेरा, पेडू और शरीर की मालिश का समावेश हो गया है। इतनी विधियो के एक साथ प्रयोग की विधि प्रकृति का आविष्कार है, अत. प्राकृतिक नहान सव विधियों से अधिक प्रभावशाली और मनुष्य-जाति के लिए लाभदायक है।

इन प्राकृतिक उपादानो का व्यवहार करने पर शरीर मे उनकी एक जोरदार प्रतिक्रिया होती है जिसके फलस्वरूप शरीर का विजा-

तीय द्रव्य स्थान-च्युत होकर निकलने लगता है और निश्चयात्मक रूप से रोग-निवारक उभार होता है जो कष्टकर पीडा के रूप में प्रकट होता है।

उपचार जितना ही अधिक प्राकृतिक होता है, उभार अक्सर उतना ही जोरदार होता है।

पर इन उभारो से डरने की जरूरत नही है, ये सर्वदा स्वागत करनें योग्य है। ये उभार अक्सर चिकित्सा के आरंभ मे ही होते हैं, इनसे डरकर या इनके होने पर नहान वद करने की जरूरत नही है।

मनुष्य प्रकृति-पथ से दूर जा पडा है। वह धरती माता द्वारा खुले हाथों से दिये गए फलों पर जीवन-यापन नही करता, वह नगा नहीं रहता और प्रकृति के उसके लिए वनाये वायु, पृथ्वी, जल आदि संवधी नियमो को कुचलता चलता है। फलत. वह रोगी हो गया। वह अव पुन प्रकृति से सामंजस्य स्थापित कर स्वास्थ्य लौटा सकता है। उसे प्रकृति से फिर पथप्रदर्शन प्राप्त करना चाहिए। इसके लिए किसी तरह की चालाकी की जरूरत नही है, न इसके लिए कुछ जानने या सीखने की आवश्यकता है वरन् स्वास्थ्य का सही रास्ता पाने के लिए उसे उन सभी झूठी और अनावश्यक वातो को भुला देना चाहिए जो जवरदस्ती सीखनी पड़ी हैं। उसे अपने सिर पर से अक्ल के सारे वोझ को उतार फेकना चाहिए। इस वोझ के नीचे आत्मा और मन दवे रहते हैं और इसने मनुष्य-जाति को मूर्ख और अधा वना रखा है। जव मनुप्य प्रकृति के वोल सुनने लगता है तब उसे और किसी चीज के जानने की इच्छा नही रह जाती। वह यह नही जानना चाहता कि प्रकृति के नियमो पर चलने पर रोगो का क्यों नाश हो जाता है और क्यो शरीर का स्वास्थ्य एव शक्ति वढ़ जाती है और न उसे शरीर, मन एवं आत्मा के व्यापार के समझने की ही जरूरत

रह जाती है। मनुष्य का आज का ज्ञान अविश्वसनीय है, मनुष्य इसके चक्कर मे पडकर भटक जाता है।

वच्चे की तरह प्रकृति-माता की गोद मे अपनेको डाल देने मे ही मनुष्य-जाति का कल्याण है।

प्रकृति-विरोधी सभी आदतें एक साथ छोड सकना सभव नही है। यदि कुछ आदतें अच्छी हो तो मै उन्हे भी बुरी आदतो के साथ धो वहाना नही चाहता और आज के मनुष्य की हर एक चीज को सकारण समझने की आदत को भी तरजीह देना चाहता हू।

इसलिए मै रोग की उत्पत्ति के सवध मे अपने विचार समय-समय पर उपस्थित करता रहूंगा और प्राकृतिक स्नान एव प्राकृतिक चिकित्सा के अन्य उपादानो के विशेष प्रभावशाली होने का कारण वताऊंगा।

रोग अप्राकृतिक भोजन करने अर्थात् ऐसा भोजन करने से, जिसे प्रकृति ने मनुष्य के लिए नही वनाया है और न उसकी पाचन-प्रणाली ही उसके पचाने योग्य वनी है, पैदा होते है। ऐसी दशा मे अप्राकृतिक खाद्यो के पेट मे जाने पर या तो उनका पाचन विल्कुल होता ही नही और यदि होता भी है तो आधा-पाधा। जिस अश का पाचन नही होता वह अश विजातीय द्रव्य वनकर शरीर मे पडा रहता है (अंग-प्रत्यग मे घुस जाता है), सड़ने[1] लगता है और मनुष्य के लिए

[1]आजकल जीर्ण रोग के ही रोगी अधिक देखने मे आते हैं। जव विजातीय द्रव्य तेजी से सडने लगते हैं तो शरीर मे एक क्राति-सी मच जाती है। ऐसी दशा मे शरीर विजातीय द्रव्य को एकाएक और शक्तिशाली ढग से निकालने लगता है। शरीर की इस क्रिया से तीव्र रोग (सर्दी, मीयादी वुखार, न्यूमोनिया आदि) होते हैं। शरीर मे जव इतना वल नही होता कि तीव्र रोग पैदा कर सके तो वह जीर्ण रोगो का घर वन जाता है।

रोग, दु.ख तथा कष्ट का कारण बनता है।

जल, प्रकाश आदि के अभाव के समान मनोभावों का प्रबल आवेग भी नाड़ी-संबंधी क्रिया और पाचनक्रिया को बिगाड़कर और पंगु बनाकर तथा विजातीय द्रव्य के सड़ने मे सहायक होकर या प्रोत्साहन देकर रोगो का पोषण करता है और रोगों की उत्पत्ति का कारण होता है।

सड़न गरमी पैदा करती है, जिसमे रोगो के घातक और हानिप्रद तत्त्व निवास करते है।

रोग-नाश के लिए सबसे पहले हमे शरीर की भीतरी गरमी को शात करना चाहिए; किंतु जीवनी-शक्ति को भी उद्दीप्त करना आवश्यक है। इस शक्ति के सहारे ही शरीर भोजन से पोषण (शरीर की मरम्मत के लिए सामान) ग्रहण करता है और विजातीय द्रव्य (रोग के विष) को पसीने, पेशाब, पाखाने द्वारा निकालता है। जीवनी-शक्ति पर ही मनुष्य का जीवन निर्भर है।

यह स्पष्ट है कि प्राकृतिक स्नान इन दोनों उद्देश्यों की पूर्ति करता है।

रोगों के उत्पत्ति-केन्द्र पेड़ू पर और नाड़ियों के मुख्य केंद्र जननेंद्रिय पर ठडे जल का प्रयोग कर हम शरीर की भीतरी गरमी को शीघ्र-से-शीघ्र कम करने मे सफल होते है। स्नान के समय की रगड़ने की क्रिया भी नाड़ियो को जगाती है और शरीर के भीतर की गरमी कम करने मे सहायक होती है।

गुदाद्वार का धुल जाना और उसका ठंडा हो जाना इस स्नान का विशेष अग है।

सभी औषधियां, जो प्रकृति से नही ली गई है एवं जो प्रकृति के नियमानुकूल नही है, चाहे उन्होने ऊपरी लाभ बार-बार दिखाया हो,

वे अत मे निरर्थक ही साबित होती है। अप्राकृतिक औषधियो के बहुत-से धोखे हैं। सभी अप्राकृतिक औषधियों से निश्चयपूर्वक नुकसान होता है और यह नुकसान चिकित्सा के आगे-पीछे जरूर दिखाई देता है। कभी-कभी ये औषधिया जब भीतर बहुत अधिक नुकसान पहुचा देती है तभी उनका असर बाहर प्रकट होता है। ऐसे सब अप्राकृतिक उपचार अथवा ऐसे उपचार जो पूरी तरह प्रकृति के नियमानुकूल नही है, आते-जाते रहते है। उन्हे कभी समाज मे स्थायी स्थान नही मिलता।

औषधि-ससार मे रोज ही नई दवाओ की ईजाद होती है, उनका प्रचार होता है और जितनी शीघ्रता से उनका प्रचार होता है उतनी ही शीघ्रता से वे मिट भी जाती हैं। आज कहा जाता है कि कार्बोलिक एसिड से दुनिया का उद्धार हो जायगा, कल सैलीसाइलिक एसिड का नाम लिया जाता है, परसो किसी नये दर्दनाशक के गुण गाये जाते है, फिर किसी और औषधि पर ससार के भाग्य टिके बताये जाते है, और अत मे ये सभी औषधिया हानिप्रद एव अनर्थकारी सिद्ध होती हैं। आज तो लोग चुपचाप अपने को उन भयानक औषधियों की भेंट कर देते है, जिनका भयानक फल भविष्य के गर्भ मे छिपा रहता है।

डाक्टर फास्ट ने अपने स्वर्गवासी पिता के साथ अनेक बार लोगो को औषधिया और जादूभरे नुस्खे बाटे थे। ईस्टर के दिन लोग इसके लिए उनके प्रति भक्ति प्रदर्शित करने आये तो वे दवा के रूप मे विष बाटने के अपने पश्चात्ताप को छिपा न सके। कविवर गेटे ने उनके हृदयगत पश्चात्ताप को उनके मुंह से इस प्रकार प्रकट कराया है:

"यदि आप लोग मेरे अतरतम के भावों को जान सकते तो जानते कि मैं अपने पिता और अपनेको आपके समाज के कितना

अयोग्य समझता हू। हम लोगों की दवा करती क्या थी ? रोग को नहीं रोगी को ही समाप्त कर देती थी। किसीने इसके लिए हमसे कभी जवाव तलव नहीं किया। आज मैं ही पूछता हूं यदि किसीने हमारी औषधियों से लाभ प्राप्त किया है तो वह सामने आये। आपकी इन सुदर एवं पवित्र घाटियो और पहाडियों में हमारी नारकीय गोलियां महामारी की तरह आईं। मेरे दिये उस जहर ने हजारो को मौत के घाट उतारा और आज हमारे-ऐसे वेशर्म खूनियों की दुनिया प्रशंसा कर रही है और उसे सुनने के लिए मैं जीवित हूं।"[1]

प्रकृति की शरण मे जाने के वाद से जव कभी मैंने अपने स्वास्थ्य और कल्याण के लिए सच्चा उपाय जानने की कोशिश की है तव हर वार मैंने देखा है कि ये उपाय सर्वथा प्राकृतिक होते हैं, अर्थात् जो कुछ जव कभी मैंने प्रकृति से जाना है उसकी परीक्षा करने पर वह पूर्णतया सत्य सावित हुआ है। जव प्रकृति के नियमानुकूल सभी कार्य किये जाते है तव उन कार्यों की सत्यता की जाच व्यर्थ है। जो कार्य प्रकृति की इच्छानुसार होते है उन्हें हमेशा सत्य समझना चाहिए। पशु और पृथ्वी के आदिम निवासी जव प्रकृति के संपर्क मे रहते थे तो क्या वे स्नान और भोजन पर प्रयोग करके जानते थे कि उन्हे कैसे नहाना चाहिए और क्या खाना चाहिए ? अतः प्राकृतिक स्नान

---

[1]गत शताब्दी के अंत मे मनुष्य-जाति के रोगी-वृक्ष मे एक सजीव शाखा, प्राकृतिक चिकित्सा प्रस्फुटित हुई। महाकवि गेटे ने इसका प्रकाश पहले से पा लिया था। इस महान् शक्ति के सामने सभी चीजें पूर्णतः स्पष्ट नही हुई थी। उनका अंतिम वाक्य है—"ईश्वर ! हमारा हृदय प्रकाश से भर दो।" इसीसे प्रकट होता है कि प्रकृति में जो सत्य है उसके निकट वह पहुच गये थे। प्राकृतिक चिकित्सा के जन्म की सूचना उन्हें मिल गई थी। गेटे ने अपनी महान् कृति "फाउस्ट" मे जगह-जगह अपनी ओजपूर्ण कविता मे आज की सभ्यता की वेहूदगियों की कटु आलोचना की है।

को भी किसी ऐसे प्रयोग मे पडने की जरूरत नही हुई।

'इस प्रकार जव मैने पहली वार स्नान किया तो मुझे वह लाभ और वह ताजगी मालूम हुई जो मुझे अपने जीवन मे जल के अन्य किसी स्नान से नही प्रतीत हुई थी।'[1]

मेरे सिवा और दूसरे जिन लोगो ने इसकी परीक्षा की उन सवको भी इसकी अनुकूलता और इससे प्राप्त हुए लाभ पर आश्चर्य हुआ। सबको स्नान के समय एक वडी ही सुखद ठडक की प्रतीति होती थी और स्नान के वाद उनका वदन पहले से ज्यादा अच्छी तरह और समान रूप से गरम हो जाता था। प्राय. सभी लोग कहते थे कि नहान आरभ करने के वाद से भूख वढ गई है, पैर ठीक तौर से गरम रहते है, त्वचा ठीक तौर से काम करती है, पसीना थोडा-थोड़ा निकलने लगा है, चित्त प्रसन्न और प्रफुल्ल रहता है, काम करने मे जी लगता है, और भी सव तरह से लाभ प्रतीत होता है।

इस स्नान की तारीफ मे मुझे मिले सैकडो पत्र और खुशी-खुशी आकर लोगो की गाई गई प्रशसा मै यहा उद्धृत कर सकता हू, पर मै किसी तरह के ढोल और नगाडे वजाकर इसकी तरफ लोगो का ध्यान आकृष्ट करना नही चाहता, मै चाहता हू कि लोग स्वय इसे

---

[1]थोडे ही ऐसे थे जो इस स्नान के कारण हुए रोग के उभार से डर गये थे। उदाहरणार्थ, एक सज्जन ने, जिन्हे फेफडे की पुरानी वीमारी थी, जव स्नान शुरू किया तो उनका जीर्ण रोग नवीन रोग मे परिणत हो गया, जो वस्तुत रोग जाने का शुभ लक्षण था। इन्ही महाशय ने कह भी कहा कि धूपस्नान उनके अनुकूल नही पडता। जव धूपस्नान लेते है तो वदन के अग-अग मे दर्द हो जाता है। जब कि इस दर्द का यह मतलव है कि उनके शरीर के विजातीय द्रव्य—रोग के कीटाणुओ—को सूर्य की किरणे अपनी जगह से निकाल फेकने के लिए हटा रही है। जिन रोगियो को प्रकृति और उसकी चिकित्सा-शक्ति का इतना-सा ज्ञान नही है वे शायद ही कभी स्वास्थ्यलाभ कर सके।

करके देखे और इसके लाभ को समझे।

प्रकृति को समझनेवाला प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि प्राकृतिक भावों के अनुकूल और उसकी इच्छा के अनुसार किये गए कार्य मनुष्यमात्र के लिए कल्याण के साधन है। ऐसा व्यक्ति इस स्नान का स्वागत अवश्य करेगा और उसे यह स्नान अकूत सुख और स्वास्थ्य प्रदान करेगा। यदि ऐसे आदमी, जिनका प्रकृति की अवहेलना करना ही धर्म है और जिन्होने विज्ञान और डाक्टर मे अपनी सारी श्रद्धा डुबो दी है, इस स्नान का उपहास करे और इसकी ओर घृणा की दृष्टि से देखे तो हमे इसकी परवा नही करनी है।

इस स्नान का प्रयोग आरभ करनेवालो को मै इसके सबंध मे कुछ और बाते बता देना चाहता हूं। इस स्नान के गरम पानी से किये जाने का मै विरोधी हू। ऐसा करना प्रकृति-विरुद्ध है। ठडे-से-ठंडे पानी मे भी पैर और नितब रखकर बैठना बहुत कठिन नही है। (जो ठंडे पानी से बहुत डरते हो वे आरंभ मे यह स्नान बहुत हलके गरम पानी मे या गरम कमरे के अंदर कर सकते है।) जहां एक बार पेडू और जननेंद्रिय धोई और रगड़ी गई, पेडू के अदर ठडक पहुंची कि खून वहा दौड़ आता है और सारे बदन मे गरमी आ जाती है, पर इसपर भी जाडे के दिनो मे यदि कोई यह स्नान न कर सके, गोकि ऐसा होता बहुत कम है तो वह या तो स्नान बहुत थोड़ी देर के लिए करे या फिर बिल्कुल ही बद कर दे। ऐसी अवस्था मे नगे रहना, पेडूपर मिट्टी की पट्टी रखना, जिसके बारे मे आगे चलकर मै विस्तार से बताऊगा, आदि उपचारो से लाभ उठाया जा सकता है।

स्नान के लिए टब मे जो पानी भरा जाय वह बहुत गहरा न हो, रोगी के हाथ के पजे जितना गहरा काफी होगा। साधारणतः एक व्यक्ति के लिए तीन इंच गहरे पानी से अधिक की जरूरत नही

होती । स्नान के बाद शरीर को रगड़ने और कसरत करने की जो राय दी गई है वह कसरत के किन्ही खास नियमो अथवा मालिश की किसी खास पद्धति के अनुसार नही होनी चाहिए वरन् इनके करते वक्त अपनी इच्छा और रुझान का खयाल रखना चाहिए ।

जिसे सुविधा हो (जो खोजता है उसे सुविधा मिल ही जाती है) वह यह स्नान खुली जगह मे करे । आरभ में मनुष्य खुली जगह मे ही स्नान करता था । यदि वह इस स्नान से पूरा लाभ लेना चाहता है तो फिर खुले मे वह इसे करना आरभ कर दे । गदी हवा और कमरे मे बैठकर भोजन करने के बजाय खुली जगह मे बैठकर भोजन करने पर भोजन भी अधिक स्वादिष्ट लगता है और उससे शरीर को लाभ भी अधिक पहुचता है ।

स्त्रियो को मासिक धर्म के समय यह स्नान बद कर देना चाहिए, पर नगे पाव टहलना, वायु और प्रकाश-स्नान करना, मिट्टी की पट्टी लेना आदि बद करने की जरूरत नही है । इस समय इन्हे करते रहना विशेष लाभकारी है ।

यह स्नान नदी मे, (यदि गहरी हो तो तट के निकट), झरने एवं छोटे तालाब मे किया जा सकता है । यदि कमरे मे किया जाय तो खिड़किया थोडी-बहुत जरूर खुली रहे । सवेरे कुछ भी खाने के पहले अथवा तीसरे पहर दोपहर का भोजन पच जाने के बाद का समय यह स्नान करने के लिए सर्वश्रेष्ठ है ।

सभी मछलिया (जल के जीव) हवा से दूर रहना चाहती है और हवा मे रहनेवाले सभी प्राणी अपने शरीर को पानी से बचाते है और जब स्नान भी करते है तो अपने शरीर की बनावट के अनुसार शरीर के कम-से-कम भाग मे पानी लगने देते है । मनुष्य प्रकाश और वायु मे रहनेवाले सब जीवो मे श्रेष्ठ है । यदि उसे हवा का मिलना

एकाएक वद हो जाय तो वह बहुत थोडी देर मे मर जायगा। यदि उसके लिए आवश्यक वायु का वहुत थोड़ा भाग भी रुक जाय तो जिस प्रकार पानी से निकलते ही पानी विना मछली मरने लगती है उसी प्रकार आदमी की भी जीवनी-शक्ति कम होने लगती है और वह कमजोर हो जाता है। जव आदमी प्रचलित स्नान करता है तो वह अपने शरीर को पानी मे डुवो देता है, उस वक्त वह अपने रोम-कूपो से, जिनसे वह काफी वायु शरीर मे ले जाता है, न शुद्ध वायु ही खीच सकता है और न उपयोग मे लाई हुई गदी वायु ही निकाल सकता है। अतः इस प्रकार के स्नान से शरीर को हानि पहुंचती है और वह कमजोर हो जाता है। यदि ऐसा स्नान वहुत थोडी देर, कुछ क्षणो के लिए ही किया जाय तो शरीर मे ठडक पहुंचने से उसे जो लाभ मिलता है—और यह ठंडक कुछ क्षणों मे ही शरीर मे पहुंच जाती है—वह शरीर के उतनी देर वायु से वचित रहने की हानि से कुछ अधिक हो सकता है; पर यदि यह स्नान प्रचलित प्रथा के अनुसार पाच, दस या पंद्रह मिनट या इससे भी अधिक देर तक किया जाता है तो इससे वहुत अधिक हानि होती है। यदि हमारे किसी विशेष अग को या भाग को वायु न लगे, जैसा कि चमड़े के दस्ताने पहन लेने पर हाथो का हाल होता है तो उस अग को क्षति पहुंचती है। उससे वह एक तरह से पगु हो जाता है। वैठक-नहान[1] लेते वक्त कमर और पेट चारों ओर से पानी से ढक जाता है, इसलिए शरीर का यह भाग वायु से वचित हो जाने के कारण अकर्मण्य-सा हो जाता है और स्नान करते वक्त समुचित रूप से क्रियाशील नही रहता। अतः इस स्नान से वहुत कम लाभ मिलता है। वैठक-

[1]वैठक-नहान कूने के कटि-नहान की तरह लिया जाता है। अतर इतना ही है कि आदमी चुपचाप टव मे वैठा रहता है, पेड़ू को नही मलता।—अनुवादक

नहान मे न पेड़ू पर पानी मारते है और न उसे रगडते है। प्राकृतिक स्नान मे पिछले जल-प्रयोगो की सभी गलतिया, जिनके कारण स्नान का पूरा लाभ नही मिलता था, दूर कर दी गई है। जल के इस प्राकृतिक प्रयोग से जो लोगो को वडे-वडे लाभ मिल रहे है उसका यही रहस्य है।

अव यह आशा की जानी चाहिए कि प्राकृतिक स्नान का अमीर और गरीव, छोटे और वडे समान रूप से आदर करेगे और जनता मे इसका प्रचार हो जायगा। इसके द्वारा वूढे और जवान, वच्चे और वडे सवको वह आनद प्राप्त होगा जिसे सहृदया प्रकृति-माता खुले हाथो लुटाने को उत्सुक रहती है। यदि कोई कहे कि मै स्वस्थ हूं, अत. मुझे इस स्नान की जरूरत नही है तो यह उसकी गलती है, क्योकि प्रकृति की प्रधान इच्छा यह नही है कि रोगी ही स्नान कर खोया स्वास्थ्य प्राप्त करे वल्कि वह तो यह चाहती है कि सभी स्नान करें, स्वस्थ एव प्रसन्न रहे और सवका चेहरा प्रफुल्ल रहे।। प्रकृति के जिन अलघ्य नियमो के अनुसार गरमी के वाद जाडा और रात के वाद दिन का होना निश्चित हे, उन्ही नियमो के अनुसार अप्राकृतिक जीवन व्यतीत करनेवाले, गदी हवा मे रहनेवाले, शराव, चाय, काफी, तवाकू का व्यवहार करनेवाले का रोग का शिकार होना भी निश्चित है। इसका यह मतलव नही है कि इस विनाश मे पडे हुए को वही रोग हो जिनसे लोग आमतौर से परिचित है या जो दिखाई देते है वरन् कोई-न-कोई रोग शरीर मे अवश्य घर कर लेता है और आगे-पीछे वह स्पष्ट रूप मे प्रकट होता है।

कई वच्चो का, जव वे स्कूल मे जाते है तो, पढने मे ध्यान नही लगता, वे सुस्त रहते है और उन्हे सवक वडी मुश्किल मे याद होता है। वहुधा वे लाड़-प्यार मे खराव हुए होते है और पाप एव दुराचार

मे फंस जाते हैं। उन्हें इसके लिए दंड दिया जाता है और अक्सर वे बुरी तरह से पीटे जाते है। सही वात यह है कि वे वच्चे भयंकर रूप से रोग से पीड़ित है, उन निर्दोषो को व्यर्थ ही दड दिया जाता है। पिता को अपने प्रिय पुत्र और पति को अपनी प्रिय पत्नी के साथ कठोरता का और कभी-कभी राक्षस का-सा व्यवहार करते और फिर उसके लिए पश्चात्ताप भी करते आपने देखा होगा। वेचारे नहीं जानते कि शराव तथा अन्य विषों का उपयोग करने के कारण उनकी नाड़ियां आवश्यकता से अधिक गरम हो गई है और वे वीमार हैं।

अन्य वहुत-से लोग अनेक तरह के दुराचारों और अपराधों मे फंस जाते हैं। ऐसे लोगो को रोग-मुक्त करने एवं स्वस्थ वनाने के वजाय जेलों और पागलखानों में भेज दिया जाता है।

नव-वधू घर मे पैर रखती है और शीघ्र ही उसके स्वभाव मे परिवर्तन होने लगता है। वह वहमी, चिड़चिड़ी और मूर्च्छा रोग से आक्रांत हो जाती है। "विवाह के कपड़े मैले होने के पहले ही हृदय की चिरसंचित कामनाए छिन्न-भिन्न हो जाती हैं।" वैवाहिक जीवन मे चिर-अभिलषित सुख नही मिलता, स्वर्ग नरक मे परिणत हुआ प्रतीत होता है। विवाह के समय जिस युवती को लोग सर्वगुणसंपन्न एव सहृदया कहते थे उसे लोग धीरे-धीरे डायन कहने लगते हैं; पर उस वेचारी की भर्त्सना करना व्यर्थ है। जिस प्रकार का अप्राकृतिक जीवन विवाहित दंपती साधारणतया व्यतीत करते हैं उसका कुछ फल तो मिलना ही है और पहला फल अक्सर पत्नी को ही चखना पडता है।

प्रकृति के संपर्क मे रहनेवाले वन के पशुओं और पौधो (खेत के पौधे नही) का स्वास्थ्य, सौंदर्य और यौवन प्रत्येक जाति के लिए एक निश्चित समय तक कायम रहता है (केवल उनको छोडकर, जिनके

प्राकृतिक जीवन मे मनुष्य ने वाधा डाल दी है) ग्रौर फिर उन सवकी मृत्यु हो जाती है।

ग्राज के जमाने मे मनुष्यो की हालत यह है कि वचपन मे ही किसीकी ग्राखे खराव हो जाती है, किसीको मुनाई ही कम देने लगता है, किसीके दात गिर जाते है, किसीके वाल झड़ जाते हैं, कितनो को नाड़ी-दौर्वल्य का रोग हो जाता है ग्रौर कितनो का दिमाग तक कमजोर हो जाता है। ग्राज की ग्रनिन्द्य सुदरी पर कल ही कुरूपता की छाया पड जाती है, वह पीली ग्रौर दुवली ग्रथवा मोटी ग्रौर भद्दी हो जाती है ग्रौर ग्रभी-ग्रभी जो युवक उसके सौंदर्य से ग्रभिभूत था उसे वह घृणास्पद प्रतीत होने लगती है।

कितने ही ग्रादमी, जिनकी ग्रार्थिक स्थिति ठीक रहती है, चिंतित ग्रौर घवराये रहते है, कितने ही लखपतियो पर तो भोजन तक की चिंता सवार रहती है।

> "चिंता हृदय के ग्रंतस्तल में निवास करने लगती है। एकांत पाते ही यह चिंता उसका कलेजा काटने लगती है, वह लुटी-सी दशा में छटपटाती रहती है।"

× × ×

> "हम उस ग्राघात से डरते रहते है जो हमे कभी नहीं लगा, हम उस वस्तु के लिए रोते रहते हैं जो हमने कभी नहीं खोई।

(गेटे के 'फाउस्ट' से)

इन सभी काली घटाग्रो को, जिनसे राजा के महल ग्रौर रंक की झोपडी की शाति ग्रौर सुख समान रूप से विनप्ट होता रहता है, प्राकृतिक स्नान उड़ा ग्रौर भगा देगा।

यह नवीन प्राकृतिक स्नान, जिसे 'प्राचीन' विशेपरण से विभूपित करना ही ज्यादा उपयुक्त होगा, मनुष्य को ग्रपनेको जीवित रखने

की आज की लड़ाई के लिए जवानों की शक्ति और स्फूर्ति प्रदान करेगा और उसके दौड़-धूप, हड़बड़ीभरे जीवन मे शांति और मधुरता भरेगा। कुत्तो द्वारा पीछा किये जाने पर थकान और बद-हवासी की हालत मे मैंने पशुओ को अपनी नाड़ियो को शात करने और पुन: शक्ति प्राप्त करने की गरज से स्नान के लिए जल की तलाश करते देखा है। आज के हतभाग्य मनुष्यो को, जो आपस मे ही एक-दूसरे का इस तरह पीछा करते है कि वे हमेशा थकान से हांफते रहते है और उनका नाड़ी-संस्थान हमेशा उत्तेजित-सा रहता है, क्या ही अच्छा होता यदि यह ज्ञात हो जाता कि प्राकृतिक स्नान उन्हें शांति और शक्ति दोनो प्रदान करेगा।

इस स्नान से तत्काल लाभ यह मिलता है कि पेडू की गरमी शात हो जाती है, ठडक आ जाती है और जीवनी-शक्ति (पाचन-शक्ति इस हद तक बढती है कि वह विजातीय द्रव्य को और अप्राकृतिक भोजन के कम पचे या अनपचे भाग को निकालने लगती है जिससे वे लोग भी, जिन्होने अपने जीवन मे कभी किसी प्रकार के सुधार को स्थान नही दिया, रोगो के आक्रमण से बच जाते है।

जो इस रीति से बराबर स्नान करेंगे वे कभी पक्षाघात, विषाद, मियादी बुखार, हैजा, नासूर, क्षय आदि रोगो के चगुल मे नही फसेंगे।

प्राकृतिक स्नान के जो लाभ यहां बताये जा रहे है उनकी इस स्नान के बाद होनेवाली अनुभूति के आधार पर कोई भी आशा कर सकता है।

इस स्नान से शरीर की प्रतिक्रिया-शक्ति भी बहुत अधिक बढ़ जाती है। उसकी दशा पहले की-सी हो जाती है जब कोई भी अनावश्यक वस्तु शरीर मे प्रवेश करते ही यह शक्ति उसे निकाल

'वाहर करने की कोशिश करती थी। (उदाहरण के लिए, जव कोई पहले-पहल सिगरेट पीने की कोशिश करता है तो उसे कै'और मिचली आती है।)

प्राकृतिक'स्नान करने लगने के वाद सिगरेट पीनेवालो को सिगरेट पीना अच्छा नही लगता। शराव और मास के आदियो को कोई भी शराव अच्छी नही लगती और न मास खाने की इच्छा होती है। अधिकतर लोगो का प्रकृति के प्रति आकर्षण वढ जाता है और इस आकर्षण का लाभ उठाकर वे अधिक-से-अधिक प्राकृतिक जीवन अपनाने की कोशिश करते है। इस प्रकार आज जो अपनेको स्वस्थ कहते है वे भी इस स्नान से आरोग्य-लाभ करते है।

मैं चाहता हू कि यह स्नान रोगियो के निवास-स्थान मे भी प्रवेश करे और अशक्त और ज्वराक्रात, गठिया से पीडित और लुज, अधे, वहरे, नाडी-दौर्वल्य एव क्षय से पीडितो को भी, जो कष्ट से कराहते रहते है एव की गई गलतियो के लिए पश्चात्ताप करते रहते हैं, खुशी का सदेश सुनाये।

रोगी नैराश्य के अधकार मे आशा की किरणे ढूढते रहते है। सान्त्वना का प्रत्येक शब्द उनपर असर करता है। प्राकृतिक स्नान की वात वताई जाने पर उनमे से अनेक ठडे दिल से कहते है— 'आपकी वाते समझ मे तो आ रही है, पर विश्वास नही होता।' ठीक है, अनेक वार अनेक प्रकार की औषधियो पर उन्होने विश्वास किया और फल ऐसा नैराश्यजनक निकला कि उनकी सारी आशा ही मर गई।

पर पूछना यह है कि अवतक किसकी सहायता की याचना और प्रार्थना की गई? जिन प्रतिमाओ की अवतक पूजा की गई उनकी परीक्षा होनी चाहिए थी, यदि उनकी वडी-वड़ी उपाधियो और वाहरी

तड़क-भडक को हटाकर उन्हे देखा जाता तो मालूम होता कि वे वहुत साधारण किस्म की मिट्टी और पत्थर की वनी है।

उनका विश्वास दवा देनेवाले चिकित्सक पर था और यदि कोई रोगी चिकित्सक महाशय के सामने प्राकृतिक चिकित्सा की तारीफ करता तो चिकित्सक महाशय कह देते कि उनकी दवा भी तो प्रकृति से ही ली गई है, अतः हानिरहित है। इसमे क्या सदेह है कि सभी चीजे प्रकृति से मिलती है। तवाकू और शराव भी तो प्रकृति से ही मिलती है जिनके कारण लोगो को अपार कष्ट होता है। ऐसे जहर भी तो प्रकृति से ही मिलते है, जिन्हे थोड़ी मात्रा मे भी आदमी खा ले तो तुरंत मर जाय। ये चिकित्सक अपनी दवा अधिकतर जहरीले पौधो और खनिजो से वनाते है। जगली लोग और पशु, जिन्हे वनस्पति-विज्ञान का कोई ज्ञान नही होता, जहरीले पौधों को विना चखे ही पहचान जाते हैं और उन्हे शत्रु समझकर उनसे बचते है। ये जहरीले पौधे और 'शोधक' रसायन हमारी विकृत रसना को भी अपनी प्राकृतिक अवस्था मे वहुत बुरे लगते है। इससे यह सावित होता है कि जव उन्हें अप्राकृतिक तरीको से और भी खराव कर दिया जाता है तव वे हमारे लिए और भी हानिकर होते है। स्वास्थ्य की अवस्था की वनिस्वत रोग की अवस्था मे उनका उपयोग अधिक हानिकर होगा।

ईश्वर अपनी आज्ञाएं स्पष्ट शब्दो मे और विविध रीतियों से वरावर देता है जैसे, "तू वृक्षो को न खा", पर हम उस सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् ईश्वर की आज्ञाओं का उल्लंघन बरावर करते है और दडस्वरूप स्वर्ग से वार-वार निकाले जाते है।

कुछ लोग प्राकृतिक चिकित्सा की वड़ाई सुनकर इतने अधे हो जाते है कि वे अपनेको "प्राकृतिक चिकित्सक" के हाथों सौप देते

हैं और समझते है कि उनकी अच्छी-से-अच्छी चिकित्सा हो रही है। ऐसी दशा मे भी बहुतो की आशा नैराश्य मे ही परिणत होती है।

यदि हम प्रकृति की शरण जाय तो आज भी हमे निश्चयपूर्वक और आसानी से ज्ञात हो सकता है कि स्वास्थ्य-रक्षा और रोग-निवारण के लिए हमे किन साधनो का अवलंबन करना चाहिए। चिकित्सक कहता है कि ताजे फल न खाओ। खाना है तो उन्हे उबालकर खाओ, पर प्रकृति हमारे लिए हमेशा उबाले हुए नही, ताजे फल ही उपजाती है, इसलिए ताजे फल ही प्रत्येक के लिए और प्रत्येक दशा मे अच्छे रहेगे, क्योंकि प्रकृति की पाकशाला सर्वोत्कृष्ट पाकशाला है। दूसरे प्राकृतिक चिकित्सक महाशय गेहू के आटे की रोटी भर-भर पेट खाने की राय देते है। हमने देखा है कि स्पैरो (एक पक्षी) और घोड़ा राई और गेहू की बालिया खाना पसद करता है, पर मालूम होता है मनुष्य इन बालियो को प्राकृतिक दशा मे नही पचा पाता। पशु इन्हे कच्ची या अधपकी दशा मे और इनको डठलसमेत खाना ज्यादा पसद करता है, पर साधारण रोटी या खमीर उठाई हुई रोटी भूसी और डठल निकालकर केवल पके अन्न के गूदे (बिना चोकर का आटा) की बनती है। और भी देखा जाता है कि जब घोडो और अन्य पशुओ से खास तौर से कठिन श्रम का काम नही लिया जाता उस वक्त यदि उन्हे गेहू या जई ज्यादा खाने को दी जाती है तो उनके पैरो मे सख्ती आ जाती है और वे बदमिजाज हो जाते है। घोडे की सवेदनशीलता तो देखिये कि जहा खास तौर से सवारी के काम मे आनेवाले घोड़े को ज्यादा आटा खिलाया गया कि वह बीमार पडा। जगली घोड़े और जेबरा, जो केवल घास खाकर रहते हैं, पालतू घोड़ों से कितने अधिक सुदर, तेज, मजबूत और कठिनाई बर्दाश्त करनेवाले होते है! डबल रोटी का अन्न पिस-पककर अपनी प्राकृ-

तिक अवस्था से बहुत भिन्न हो जाता है, इसलिए अच्छा यही है कि डबल रोटी खाने की राय देनेवालो की बात अनसुनी कर दी जाय, और जब कोई उपाय न चले तभी खमीर उठाई रोटी खाई जाय और थोड़ी-से-थोड़ी खाकर काम चलाया जाय। जिस आटे मे बाहरी चीजें डालकर खमीर उठाते है उसकी रोटी तो कभी न खाई जाय।

अक्सर लोग वाष्प-स्नान की राय देते हैं, पर प्रकृति ने किसीके साथ वाष्प-स्नान का यंत्र पैदा नही किया, न प्रकृति मे कही कोई ऐसी चीज मिलती है जिसकी तुलना वाष्प-स्नान के यंत्र से की जा सके। इसलिए चाहे सभी प्राकृतिक चिकित्सक एकस्वर से ही क्यो न वाष्प-स्नान की तारीफ करे, पर है यह नुकसानदेह ही। मेरे कथन की सत्यता तो भविष्य प्रमाणित करेगा, गोकि इक्के-दुक्के लोग तो आज भी वाष्प-स्नान का खुल्लमखुल्ला विरोध करते सुनाई देते है।

यह साफ है कि प्रकृति बड़ी सरल और सुबोध भाषा मे बोलती है। प्रकृति की यह भाषा किसी स्कूल मे नही पढ़ाई जाती, पर यदि हम इसे समझने की कोशिश करे तो यह भाषा हमे अधिकाधिक समझ मे आने लग जायगी।

कुछ लोगो को समय के प्रभाव से प्रकृति की आवाज सुनाई नही देती और जिन्होने विश्वविद्यालयों मे और ऐसे स्थानों मे, जहां स्वास्थ्य-संबंधी ज्ञान प्रकृति का विरोध करना समझा जाता है, शिक्षा पाई है उन्हे विशेषतः यह आवाज नही सुनाई पड़ती। इन विश्व-विद्यालयों में खाद्यों पर प्रयोग किये जाते है, उनके विभाज्य अंगो का पता लगाया जाता है और एक पर दूसरे की प्रतिक्रिया जानी जाती है और वहां यह उम्मीद की जाती है कि मुर्दे बतायेंगे कि जिन्दो मे भोजन किस प्रकार सजीव पदार्थ मे परिणत हो जाता है।

उपयुक्त भोजन क्या है ? स्वास्थ्य-रक्षा के लिए भोजन के संबन्ध

मे क्या जानना चाहिए ? इन प्रश्नो के उत्तर के लिए आदि निवासियो ने न कभी रसायनसवधी तालिका को देखा और न जगल मे रहनेवाले घोडे और हिरन अपने भाई-वहनो के शव की जाच करते हैं, न पेट की वनावट जानते है और न आतो की लवाई ही नापते है। इसलिए प्रकृति की यह इच्छा नही है कि उपयुक्त रीति से हम लोग स्वास्थ्यसवंधी ज्ञान प्राप्त करे। इस प्रकार का ज्ञान प्रकृति के विरुद्ध है। अत यह हमेशा गलती के रास्ते पर ले जानेवाला है। प्रयोगशाला मे निर्जीव वस्तुए उत्पन्न की जाती है, पर मनुष्य के आमाशय मे उसके सजीव शरीर के अग और विभाग तैयार होते है। रासायनिक द्रव्यो की वाहर होनेवाली क्रिया-प्रतिक्रिया की तुलना मनुष्य-शरीर के नाडी-जाल पर होनेवाले असर से नही की जा सकती। शरीर के परिचालन, पाचन एव जीवन के पीछे कुछ गुप्त शक्तियां काम कर रही है, जिन्हे हम न कभी समझ सके और न कभी उन्हे समझ सकने की उम्मीद है। नि सदेह आज का मनुष्य निरंतर और विना दम लिये अन्वेपण के कार्य मे लगा हुआ है, पर यह भी वह एक देवी के इस शाप—"पृथ्वी पर तू आवारगी और भगोडे का जीवन व्यतीत करेगा"—का भरना भर रहा है; लेकिन—

> "दिन के प्रकाश मे भी वह हमे दिखाई नहीं देता, हमारे शोर करने पर भी वह हट नहीं सकता, प्रकृति जो हमे वताना नहीं चाहती उसे हम संड़सी, हथौड़े और चाकू के जोर से नहीं जान सकते।"

(गेटे के 'फाउस्ट' से)

जिन तत्त्वो, द्रव्यो और क्रियाओं का महत्त्व प्रयोगशाला मे होता है उनका मनुष्य के आमाशय और नाड़ी-जाल के लिए लाभकर होना आवश्यक नही है। यही नही, ये उनके लिए अनर्थकारी भी सिद्ध हो

सकते हैं। फलतः इस प्रकार का विज्ञान हमेशा से मूर्खतापूर्ण विचारों से भरा रहा है।[1] ऐसे युवको पर जो वाहरी प्रभाव के प्रति संवेदनशील रहते है और जो आज की गलत शिक्षा के कारण आंख मूंदकर सर्वज्ञ और प्रमाण के पडित कहे जानेवाले लोगों की वात सोलहों आने सही मान लेते है, गलती का असर खास तौर पर होता है। यह असर उनपर से मिट नही पाता, उनपर इसकी छाप लग जाती है। जो चिकित्सक विद्यालय द्वारा अपने सिर पर लादे गये वोझ को उतार फेकना चाहता है और वहां सीखी गई गलतियों से छुटकारा पाना चाहता है उसे इसके लिए विशेष प्रयत्न करने की आवश्यकता होगी, और अपने अन्दर से उस झूठे घमड को, जो हलकी चीजों को मूल्यवान् वताने की कोशिश करता है, निकाल डालने की जरूरत होगी।

सवको ऐसी शिक्षा देनी कि सव अपनी चिकित्सा आप कर सकें, यह पवित्र आदर्श प्रत्येक प्राकृतिक चिकित्सक के सामने होना चाहिए।

दूसरे हमारे लिए सोचें या सोचने का वहाना करें, यह देख सकना वड़ा आसान और साथ-साथ मजेदार भी है, पर यदि लोग स्वास्थ्य का सत्य मार्ग पाना चाहते है, जीवन-वसंत मे विहार करना चाहते हैं तो प्रत्येक को अपना डाक्टर आप वनना चाहिए।

पर मै किसी रोगी को प्राकृतिक स्नान करने की राय दूं तो

---

[1]लोग कहते है कि औषध-विज्ञान को इस प्रकार सीधे-सीधे गलत नही कहा जा सकता। औषध-विज्ञान का जन्म मनुष्य के प्राकृतिक जीवन के पतन के साथ हुआ और ज्यो-ज्यो मनुष्य ने अप्राकृतिक जीवन को अपनाया इसकी उन्नति हुई और अप्राकृतिक जीवन के अंत के साथ-साथ इस विज्ञान का अत होना भी निश्चित है। इतिहास वताता है कि अनेक प्रकार के दूषण सदियो तक प्रचलित रहे हैं और फिर मिटे है। जादूगरी को मिटते तो विज्ञान ने स्वयं देखा है।

क्या उसे मेरी वात माननी चाहिए ? जरूर! और विना झिझक के! मेरा स्नान से कोई सवध नही है। यदि संबन्ध है तो इतना ही कि इस स्नान को इस रूप मे प्रकृति से प्राप्त करने का मेरा सौभाग्य रहा है। और भी जो कुछ मै इसके वारे मे कह रहा हू वह केवल यह दिखाने के लिए कि खेत, चरागाह, जंगल और घाटी मे रहने वाले प्राणी, जो अब भी प्रकृति के भाव को समझ पाते है, इन स्नान को जानते है और लाभ के साथ इसका प्रयोग करते है। गो कि हमारी भावना, नैसर्गिक प्रवृत्ति और विवेक वहुत कुछ दव गये है फिर भी वे इतने सजग तो है ही कि हम उनके द्वारा यह जान सकें कि हमारे लिए सही रास्ता क्या है। आज भी हमे हमारी रसना वता सकती है कि विना विगाडे, स्वाभाविक दशा मे हम जिन खाद्यो का उपयोग कर सकते है वे करमकल्ला, आलू या मास नही है। प्रकृति ने हमारे लिए फल—छोटे रसीले फल (शहतूत, मकोय, जामुन इत्यादि) और गिरीवाले फल (वादाम, अखरोट, नारियल) ही उपजाये है। इसी तरह जिन्होने और अनेक प्रकार के स्नान किये है उन्हे प्राकृतिक स्नान से जो आराम और ताजगी मिलती है उससे इस स्नान की सर्वश्रेष्ठता के विपय मे उनके मन मे कोई सदेह नही रह जाता।

इसलिए स्वास्थ्य मे किसी प्रकार की गडवडी आने पर—जिसे लोग आज रोग के नाम से पुकारते है या स्वास्थ्य विल्कुल खराव होने की दशा मे भी जिसे नाना औपधिया, जो कुछ-न-कुछ प्रकृति-विरोधी अवश्य रही होगी, न सुधार पाई हो—हमे प्राकृतिक स्नान का पूरे विश्वास के साथ प्रयोग करना चाहिए। पर जव कोई रोगी खतरनाक और नुकसानदेह दवाओ से अपना पिंड छुडा लेता है और प्राकृतिक, निरापद औपधियो की शरण जाता है तो खाई गई दवाओ और गलत चिकित्सा के कारण उसका रोग इतना वढ गया होता है कि

उसे प्रकृति की प्रकाश, वायु, भोजन, मिट्टी आदि अधिक आवश्यक औपधियों की भी जरूरत होती है। यदि आज आप किसीको यह वताइये कि तुम्हे नगे रहना पडेगा, खास तौर से ठंडक के वक्त, चाहे वहुत थोडे समय के लिए ही नगे रहने को कहिये और यह भी कह दीजिये कि यह क्रिया कमरे मे अकेले खिडकिया खोलकर करनी होगी तो भी वह घवरा जाता है और यदि उससे यह भी कह दीजिये कि तुम्हे मास का भी त्याग करना होगा तो उसकी व्याकुलता और भी वढ जाती है; क्योंकि वह समझता है कि उसे सारी शक्ति मास से ही मिलती है; पर यदि उससे स्नान करने को कहिये तो वह किसी तरह मान जायेगा, खास तौर से प्राकृतिक स्नान, क्योंकि इसमे ठंडे पानी मे सारे शरीर को क्या आधे शरीर को भी डुवोने की जरूरत नही पडती। तो फिर पहले प्राकृतिक स्नान ही करना आरभ किया जाय।

निश्चय ही जल प्रकृति की विशेष औपधि है, जिसके द्वारा वह अपने वच्चों को वड़े-वडे लाभ देना चाहती है; और जो जल का यह प्रयोग प्रकृति की इच्छित रीति से करेगा उसे वाइविल का यह वाक्य "पृथ्वी को कोई रूप नही मिला था, वह विल्कुल शून्य थी और ईश्वर की सत्ता समुद्र पर राज्य करती थी" समझ मे आ जायगा। वपतिस्मा लेते वक्त पाक फरिश्ते क्यो ईसा के पास आये ? और क्यों वपतिस्मा लेना ईसाई-सप्रदाय धार्मिक संस्कार एवं शारीरिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य का चिह्न माना जाने लगा, इसका कारण भी वह समझ जायगा

पर आज देखिये तो कोई वहरा मिलेगा, किसीको दूर की चीज दिखाई नही देती, किसीके पैर सूजे है, किसीके कूवड़ निकल आया है; किसीका यकृत काम नही करता, किसीके मूत्राशय मे गड़वड़ी है, कोई मिरगी के दौरे से परेशान है, कोई पागलपन का शिकार है और

कोई दिमाग की कमजोरी से पीडित है। कितने ही यक्ष्मा से पीडित हो कब्र की तरफ बढते दिखाई देते है तो कितने ऐसे मिलेगे जो समाज से वहिष्कृत है क्योकि वे उपदश से ग्रस्त है। अब आप मुझसे पूछ सकते हैं "क्या यह स्नान इन सभी रोगो का नाशक है और जल का यह एक प्रयोग क्या सभी रोगियो का तारक है ? इस साधारण से स्नान मे इतनी करामात छिपी तो दिखाई नही देती ? इस प्रश्न का मेरा उत्तर यह है "हा, प्रत्येक रोग मे, प्रत्येक रोगी के लिए और रोग की प्रत्येक अवस्था मे यह स्नान यथेष्ट है।" इस रीति से रोग-निवारण बड़ा सरल कार्य दिखाई देता है, पर जो विधि प्राकृतिक है उसका सर्वथा सरल होना भी आवश्यक है। हमारे शरीर, मन और आत्मा मे पैदा होनेवाले सारे विघ्नो और रोग के सारे लक्षणो का कारण हमारा प्रकृति के नियमो का उल्लंघन करना और रौंदना है। इसलिए स्वास्थ्य-प्राप्ति का एक ही मार्ग है और वह है प्रकृति की ओर लौटना, प्रकृति-पथ पर चलना और प्रकृति का बताया उपचार करना। जिस प्राकृतिक जल-प्रयोग की यहा चर्चा की जा रही है उसके अलावा कोई अन्य प्रयोग प्रकृति हमे नही बताती।

प्रकृति मे प्रत्येक ऐसी चीज, जिसे मनुष्य के हाथो ने अपवित्र और दूपित नही किया है, शिव और सुदर है अर्थात् विश्वसनीय है। मनुष्य जितना ही प्रकृति की ओर बढेगा और उसकी औपधियो को अपनायेगा वह उतना ही अपने शरीर, मन और आत्मा मे आई खराबी के और बची जीवनी-शक्ति के मुताविक जल्दी या देरी से पुन: स्वास्थ्य प्राप्त करने मे सफल होगा। अत यदि हम प्रकृति के आदेशो को पुन. समझने की कोशिश करें और उनका पालन करना अपनी मानसिक और शारीरिक शक्ति और दशा के अनुरूप सच्चे हृदय से आरंभ कर दे तो समझ लीजिये कि हमने अपना कर्तव्य

पूरा कर दिया; जिसका परिणाम स्वतः हमारे लिए अधिक-से-अधिक शुभ और मंगलकारी होगा।

सर्वांगसुंदर और सुशील मनुष्य अर्थात् पूर्ण स्वस्थ मनुष्य के सबसे अच्छे उदाहरण हैं बल्वेडियर का अपोलो और वीनस (काम की देवी)। ये यूनानी मूर्ति-कला की उत्कृष्ट कृतियां हैं। उदाहरण के अभाव में हम इसकी कल्पना ही नहीं कर सकते कि मनुष्य की बौद्धिक और आत्मिक शक्ति का मापदंड क्या होना चाहिए, उसे कितना सजीव होना चाहिए, उसकी बुद्धि कितनी ग्रहणशील और तीक्ष्ण, उसका स्वभाव कितना मृदु एवं उसके हृदय में कितनी दया और प्यार होना चाहिए अर्थात् उसे देवत्व के कितने निकट पहुंचना चाहिए। इसकी कल्पना तो तब हो सकती जब पूर्ण विकसित काकेशश जाति (कोहेकाफ के रहनेवाले) प्रकृति से बिछुड न गई होती।

मनुष्य जब पूरी तरह प्राकृतिक जीवन अपना लेगा तो वह अपने शारीरिक,[1] मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य के आदर्श के निकट पहुंच जायगा। इस आदर्श के कितने निकट वह पहुंचेगा यह उसके वंशानुगत प्रभाव, उम्र, जीवनी-शक्ति और प्राकृतिक जीवन की पूर्णता अथवा अपूर्णता पर निर्भर है।

बच्चों के लिए यह अच्छा अवसर है। अतः जिस तरह हो उन्हें पुनः स्वर्गीय सुख के रास्ते पर चलाना चाहिए और प्राकृतिक स्नान जरूर कराना चाहिए। तब हमें यह देखकर आश्चर्य होगा कि स्वभाव

[1]जलस्नान-जैसे पूर्णतः प्राकृतिक उपादानों की सहायता से ही शरीर को सच्चे अर्थ में सुन्दर बनाया जा सकता है। केवल यही एक ऐसा साधन है जिससे मुंह की झुर्रियां गायब हो जायंगी और त्वचा सुचिक्कण। दूसरे सभी उपाय व्यर्थ हैं, लाभ से अधिक वे हानि पहुंचाते हैं। काश, हमारी माताएं और बहनें इसे समझ सकतीं!

से वे सुशील हो गये है और स्कूल मे उन्हे पाठ भी वहुत जल्द याद होने लगा है । वोदापन और मूर्खता भी पागलपन की तरह के ही रोग है। ये भी प्राकृतिक स्नान से अच्छे हो जाते है ।

वाझपन और वच्चा होते वक्त के कष्ट वडे भयावह है। प्राकृतिक स्नान के प्रयोग से, इस प्रकार प्राकृतिक जीवन की ओर आंशिक रूप से लौटने से सभ्यता की दीवानी स्त्री पर से यह शाप बहुत-कुछ हट जायगा । प्रकृति के संपर्क मे रहनेवाली सभी मादाओं की तरह उसे भी वच्चा जनते वक्त न कोई कष्ट होगा और न इससे उसे कोई खास कमजोरी आयेगी । वच्चा भी अधिक स्वस्थ और सुदर होगा और उसे पिलाने का मधुर कर्तव्य पालन करने के लिए प्रकृति उसे यथेष्ट दूध देगी । इस दिशा मे मुझे अनेक अनुभव हुए है और सभी सफल रहे है । हम यह देख चुके है कि सभी रोग और विशेषतया जीर्ण रोग प्रकृति के नियमो के उल्लघन के फल है । जैसाकि मैने पहले कहा है, अप्राकृतिक भोजन पचता ही नही और यदि पचता भी है तो वड़ी कठिनाई से । ऐसे भोजन के कारण और हमारे अनेक दूषणो के कारण हमारा नाड़ी-वल अथवा जीवनी-शक्ति घट जाती है । यही से जीर्ण रोग का आरभ होता है । विजातीय द्रव्य पेट से वायव्य, तरल और घन-रूप मे उठकर सारे शरीर मे फैल जाता है ।[1] यह शरीर की आकृति को वदल देता है । मस्तिष्क और आत्मा मे विकृति पैदा कर देता है । प्रत्येक विचारवान् आदमी जानता है कि शरीर, मस्तिष्क और आत्मा मे वडा निकट और गहरा सबध

---

[1]एक सैनिक को एक वार कधे मे गोली लगी और वह उस वक्त निकल न सकी । वह धीरे-धीरे सरककर एक साल वाद पैर मे त्वचा पर आ गई । इस उदाहरण से शरीर मे विजातीय वस्तु के चलने का अनुमान आसानी से किया जा सकता है ।

है। भोजन का अनपचा भाग और विजातीय द्रव्य ज्योही शरीर मे इकट्ठा होना शुरू होता है शरीर उसे अपने मल-मार्गो से मल, मूत्र, प्रश्वास, स्वेद आदि के रूप मे निकालने की कोशिश करता है; पर यदि विजातीय द्रव्य बराबर इकट्ठा होता रहता है तो फिर वह स्वाभाविक रूप मे नही निकल पाता। और शरीर ताजी हवा, हवा के झोके, ठडक आदि से उद्दीपन पाकर इसे जबरदस्ती निकालने की कोशिश करता है। शरीर की इस क्राति को तीव्र रोग कहते हैं। इस क्राति के साधारण रूप जुकाम वगैरह को सर्दी लगना कहते हैं। उसके उग्र रूप जैसे चेचक, लाल बुखार, हाफाडाफा, मीयादी बुखार, हैजा आदि मे शरीर में उठती सड़ान के फलस्वरूप हमेशा ज्वर भी साथ होता है।

अतः तीव्र रोगों को, जिनसे लोग व्यर्थ डरते है, शरीर का शोधक एवं लाभकर उभार समझना चाहिए और उनके आने पर सहर्ष उनका स्वागत करना चाहिए। वे खतरनाक तभी साबित होते है जब उनका दवा आदि से गलत उपचार होता है और रोगी को ताजी हवा से वंचित कर दिया जाता है। इससे शरीर कमजोर हो जाता है, उसके सारे कार्य बंद हो जाते है और विजातीय द्रव्यो को, जो आदोलित हुए रहते है, शरीर निकाल नही पाता, जिसके फलस्वरूप रोगी को बड़ा कष्ट होता है और उसकी मृत्यु तक हो जाती है।

उदाहरणार्थ यदि कफ (विजातीय द्रव्य) काफी मात्रा मे निकल जाय तो सर्दी लगना हमेशा लाभकर सिद्ध होती है। चेचक मे बालक की मृत्यु तभी होती है जब दाने पूरे वेग से नही निकलते अर्थात् दानो के रूप मे शरीर का विजातीय द्रव्य अच्छी तरह बाहर नही आ पाता।

रोग तभी बढता है जब विजातीय द्रव्य मे गति आ जाने के कारण

और उसके सडने की अवस्था मे उसके कणो के आपस मे रगडने के कारण शरीर मे गरमी उत्पन्न हो जाती है। यह गरमी खास तौर से पेट मे, जो रोग का प्रधान स्थान है, पैदा होती है। तीव्र रोग अर्थात् तीव्र ज्वर मे जब विजातीय द्रव्य आदोलित हो उठता है, शरीर की गरमी इस कदर बढ जाती है कि शरीर के लिए खतरा पैदा हो जाता है। प्राकृतिक स्नान से यह गरमी काफी कम की जा सकती है। पानी, खास तौर पर ज्यादा ठडा पानी, ज्योही पेट पर लगता है रोगी को बडी शाति मिलती है और वह ताजगी का अनुभव करने लगता है। स्नान से शरीर की जीवनी-शक्ति भी बढती है जो उसे रोग के कीटाणुओ को निकाल फेकने और शरीर को निर्मल बनाने मे सदा सहायक होती है। फलत मल शरीर से शीघ्र ही (कभी-कभी इसमे दो-तीन दिन तक का समय भी लग जाता है) पसीने, पाखाने और पेशाब के रूप मे तेजी से निकलने लगता है।

इसलिए तीव्र रोग होने पर, चाहे वह साधारण जुकाम हो या हाफाडाफा, मीयादी बुखार, हैजा आदि-सा असाधारण रोग, प्राकृतिक स्नान करना चाहिए और फिर धूप लेकर या ऊनी कपडे ओढकर पसीना लाने की कोशिश करनी चाहिए। इन रोगो मे वायु और प्रकाश-स्नान खास तौर से लाभकारी है। इसका खास ख़याल रखना चाहिए कि रोगी को रात-दिन शुद्ध एव स्वच्छ वायु मिले। जाडे के दिन हो और ठडक काफी पडती हो तोभी कमरे की खिडकिया खुली रखनी चाहिए। भोजन का चुनाव बडी समझदारी से किया जाय। जहातक हो सके इसे हमेशा प्राकृतिक रखा जाय। यदि इन नियमों का पालन किया गया तो परिणाम हमेशा ठीक होगा और रोग जाने के बाद स्वास्थ्य इतना अच्छा हो जायगा कि आप यह कह उठेंगे कि दयालु प्रकृति हमारे लाभ के लिए हमारे शरीर मे रोग उत्पन्न करती

है। संभवत. यहां यह बताने की आवश्यकता नही है कि तीव्र रोग होने पर जितना शीघ्र इस विधि से उपचार आरम्भ कर दिया जायगा, लाभ भी उतना ही निश्चयात्मक रूप से और स्थायी मिलेगा। यदि इन उपायो का अवलंबन रोगी की अतिम अवस्था में करेंगे, जबकि रोगी को गया हुआ समझ लिया जाता है, तब रोगी के अच्छा होने की उम्मीद बहुत थोडी रह जायगी।

औपधिया शरीर को पगु बना देती है और उसके तात्त्विक कार्यों को रोक देती है। शरीर की इसी दशा को आजकल तीव्र रोगों का शमन कहा जाता है। इन शमनात्मक उपायो के फलस्वरूप शरीर की बडी क्षति होती है। वह नाड़ी-दौर्बल्य, दूपित घाव, मृगी, यक्ष्मा से जीर्ण रोगो का शिकार हो जाता है। आजकल जो नये-नये रोग व्यापक रूप मे फैले हुए दिखाई देते है उसका कारण टीका और औषधियां ही हैं।

जीर्ण रोग की बढी हुई अवस्था ने जीवनी-शक्ति (पाचन-क्रिया) बहुत घट जाती है, मलनिष्कासन के द्वार (गुर्दे, पेट, आते) बिल्कुल निष्क्रिय हो जाते है और त्वचा अपना कार्य बिल्कुल नही करती। शरीर मे विजातीय द्रव्य को तेजी से निकालने की शक्ति नही रह जाती—तीव्र रोग के न होने पर विजातीय द्रव्य शरीर के अंदर ही सडता रहता है, फिर वह किसीके फेफड़ो मे, किसीके पैरों मे, किसीकी आंखों मे तो किसीके मस्तिष्क मे अंदरूनी ज्वर पैदा कर देता है। अत मे सारा नाड़ी-मंडल ही विक्षिप्त हो जाता है, उसमे पूर्ण अवसाद आ जाता है। अब यक्ष्मा, नासूर, उपदंश, मधुमेह, मिरगी, गठिया, खुले घाव, पागलपन आदि रोग होते हैं जिन्हे आम तौर से जीर्ण रोग कहते है। इन रोगों मे विजातीज द्रव्य शरीर का ध्वंस कर देता है और शरीर अधिकाधिक कमजोर होता जाता है। शरीर

मे इतनी शक्ति नही रह जाती कि वह विजातीय द्रव्य को वलपूर्वक तेजी-से या धीरे-धीरे भी निकाल सके । अत नाडी-दौर्बल्य, पागलपन, यक्ष्मा आदि के रोगियो को शायद ही कभी जुकाम होता है और शायद ही कभी उन्हे मीयादी बुखार आदि तीव्र रोग होते है। इसे शुभ लक्षण न समझकर रोगी के लिए बुरी सूचना समझना चाहिए। इनमे भी किसी-किसी रोगी की जीवनी-शक्ति प्राकृतिक स्नान और अन्य प्राकृतिक उपचारो से इतनी तेजी से और इतनी अधिक वढती है कि कभी-कभी उन्हे जुकाम-खासी, ज्वर आदि या अन्य तीव्र रोग हो जाते है, पर ये होते हैं वहुत कम और होते भी है तो वहुत हल्के रूप मे। फिर भी इनकी निरापदता और शोधन-शक्ति स्पष्ट प्रकट होती है। जीर्ण रोग के रोगियो को कभी-कभी फोडे और नासूर भी हो जाते है जिसका अर्थ यही है कि प्रकृति उनके द्वारा विजातीय द्रव्य को बाहर निकालने का प्रयास कर रही है।

इन रोगो को हर दशा में शुभ लक्षण समझना चाहिए ।

यही समय है जव प्राकृतिक उपादानो (स्नान, शुद्ध वायु, प्रकाश और प्राकृतिक भोजन) द्वारा विजातीय द्रव्य निकालने मे शरीर की सहायता करनी चाहिए ताकि शरीर को अधिक-से-अधिक तीव्र रोगो का लाभ मिल सके । सवसे वडी वात यह है कि ऐसे मौको पर हम जरा भी न डरे।

प्राकृतिक जीवन अर्थात् प्राकृतिक स्नान, प्राकृतिक भोजन और नंगा रहना शुरू करने पर लोग कुछ समय के लिए दुवले हो जाते है, कमजोरी और थकान का अनुभव करते है, चेहरा काला दुवला-सा दिखाई देता है और अग-अग मे दर्द होने लगता है। ये लक्षण उभार की शुभ सूचना है, इनकी वजह से परेशान न होना चाहिए। हमे यह हमेशा ध्यान मे रखना चाहिए कि जो उपचार वस्तुत प्राकृ-

तिक है उससे कभी भी किसी प्रकार की हानि होने की सभावना नही है और उपचार की अवस्था मे जो भी लक्षण उत्पन्न होते है, चाहे वे आधुनिक दृष्टिकोण के कारण[1] कितने ही खतरनाक क्यों न प्रतीत हो, स्वास्थ्य के लाभ के लिए ही उत्पन्न होते है।

बहुत पुराने रोगों मे यह नवीन स्नान आश्चर्यजनक रीति से लाभ

---

[1]प्राकृतिक चिकित्सा के साथ एक बडी कठिनाई यह है कि शुरू से ही और खास तौर से रोग के तीव्र रूप धारण करने पर कुछ नासमझ लोग अपनी राय और हिदायत आदि से रोगी को डरा और घबरा देते हैं।

स्वस्थ और समझदार आदमी कभी ऐसा नही करते। एक तो उनके पास फालतू समय नही रहता, दूसरे वे जानते हैं कि जिस विषय का उन्हे ज्ञान नही है उसपर उन्हे राय देने का अधिकार नही है; पर जिन लोगो की मानसिक और शारीरिक शक्तियो को रोग ने क्षीण कर दिया है, जिन्हे चीजें समझ मे नही आती, जो अपनी कमजोरियों के कारण अपने जीवन से असन्तुष्ट है और जिन्हे कोई काम नही है वे प्राकृतिक जीवन शुरू करनेवालो के लिए वास्तविक कष्ट के कारण होते हैं। इन अभागो से बचने का उपाय प्रत्येक आदमी को स्वयं सोचना चाहिए, पर कोई ऐसा कार्य नही करना चाहिए कि उनको कष्ट हो। जो हमारे प्राकृतिक जीवन अपनाने पर अपना मजाक उड़ाते हैं और हमसे घृणा करते है उनके प्रति भी हमे अशिष्ट नही होना चाहिए, वरन् उनसे प्रेमपूर्ण वर्ताव करना चाहिए। ऐसे आदमियो मे अधिकतर ऐसे ही होते है जो अप्राकृतिक जीवन की खामियो और उनसे उत्पन्न होनेवाली कठिनाइयो को जानते हैं, पर उनमे या तो साहस नही होता या उन्हे ऐसा सुयोग नही मिला कि वे अपनी गलत जीवन-पद्धति को त्याग सकें। वे हमारी दया और सहानुभूति के खास तौर से अधिकारी है। यदि वे अपने रोगी-स्वभाव के वशीभूत होकर हमे कभी कुछ कह दे तो हमे उन्हे क्षमा करना चाहिए। ये लोग जो कुछ कहते हैं उसे सुनकर चिकित्सा के आरभ मे ही कष्ट होता है, पर शीघ्र ही वह शाति और गभीरता प्राप्त होती है जिसे किसीके कटाक्ष या बोल भंग नही कर सकते।

करता है। दीर्घकाल से आते रोगो मे रोगी के सारे शरीर मे और खास तौर से पेट मे बेहिसाब गरमी पैदा हो जाती है और वह उस मे भुन-सा जाता है। आतो की श्लैष्मिक झिल्लिया सूख जाती है और मल सरक नही पाता, फलतः घातक कब्ज रहने लगता है। इस समय यदि पेट को ऊपर से यथेष्ट शीतल जलद्वारा ठडा किया जाता है और ऐसा करते वक्त उसे रगडा जाता है तो पाचन-शक्ति तुरत उद्दीप्त होती है। उसे उस सुख का अनुभव होता है जिसे वह भूल-सा गया था। उसमे प्रसन्नता-प्रदायिनी आशा का सचार होता है और उसे विश्वास होने लगता है कि वह अवश्य स्वस्थ हो जायगा।

पैर की सूजन, आख और कान के रोग, नाक का नासूर या पैर के खुले घाव-जैसे जीर्ण रोगो मे यदि जल का प्रयोग किया जाय तो किसी को किसी प्रकार का आश्चर्य करने की जरूरत नही है।

विजातीय द्रव्य की उत्पत्ति पेट से होती है। वहा से वह रोगी के अग मे पहुंचता है। अब उस अग के नीरोग होने के लिए यह आवश्यक है कि विजातीय द्रव्य शरीर के बाहर निकल जाने के लिए सारे शरीर से आकर पेट मे वापस जाय।

नाड़ी-दौर्बल्य, पागलपन, नासूर, यक्ष्मा आदि रोगो से, जिन्हे आजकल सर्वथा दुस्साध्य समझा जाता है, ग्रस्त भयकर रोगियो को भी प्राकृतिक स्नान से कुछ सप्ताह या कुछ महीनो के अविश्वसनीय रूप से थोडे समय मे यथेष्ट लाभ होता है और कभी-कभी इतने ही समय मे उनका रोग सर्वथा निर्मूल हो जाता है।

साधारणतया ऐसे जीर्ण रोगो मे, जिन्हे रोगी वर्षो से पालता रहता है, इस चिकित्सा-विधि मे बडे धैर्य और लगन की जरूरत होती है क्योकि ऐसे रोगी की जीवनी-शक्ति बहुत धीरे-धीरे और क्रम-क्रम से ही बढती है जिसपर रोगी का स्वस्थ होना निर्भर है। फिर भी

लाभ और बहुत अधिक लाभ होता है—जो लाभ आज की प्रचलित पद्धतियां संभव समझती है उससे तो यह लाभ हर हालत मे बहुत अधिक होता है। कुछ खास तरह के जीर्ण रोगियों को, जिनका रोग अत्यधिक पुराना होता है, कभी-कभी बहुत थोडा लाभ और कभी बिल्कुल लाभ नही होता। कभी तो ऐसे-ऐसे लोग, जो सर्वथा मृत्यु के मुख मे गये होते है, चिकित्सा आरंभ करते है।

जख्मी हो जाने पर पशु अपने जख्मी अग को ठडा करने के लिए पानी मे रखते है और बीच-बीच मे थोड़ी-थोड़ी देर के लिए लगातार चाटते हैं। आज की प्रचलित चिकित्सा-पद्धति मे भी हथियार के भोंकने से हुए घाव, कटने, जलने, ददोरा पड़ने से बने जख्म पर पहले पानी डाल कर, उसे ठंडा किया जाता है और फिर उस पर घाव की छोटाई-बड़ाई के अनुसार मोटी-पतली पट्टी पानी मे भिगोकर रखी जाती है और फिर उस पर ऊनी कपड़ा रखकर बांध देते है। इन घावों पर कपडे की पट्टी से मिट्टी की पुलटिस बांधना ज्यादा अच्छा रहेगा। मिट्टी की पुलटिस के बारे में विस्तार से मै फिर बताऊंगा।

घाव का चाटना, जहा तक कि यह संभव है, घाव के लिए बड़ी अच्छी चीज है। एक नवजात शिशु को कुछ चर्मरोग था, उसकी मा ने उसे चाट-चाटकर अच्छा कर दिया, यह बात अभी-अभी मेरे देखने मे आई है। घाव को बीच मे जहां गंदगी वगैरह लगी हो, न चाटकर, घाव के चारों तरफ की त्वचा चाटनी चाहिए। घाव बड़ा हो तो चाटने के अलावा प्राकृतिक स्नान और अन्य प्राकृतिक उपायो का भी, जिनकी चर्चा मै आगे चलकर करूंगा, सहारा लेना चाहिए। शरीर की भीतरी गरमी शांत करने के लिए और जीवनी-शक्ति वढाने के लिए इन उपचारों की बड़ी आवश्यकता है। प्राकृतिक चिकित्सा

द्वारा जो बडे-बडे लाभ होते हैं उन पर इन सब उपचारो को साथ करने पर किसी का भी विश्वास निश्चय ही हो जाएगा।

जो पशु प्रकृति के सपर्क मे रहते है उनके बडे-बडे घाव और चोट उनके प्राकृतिक जीवन के कारण, आश्चर्य मे डालनेवाले थोडे समय मे, बिल्कुल अच्छे हो जाते है। जगल मे रहनेवाले किसी पशु के पैर मे यदि कभी गोली लग जाती है या जाल मे फंस जाने के कारण उसका पैर फट जाता है तो वह बहुत थोडे समय मे अच्छा हो जाता है, और अच्छा हो जाने पर पशु इस प्रकार रहता है जैसे उसे कभी कुछ हुआ ही नही था।

एक बार एक हिरन पर बदूक चलाई गई और गोली उसके वक्षस्थल के पास से पार हो गई, दूसरी तरफ जहा गोली निकली उसके पास का भाग खून से तर हो गया। दो-चार दिन बाद ही शिकारियो ने फिर उसका पीछा किया और उसे एक बाडे मे ला घेरा। उतना बडा घाव हो जाने पर भी हिरन बदिश को बड़ी आसानी से पार कर गया। इस हिरन को जो गोली लगी थी निस्सदेह उससे उसके फेफड़े, हृदय अथवा किसी विशेष अग को कोई क्षति नही पहुंची थी।

आदमियो को फोडा होने पर उससे जो मवाद वगैरह बहता है वह शरीर का अपनी गदगी निकालने का प्रयास है। तीव्र रोग की भाति उसे भी लाभकर चिह्न समझना चाहिए। उससे खतरा और खराबी तभी होती है जब उसकी झूठी चिकित्सा की जाती है। फोड़ों की चिकित्सा भाप द्वारा कभी न करो, न उन पर कभी भाप लगाओ।

सबसे आवश्यक बात यह है कि अब मनुष्य के शरीर पर डाक्टर की छुरी और छुरे का लगना बद हो जाना चाहिए। चीर-फाड़

मनुष्य की मूढता का चिह्न है। इससे प्रकृति के कार्य में हस्तक्षेप होता है जिसका परिणाम हमेशा भयंकर होता है। यदि परिणाम तुरंत दिखाई न दे तो भी देर-सवेर जरूर प्रकट होता है।

जिसकी यह धारणा हो कि छुरी-चाकू के वगैर हर जगह काम नही चल सकता उसे पहले खराव-से-खराव रोगियों पर प्रकृति के उपादानों का व्यवहार समुचित रूप से और समुचित रीति से कर देखना चाहिए।[1]

प्रकृति को पट्टी-फट्टी[1] पसंद नही है। वह नहीं चाहती कि

---

[1]प्राकृतिक चिकित्सा मे चीर-फाड़ की जरूरत नही है—यह कहते समय हमे उसकी परिधि को समझ लेना चाहिए। सभी जानते हैं कि दातों के खराव होने का कारण हमारा अप्राकृतिक जीवन है। चीर-फाड को विल्कुल तर्क करने का अर्थ होगा खराव दात उखड़वाये न जायं और खोडरे भराये न जाय। इसमे संदेह नही कि प्राकृतिक जीवन व्यतीत कर और मिट्टी की पुलटिस की सहायता से इन व्याधियो एव इनसे होने वाले दात के दर्द से भी वचा जा सकता है।

इसी तरह वाल और नाखून कटाने से भी वचना कठिन है। प्रकृति के संपर्क मे रहने वाले पशु इन्हें नही कटाते, फिर भी इसकी वजह से उनका चेहरा कुरूप नही हो जाता। मुक्त प्रकृति मे रहने वालो की प्रत्येक चीज का नियमन प्रकृति स्वय करती हैं।

और भी कई हालतो में (जन्मजात विकृति मे भी) अस्त्रोपचार के कष्ट से वचा जा सकता है। वेकार अगों का उपयोग सभव हो सकता है तथा और भी कई प्रकार से लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं, पर जिन अवस्थाओ मे अस्त्रोपचार की वात मैं कर रहा हू वे आज, जिन अवस्थाओ मे अस्त्रोपचार किया जाता है उनसे वहुत भिन्न हैं। आज के अस्त्रोपचार के प्रभाव की जाच की जाय तो ज्ञात होगा कि इसकी वजह से स्वास्थ्य वहुत खराव हो जाता है और दिन-प्रतिदिन खराव होता ही जाता है, यहां तक कि प्रकृति के कार्य मे अस्त्रोपचार द्वारा व्याघात पड़ने के फलस्वरूप मृत्यु तक हो जाती है।

हड्डी, (पसली या पैर की हड्डी वगैरह) टूटने पर भी पट्टी बाधी जाय। यदि टूटी हड्डी यो ही छोड दी जाय तो वह कभी गलत जगह या जगह से इधर-उधर नही जुटती।

इस तरह हमने देखा कि प्राकृतिक स्नान ठीक तरह से लिया जाय तो वड़े काम का और वडा लाभकर सिद्ध होता है।

मेरे चिकित्सालय मे लोग यह स्नान अधिकतर खुली जगह मे करते हैं और आरभ से ही उन्हे इसमे आनद आता है, प्रसन्नता प्राप्त होती है और इच्छित लाभ प्राप्त होता है। इस स्नान के प्रभाव से डरपोक, गमगीन और निराश व्यक्ति प्रसन्न, तेजोमय, हिम्मतवर और बहादुर हो गये हैं।

प्रकृति-पथ पर फिर चलने की कोशिश करनेवालो को इस स्नान से वडी सहायता मिलती है।

इसकी सहायता से प्रकृति के और अधिक उपचारो की जानकारी होती है, स्वास्थ्य अधिकाधिक सुदर होता जाता है और अधिकाधिक आनंद की प्राप्ति होती है।

२

शरीर को थपथपाना और रगड़ना

प्राकृतिक स्नान की विधि निर्धारित करते वक्त मैने शरीर के रगड़ने की चर्चा करते हुए इसकी ओर ध्यान आकृष्ट किया है।

तीव्र एव जीर्ण रोग तथा फोडे होने की अवस्था मे भी शरीर और मस्तिष्क को आराम देने की वडी आवश्यकता है। इन अवस्थाओ मे शरीर को रोग-निवारण के लिए अपनी सारी शक्ति लगाने की जरूरत होती है।

गिरकर चोट खा जाने पर बच्चा जब रोता हुआ मां के पास आता है तब मां डाक्टरी किताब निकालकर नही देखती कि उसमें क्या करने को कहा गया है, वह तुरत बच्चे के प्रति प्रेम और सहानुभूति से प्रेरित होकर चोट लगे स्थान पर हौले-हौले हाथ फेरती है, थपथपाती है।

क्या आपने गांव के ऐसे गुणियों की बात नहीं सुनी है जो लोगों का दर्द और मोच मल और थपथपाकर जल्दी-से-जल्दी निकाल देते थे ?

गावों के ये सरल और पवित्र प्राणी यह काम अर्थ और लाभ की दृष्टि से नही करते थे। उनका यह खयाल था कि सेवा के बदले यदि वे द्रव्य लेगे तो उनकी चिकित्सा कारगर न होगी। उनकी भावना मेथ्यू के इस उपदेश से मिलती-जुलती है :

"तुझे यह चीज मुफ्त मिली है और मुफ्त ही तू उसे बांट।"

अपने सगी-साथियों और गांव के निवासियों की इस प्रकार की सेवा वे केवल प्रेमभाव से करते थे। पिछले कुछ दशकों मे विज्ञान और सभ्यता, शिक्षा और ज्ञान का बड़ा प्रचार हुआ है और इसका हमे बडा घमंड भी है; तथापि हमे दुःखपूर्वक कहना पड़ता है कि "पृथ्वी और स्वर्ग मे अभी ऐसी अनगिनत चीजे है जो अब तक हमारे स्वप्न मे भी नही आई है।"

जब कभी हम उन सेवाव्रती नर-नारियो की बात करते है तो उनके प्रति हम अपनी घृणा और अवहेलना दिखाते देखे जाते है। आज उनकी जगह पेशेवर अंगमर्दक स्त्री-पुरुषों ने ले ली है। वे अपने काम की खास शिक्षा पाये हुए होते है, उन्हें शरीर-शास्त्र का ज्ञान होता है, वे जानते है कि शरीर मे नस-नाड़ियों और मांसपेशियों का स्थान क्या और कहा है, पर आज के ये अंगमर्दक वह काम

सप्ताहो और महीनों मे भी नही कर पाते जो गाव के अपढ-अशिक्षित नर-नारी एक वार मे या दो-चार दिन मे कर देते थे। उनके हाथ में कुछ ऐसा जादू होता था कि उसके प्रभाव से रोग छू-मतर हो जाते थे।

आज के अगमर्दक अनेक दिनो तक रोगी की चिकित्सा चलाते रहते है। चिकित्सा के बीच मे वे स्वयं पीले पड जाते है और रोगी हो जाते है, परतु कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है कि इनमे से कोई-कोई अगमर्दक जो पहले बीमार थे, स्वस्थ भी हो जाते हैं।

शरीर की मालिश करते और थपथपाते वक्त एक का स्वास्थ्य और जीवनी-शक्ति दूसरे मे प्रवेश कर जाती है। इस विधि से शरीर का रोगी अग सप्राण हो उठता है। मालिश करने और थपथपाने का विशेष प्रभाव और लाभ यही है। इसके लिए अगमर्दन की शिक्षा प्राप्त करने की जरूरत नही है, शिक्षा से हानि की ही अधिक सभावना है।

वाष्प और तरल पदार्थो का जव सपर्क होता है तो दोनो आपस मे मिल जाते है।

मनुष्य की आत्मा भी एक तत्त्व है। यह तत्त्व आकाश-तत्त्व से भी अधिक सूक्ष्म है, पर मनुष्य की आत्मा जिस तत्त्व की वनी है वह तत्त्व एक केद्र के चारो ओर इकट्ठा रहता है। यह केद्र है इच्छा-शक्ति। अत· मनुष्यो की आत्माओ का पारस्परिक परिवर्तन या संमिलन दो जगह रखे हुए वाष्पो की भाति नही होता। उनकी इस क्रिया पर पारस्परिक पसद, नापसदगी, प्यार, उदासीनता, घृणा का बडा प्रभाव पड़ता है।

दो आत्माओ का पारस्परिक परिवर्तन, एक के प्रति दूसरे का आकर्षण अथवा विकर्षण हम अपनी आखों से देख सकते है। इन

क्रियाओं के फोटो लिये गए है जिनसे ये वाते स्पष्टत: प्रतीत होती है।

यही नहीं, दो प्राणियों की आत्माओं का यह पारस्परिक परिवर्तन इतनी पूर्णता के साथ हो सकता है कि उनके लिए कवि का यह कथन सर्वथा लागू होता है :

"आत्माएं दो हैं, पर वे बहती हैं एक विचार में, हृदय दो हैं, पर धड़कन एक ही है।"

जिन ग्रामनिवासियो के वारे मे मैने कहा है उनका शरीर तो स्वास्थ्य और जीवनी-शक्ति से भरा-पूरा रहता ही था, सर्व-साधारण के प्रति उनका अगाध प्रेम होता था और ईश्वर के प्रति अटल विश्वास। यही कारण है कि उनके शरीर से जादू का-सा प्रभाव रखने वाली आरोग्यकारी शक्ति निस्सरित होती रहती थी।

जव मर्दक कुछ दिनों तक लगातार रोगियों की मालिश करता रहता है तो उसकी वहुत-सी जीवनी-शक्ति और स्वास्थ्य खर्च हो जाता है और वह स्वयं वीमार पड़ जाता है। अव अगर वह ऐसे आदमियो की मालिश करता है जो उससे अधिक स्वस्थ है तो वह पुन: स्वस्थ हो जाता है। इससे यह स्पष्ट है कि मालिश कराके लाभ प्राप्त नही किया जा सकता, वरन् इससे जितना स्वास्थ्य है उसे खोने का भारी खतरा रहता है। आज के मर्दक के लिए मालिश करना व्यापार है और यह बहुत आनंददायक व्यापार नही है। उसे किसी तरह अपनी रोटी कमानी है और इससे मिलनेवाले पैसे के लिए ही वह यह कार्य करता है। उसे यह नही देखना है कि जिसकी मालिश करने वह जा रहा है उसकी मालिश करने की उसकी इच्छा होती है या नही।

यहां भी यही कहना पड़ता है :

'प्रकृति की ओर लौटो !'

माता यदि कमजोर और रोगी न हो तो वह अपने प्यार-भरे हाथों से अपने वच्चे की मालिश करके और थपथपाकर उसे शीघ्र और पूरा लाभ दे सकती है। यदि वह कमजोर हो, तव भी तो वह अपने वच्चे मे अपने प्राणो की अतिम वूद भी खुशी-खुशी डाल ही देगी।

मैने यह कहा है कि मालिश करते और थपथपाते वक्त मालिश करने वाले की जीवन-शक्ति और स्वास्थ्य रोगी के शरीर मे चला जाता है। इस क्रिया मे मर्दक के शरीर की उष्णता भी रोगी के शरीर मे प्रवेश करती है।

जिसमे जितनी ही उष्णता रहती है उसे उतना ही स्वस्थ समझा जाता है। इस गरमी, स्वास्थ्य तथा जीवनी-शक्ति को एक ही समझना चाहिए। इसलिए ऐसे ही आदमी, जिनके हाथ गरम रहते हैं, मालिश करने के उपयुक्त है। रोगियो के हाथ-पाव हमेशा ठडे रहते हैं।

माता, पिता, मित्र और ऐसे लोग, जो हमे हृदय से चाहते हैं, यदि स्वयं स्वस्थ है तो उनकी मालिश और थपथपाने से हमे लाभ हो सकता है।

यहा स्वास्थ्य से मेरा मतलव साधारण अर्थ मे ही है। सच्चे अर्थों मे तो सभ्य समाज मे पूर्ण स्वस्थ एक भी आदमी मिलना कठिन है।

मजदूरवर्ग के स्वस्थ और सुपुष्ट जन, जिन्हे मानसिक कार्य और सुधरे हुए जीवन ने रक्तविहीन, कमजोर और दुर्वल नही वना दिया है और जिन्हे खुले मे श्रमसाध्य काम करना पडता है, यदि मालिश करें और थपथपाये तो वे वहुत अधिक लाभ पहुचा सकते है। पर जीवनी-शक्ति का प्रेषण सवमे समान रूप से नही होता। यह मालिश

करने और करानेवाले के पारस्परिक प्रेम (सहानुभूति) पर निर्भर है। उनमे किसी एक की भी दूसरे के प्रति घृणा तो होनी ही नही चाहिए अन्यथा मालिश का कोई फल न निकलेगा।

इसलिए मालिश कराने के लिए सशक्त, स्वस्थ और सहानुभूति-पूर्ण आदमी चुनना चाहिए। वह देखने मे ही सुदर न हो, उसका स्वभाव मृदु और विचार भी अच्छे होने चाहिए। खुदगरज, कामचोर और झूठे आदमी से कोई सहायता नही मिल सकती। ऐसा आदमी अपनी उष्णता और जीवनीशक्ति अपने लिए बचा रखता है। वह इसका थोड़ा भाग भी, किसी भी तरह दूसरे को देना नही चाहता।

हमे अपनी शिक्षा, सामाजिक और आर्थिक स्थिति आदि के भुलावे मे पड़कर, अपने को दूसरों से ऊंचा मानकर मनुष्य-मनुष्य के पारस्परिक प्रेम और सहयोग मे व्याघात न डालना चाहिए। हमेशा याद रखो, जो प्रेम बोता है उसी के खेत मे प्रेम उपजता है।

जितना ही आदमी आज के विज्ञान से मुक्त होगा, जितना ही वह बालक के समान सरल बनेगा, उतना ही वह खुश रहेगा और उतनी ही सेवा वह अपने साथियों की कर सकेगा।

यह आवश्यक है कि मालिश द्वारा रोगी मे जीवनीशक्ति और उष्णता डालने की बात ही न सोची जाय। कम-से-कम मालिश करते वक्त तो इसका खयाल बिल्कुल ही न किया जाय। मालिश का एक मात्र उद्देश्य अपने भाइयो की सहायता करना एवं उन्हे रोगमुक्त करना होना चाहिए और इसके लिए मालिश करनेवाले मे आवश्यक सदिच्छा, लगन और तत्परता होनी चाहिए।

यदि बात इतनी ही है तो मालिश करने और थपथपाने के लिए किसी विशेष शिक्षा की क्या जरूरत है?

शरीर का कोई भी रोग-ग्रस्त अग जिसमे दर्द, सूजन या गठिया

रोग हो, मला और थपथपाया जा सकता है। उदाहरण के लिए, सिर मे दर्द होने पर गर्दन पर थपथपाना और मलना बहुत लाभ करता है। पेट और पिंडली पर थपथपाना साधारणतया बहुत लाभ-कर है, इससे स्वास्थ्य उन्नत होता है।

शरीर के जिस अंग की मालिश करनी हो या थपथपाना हो उसे पहले पानी से जरूर गीला कर लेना चाहिए। (उसमे किसी तरह का तेल लगाने की जरूरत नही है।)

मालिश और थपथपाने का काम शातिपूर्वक स्थिरभाव से और कडे हाथ से करना चाहिए। कभी-कभी हाथो को मुलायम भी कर देना चाहिए। मालिश की सही तरकीब धीरे-धीरे अपने आप मालूम हो जाती है।

शरीर में उष्णता और जीवनीशक्ति पहुचाने तथा उसे सबल एव सशक्त बनाने के लिए सबसे उपयुक्त समय स्नान के तुरत बाद है।

जब शरीर गीला रहता है तब जो आदमी उसे खुले हाथ से रगड़कर सुखाने की क्रिया करता है उसकी जीवनीशक्ति और उष्णता को वह बड़ी चाह से पीता है।

प्राकृतिक स्नान के बाद शरीर को रगडकर सुखाने के लिए जो उपयुक्त व्यक्ति की सेवा पा सकता है वह कुछ हालतो मे बहुत लाभान्वित हो सकता है और रोग से निवारण की राह सरल बना ले सकता है।

प्रकृति का प्रत्येक कार्य अपनी क्रिया और प्रतिक्रिया पर निर्भर है। संसार के सारे सबध आकर्षण और विकर्षण एव तज्जनित विनिमय के आश्रित है।

अन्य पौधो के साथ लगा हुआ पौधा अकेले खडे पौधे से ज्यादा

तेजी से वढता और पनपता है। पालतू पशुओं मे भी देखा गया है कि अकेले रहनेवाले पशुओं को जव अन्य पशुओं के साथ रखा और खिलाया जाता है तो वह ज्यादा खुश और स्वस्थ रहता है।

परतु पौधों और पशुओं की अपेक्षा मनुष्य अपने भाइयों पर अधिक निर्भर है। मनुष्य की सारी खुशी उसके सामाजिक जीवन, पारस्परिक प्रेम और सहायता पर निर्भर है और इनसे उसका स्वास्थ्य वहुत अधिक संवद्ध है। रोगी अपने वधु-वाधवों के प्यार पर खास तौर से आश्रित रहते है।

आपने कई लोगों को केवल दूसरे की प्रभावशक्ति से यौवन प्राप्त करते एवं आश्चर्यजनक रीति से स्वस्थ होते देखा होगा। कई रोगी, जिनकी जवानों से प्रेमपूर्ण मैत्री हो गई है, यकायक स्वस्थ हो गये हैं और उन्हे अपने स्वस्थ होने का कारण तक ज्ञात नही हुआ है। आपस में पवित्र और उत्कृष्ट प्रकार का प्रेम होने के फलस्वरूप हुई आत्मिक एकता के वाद जिन लोगों ने शादी या सगाई की है उनका स्वास्थ्य असाधारण रूप से अच्छा होते देखा गया है। जो दो आदमी एँक साथ सोते हैं वे सोते मे एक दूसरे को अपनी जीवनीशक्ति का एक वड़ा अंश दे सकते है। इस रीति से जवानो की सहायता[1] से

[1]सी० वटेन्स्टेड ने अपनी पुस्तक "नाडीशक्ति का स्थानातरीकरण" मे सभी उम्र के ऐसे अनेक रोगियो का वर्णन किया है जो स्थानातरीकरण की रीति से जीवनीशक्ति प्रदान किये जाने पर स्वस्थ हुए हैं, नवयौवन प्राप्त किया है और उनका कायाकल्प तक हो गया है। इस लेखक की धारणा है कि इस रीति से किसी की भी उम्र इच्छानुसार वढाई जा सकती है, स्वास्थ्य हर समय सुधारा जा सकता है और नवजीवन प्रदान किया जा सकता है। वटेन्स्टेड की ये वातें यद्यपि कल्पना-सी प्रतीत होती हैं फिर भी उसकी वातो से मालिश के विषय पर काफी प्रकाश पडता है।

कितने ही बूढो ने नवयौवन प्राप्त किया है । लेकिन स्वास्थ्य-लाभ और नवयौवन की घटनाए आकस्मिक सुयोग का फल है और इनके साथ अनेक प्रकार की परिस्थितिया जुडी हुई है ।

पर जीवनीशक्ति के इस प्रकार के प्रयोग की कोई प्रामाणिक रीति अभी तक ज्ञात नही हो सकी है । इस सबध मे भी हमे प्रकृति के इशारे पर चलना चाहिए । स्वास्थ्य और सुख के निर्झर-तट पर वह स्वय हमे ले जाएगी ।

प्रत्येक आदमी को कोई-न-कोई साथी, सगी, मित्र, सेवक या कोई आदमी ऐसा मिल जाएगा जिसमे ऊपर बताये हुए गुण होगे और वह स्नान के बाद उस के शरीर को रगडकर सुखा देगा या इस क्रिया मे उसकी सहायता करेगा । ऐसी सेवा के लिए हमे सदा कृतज्ञ होना चाहिए । इस सेवा का मूल्य पैसो मे नही चुकाया जा सकता, हार्दिक कृतज्ञता-प्रकाश ही इसका समुचित पुरस्कार है । इसके विपरीत यदि आप किसी दूसरे रूप मे इसका बदला देंगे तो लाभ सदा कम होता जायगा ।

हुक्म के बल पर किसी नौकर से शरीर को रगड़वाकर न सुखवाएं । उसी से यह कार्य लिया जाय जो मन लगाकर खुशी-खुशी यह काम करे । हमे अपने पर निर्भर व्यक्तियो के साथ इस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए कि वे हमेशा हमारे प्रेम के कारण हमारी सहायता करने को तैयार रहे ।

स्नान के बाद रगडने की क्रिया के सबध मे विशेष नियम बनाने की कोई आवश्यकता मै नही समझता । खुले हाथो, और जहा तक बन सके, शातिपूर्वक शरीर रगडा जाना चाहिए ।

जीवनीशक्ति का स्थानांतरीकरण स्त्री से पुरुष मे और पुरुष से स्त्री मे आसानी से हो सकता है ।

पर इस कार्य मे कामुकता को किसी प्रकार का भी कोई स्थान नही मिलना चाहिए। रगड़ने के कार्य मे सलग्न लोगों को सर्वथा पवित्र रहना चाहिए, अन्यथा लाभ के वदले हानि ही अधिक होगी।

विवाहित स्त्री-पुरुष को भी, जो एक-दूसरे को रगडकर सुखाने मे सहायता करना चाहते है, इस नियम का अवश्य पालन करना चाहिए। इस रीति के अलावा किसी दूसरी रीति से भी भिन्न लिंग के लोग जीवनीशक्ति के स्थानांतरीकरण मे एक-दूसरे की सहायता करना चाहे तो उन्हे भी इस नियम को सदा याद रखना चाहिए।

विजली गिरने या किसी ऐसी ही दुर्घटना में जिनकी आकस्मिक मृत्यु हो गई है वे अक्सर स्वस्थ एवं सुपुष्ट व्यक्तियों द्वारा देर तक लगातार रगडे जाने पर जी उठे है। यदि इस प्रकार शरीर रगड़ने से मरा आदमी जी उठ सकता है तो यह आसानी से समझा जा सकता है कि हमे सशक्त वनाने और हमारे रोग के निवारण में रगड़ना और थपथपाना कितने लाभकर हो सकते हैं। निश्चय ही अनेक रोगो में इससे आश्चर्यजनक लाभ मिल सकता है। अतः चलिए हम प्रकृति की ओर लौटे! इस द्वार से हम स्वास्थ्य-प्रदेश में प्रवेश करेगे, आनंद और प्रसन्नता के राज्य के हम अधिकारी होंगे। हमारी अशक्त धमनियो मे रक्त का शक्तिपूर्ण संचार होगा, हमारा हृदय आशा की किरणो से स्पंदित हो उठेगा।

: ४ :

वायु और प्रकाश-स्नान

प्रकृति तो मनुष्य को नगा ही पैदा करती है और सृष्टि के आरंभिक काल मे वहुत समय तक वह नंगा रहता भी था। वाइविल कहती है—"वे दोनो ही नंगे रहते थे—पति भी और पत्नी भी।" प्रकृति चाहती है कि अन्य प्राणियो की भाति मनुष्य भी सदा नगा रहे। प्रकृति की इस इच्छा को कौन वदल सकता है ?

नगा, निर्वस्त्र रहना, प्रकृति के अनुकूल है, अत: सही है।

यह सभी जानते है कि वायु और प्रकाश के आदी पशु और पौधे, दोनो ही अधेरी जगह मे रख दिये जाने पर मुरझाये से, जीवन-विहीन-से हो जाते है, पर प्रकाश मे लाने पर उनमे फिर जीवन-ज्योति जगमगा जाती है, वे प्राणपूर्ण प्रतीत होने लगते है। प्रकाश का प्रभाव छोटे-से-छोटे पौधो पर भी स्पष्टतः दिखाई देता है। प्रकाश पाते ही उनका रग खिल उठता है। प्रकाश की वदौलत पशुओ मे प्राण दौडता-सा प्रतीत होता है। प्रकाश के आते ही वे कुलाचे मारने और दौडने लगते है।

आज का सभ्य कहलाने वाला मनुष्य हरदम कपडो से ढका रहता है। उसके शरीर का अधिक भाग मानो अधेरे मे रहता है। उसे चाहिए कि जरा अपने कपड़ो को दूर करे, जगल मे जाय, शरीर पर हवा का झोंका और प्रकाश की किरणे लगने दे और तव देखे कि कैसी सजीवता और तेजस्विता का वह अनुभव करता है। शरीर के वायु और प्रकाश के ससर्ग मे आते ही अग-प्रत्यग तेजी से काम करने लगते है, जीवनी-शक्ति वढ़ती है और निर्जीव, रोगपूर्ण शरीर मे उल्लासजनक, हर्षोन्मादक भावना का सचार होता है।

अंधेरी जगहो मे वंद रहने पर भी पशुओं के रोमकूपो के द्वारा रोग की गरमी निकलती रहती है, पर कपड़ो के कारण मनुष्य-शरीर के इस स्वाभाविक कार्य मे भी वाधा पड़ती है। अच्छा हो कि वन मे; मैदान में या कमरे मे ही, जहां तक संभव हो अधिक-से-अधिक खिड़कियां खुली रखकर थोड़े समय के लिए ही सही, नंगे रहा जाय। यह क्रिया वड़ी प्रभावशाली और अद्‌भुत रूप से लाभदायक सिद्ध हुई है और इसके समान शक्ति देनेवाली तो कोई दूसरी तरकीव है ही नही।

प्रकाश जीवनी-शक्ति को नवजीवन प्रदान करता है, और त्वचा भी, जिसे अंदर से निकली गदी वायु को कपडों से ढकी रहने के कारण फिर-फिर सोखना पड़ता था, इस दूषण से मुक्त हो जाती है और खुलकर शुद्ध वायु ग्रहण कर पाती है।

इससे वायु और प्रकाश के आश्चर्यजनक एव जीवनदायक प्रभाव का कारण सरलता से समझा जा सकता है। स्वास्थ्य-रक्षा मे, नये-पुराने रोगों से मुक्ति देने मे और घावों के भरने मे वायु और प्रकाश कितने सहायक हो सकते हैं, यह साधारण वुद्धिवाले की भी समझ मे आने वाली वात है; पर डाक्टरो की कौन कहे, प्राकृतिक चिकित्सक भी इनका समुचित उपयोग नही करते यद्यपि इनसे सरल, सस्ती और सदा मिलती रहनेवाली दवा दुनिया मे दूसरी नही है।

तीव्र रोगों मे जान का अधिक-से-अधिक खतरा वहुत तेज वुखार मे ही रहता है, अतः उसका कम करना आवश्यक हो जाता है। इसके लिए जल-चिकित्सक जल का प्रयोग करते हैं। ज्वर को कम करने वाले अनेक प्रकार के नहानों एव गीली पट्टी आदि के वारे मे सभी जानते है और यह भी सवने देखा होगा कि ज्वर जल के प्रयोग से उतर-उतरकर फिर-फिर आता रहता है। डिप्थीरिया रोग मे तो यह

भय होने लगता है कि रोगी का दम न घुट जाय।

रोगी की यह हालत देखकर जल-चिकित्सक भी चिंतित होने लगता और कभी-कभी घबरा जाता है। उस समय भी कमरे के बाहर बहती हुई वायु कहती रहती है कि 'मुझे भी समझो, रोग-मुक्ति मे प्रकृति की मै भी सहायिका हो सकती हू', पर वायु के बोल जल-चिकित्सक की समझ मे नही आते। वह कमरे की गरमी से घबडाकर खिडकी के पास जाता है। वायु अपने शीतल करो से उसका जलता मस्तक पोछ देती है। वायु के हाथो का यह स्पर्श उसे सुखद मालूम होता है, पर रोगी की कष्टकर दशा देखकर वायु के हृदय से उठते उच्छ्वासो का अर्थ उसकी समझ मे नही आता।

तेज बुखार से पीडित रोगी अपने पर लादे गये वस्त्रो की अवहेलना करता है और सदा सही मार्ग पर ही ले जाने वाली नैसर्गिक प्रवृत्ति का अनुसरण करता है। डिप्थीरिया से पीडित बच्चा अपने बिछावन पर लेटा-लेटा हाथ-पैर फेकता है, यदि उसका वश चले तो वह अपने ओढने को जरूर फेक दे।

मीयादी बुखार से पीडित विभ्रांतचित्त रोगी अपनी संपूर्ण शक्ति से, और यह शक्ति तीव्र ज्वर मे स्वभावत. बढ जाती है, बाहर निकल भागने की कोशिश करता है। वह कमरे की खिड़की के रास्ते बाहर बहती ठडी-ठडी हवा मे उड़कर पहुच जाना चाहता है। घर-वाले रोगी की यह दशा देखकर भयभीत हो उठते है। प्रकृति पूरे जोर के साथ अपनी इच्छा जाहिर करती है, तब भी डाक्टर मानो दोनो हाथो से कान मूदे रहता है। हा, जब वह विद्यार्थी था तब उसने अपने उस प्रोफेसर का फेफडे की बीमारियो और उनकी चिकित्सा पर, उसकी बेसुरी आवाज मे, वैज्ञानिक भाषण अवश्य सुना था, जो उस भाषण के कुछ वर्षो बाद ही यक्ष्मा से मर गया था।

पर वह प्रकृति की आवाज पर ध्यान नही देता, जैसे यह आवाज उसकी समझ मे ही न आती हो।

हृदय मे प्यार का भार लिये आशा और नैराश्य के बीच झूलती हुई माता डिप्थीरिया से पीड़ित अपने बच्चे की खाट के निकट बैठी रहती है। देखती है कि बच्चा अपने बदन पर की चादर फेंक-फेक देता है। वह बलपूर्वक अपने लाल को ढंकती रहती है। यह भोली माता नही समझती कि प्रकृति माता उसे चादर फेंक देने को प्रेरित कर रही है।

रात को मीयादी बुखार से पीड़ित रोगी की तीन-तीन चार-चार मजबूत आदमी चौकसी करते है कि कहीं वह प्रकृति की आवाज पर चल न पड़े।

प्रकृति की सहायता को मनुष्य जानबूझकर ठुकराता रहता है, पर दयालु प्रकृति उस पर अपने आशीर्वाद की वर्षा, चाहे जैसे, हर तरह से करने को उत्सुक रहती है।

इधर एक कहानी प्रचलित है कि किसी रोगी के दुर्बुद्धि के चाकर चौकीदारों को प्रकृति ने एक बार सुला दिया था कि रोगी नंग-धड़ंग खिड़की के रास्ते बाहर बहती जाडे की बर्फ-सी ठडी हवा में जा सके।

पड़ोस के घर मे ज्वर के कुछ रोगियो की रक्षा करने के लिए प्रकृति को अधिक कठोरता से काम लेना पडा था। जाडे की स्वच्छ रात्रि एकाएक बादलों की गड़गडाहट से कांप उठी। बिजली चमकने लगी। प्रकृति ने रौद्र रूप धारण कर लिया। कुछ ही क्षणों बाद कड़कड़ाती बिजली जिस घर मे रोगी रहते थे उसी पर गिरी और घर एक किनारे से धू-धूकर जलने लगा। लोग जाग पडे और बेखबरी में घर से भागे। रोगी भी अपने बिछावन से निकलकर जैसे

नंगे वे सोये थे वैसे ही भागे। लोग बदहवास आग बुझाने और घर की चीजे बचाने मे लगे थे। थोडी देर बाद होश-हवास कुछ दुरुस्त होने पर उन्हे रोगियो की याद आई तो वे उन्हे, अथवा अपनी समझ के अनुसार उनकी लाशे, खोजने निकले।

रोगी उन्हे मिले। उनकी हालत बहुत ठीक थी। ज्वर बिल्कुल चला गया था। तब से उनकी हालत सुधरती ही गई। यह देखकर सबको आश्चर्य होता था।[1]

प्राकृतिक बिजली गदगी और सडन पर ही गिरती है, केवल रोग

---

[1]जस्ट की दी हुई यह घटना हमारे अनेक पाठको को कपोल-कल्पित जान पड सकती है। पर हम अपने पाठको को इसी से मिलती-जुलती राजपूताने की एक घटना सुनाना चाहते है, जिससे पाठको को जस्ट की उक्त बात पर विश्वास जमाने मे मदद मिलेगी।

झूझनू मे एक देवडा-परिवार का पोकरमल नाम का एक व्यक्ति था। वह पागल हो गया। उसका अनेक प्रकार का इलाज हुआ, पर लाभ कुछ न हुआ। घर के लोगो को वह बहुत परेशान करता था। अन्त मे विवश होकर और देवी की कृपा पाने के खयाल से लोगो ने उसे झूझनू मे राणी सती के स्थान पर रखा। पर उसकी हालत ऐसी नही थी कि खुला रखा जा सके, इसलिए एक नीम के पेड के नीचे जजीर से बाधकर रखा गया। एक दिन रात को बहुत जोरो का, जैसा कि राजपूताने मे प्राय नही होता, पानी बरसा। उस नीम के पेड के नीचे पानी भर गया। रोगी रात भर उस पानी मे पडा रहा और ऊपर से बौछारो से भीगता रहा। वहा कोई उसकी रखवाली के लिए न था। अपने पागलपन के कारण उपेक्षित था वह। सवेरे लोग क्या देखते है कि रात की जोरदार ठडी हवा के झोको और पानी की बौछार ने रोगी का दिमाग ठडा कर दिया। उसका पागलपन जाता रहा। शायद लोगो ने समझा होगा कि राणी सती की कृपा से ऐसा हुआ, पर वास्तव मे तो 'विश्व की रानी प्रकृति' ने जो सदा सत पर स्थिर रहती है, कभी व्यभिचारिणी नहीं होती,

पर ही गिरती है। प्रकृति अपने विधान के खिलाफ चलनेवालों को सजा देती है। जंगल मे रहनेवाले स्वस्थ पशु उस विजली के कहां शिकार होते है, उसके गिरने से तो घर मे रहनेवाले अस्वस्थ पशु और उनसे वढ़कर रोग की खान मनुष्य ही मरते है।

कटि-स्नान से भी सभी तीव्र रोगों मे बहुत लाभ होता है। इसके प्रयोग से भयंकर ज्वर भी शीघ्र कम हो जाता है, पर यह स्नान न उतनी देर तक लिया ही जा सकता है न उतनी वार ही, जितनी वार कि प्रकाश और वायु-स्नान, जिसके लेने के लिए केवल नंगे होकर थोड़ा टहलना काफी होता है।

पालतू पशुओं को मनुष्य प्रायः विल्कुल अप्राकृतिक दशा मे रखता है। वह अक्सर उनको तंग, घिरी, अंधेरी जगहो मे वंद रखता है जहां स्वयं उनके मल-मूत्र की दुर्गंध उड़ती रहती है। उन्हें सड़ी-गली घास, भूसा इत्यादि खाने को दिया जाता है। फल यह होता है कि उनको भयंकर वीमारियां हो जाती हैं। तथापि उन्हें न कभी तेज खतरनाक ज्वर का ही सामना करना पड़ता है और न वे मीयादी बुखार के रोगी की तरह विक्षिप्त ही होते हैं। ऐसे पशुओं को, चाहे कैसा ही मौसम क्यों न हो, अगर बीमार पड़ते ही वायु और प्रकाशविहीन तंग गंदी कोठरी मे वंद करने के बजाय खुले मैदान मे छोड़ दिया जाय तो वे शीघ्र स्वस्थ हो जाएंगे।

आदमी को ज्वर हो जाने पर वह इसलिए तेजी से बढ़ता एवं खतरनाक हो जाता है कि भीतर की गरमी को न तो निकलने दिया

पोकरमल के मल को उस रात अपने हाथो मल-मलकर धोया होगा। हा, यह माना जा सकता है कि झूझनू की राणी सती ने प्रकृति से ऐसा करने की प्रार्थना की होगी।

—अनुवादक

जाता है और न पशु के नगे शरीर की तरह वायु कपड़ो से ढके मनुष्य-शरीर को शीतल ही कर पाती है।

गरम तरल पदार्थ से भरे वर्तन को ठडे पानी मे रख देने से जिस प्रकार वह ठंडा हो जाता है उसी प्रकार ठडी वायु के सपर्क मे आने पर शरीर की गरमी कम हो जाती है।

अत. प्राकृतिक चिकित्सक जव किसी रोगी को देखने जाय तो उसे पहला काम यह करना चाहिए कि यदि वह रोगी के कपडे न उतरवा सके तो ओढना जरूर हटवा दे, और यदि उसकी हिम्मत रोगी को बाहर खुले मे ले जाने की न पडती हो तो, जाडे की ऋतु होने पर भी कमरे की अधिक-से-अधिक खिडकिया खुलवाकर ठडे-गरम मौसम के अनुसार पद्रह से वीस मिनट तक रोगी को नगा टहलने या लेटने दे। गरमी के दिनो मे वायु और प्रकाश-स्नान एक से तीन घटे तक दिया जा सकता है।

गरमी के दिनो मे सवेरे की ठडी-ठडी हवा का प्रयोग किया जा सकता है। हवा जितनी ठडी होगी, लाभ उतना ही निश्चित होगा।

ठडक, सर्दी और जुकाम से सभी पुराने खयाल के वडे-वूढे डरते रहते है और प्राकृतिक चिकित्सक भी इस डर से अपने को मुक्त नही कर पाता, यद्यपि वह जानता है कि अन्य तीव्र रोगो की भाति जुकाम भी शरीर की शुद्धि का प्रकृति की ओर से एक प्रयत्न है और हर दशा मे शुभ लक्षण के समान है। जुकाम का उचित उपचार होने पर वह कभी अनिष्टकर नही सिद्ध होगा, वल्कि हर हालत मे स्वास्थ्य के लिए लाभकर ही होगा।

डाक्टरों के दिमाग मे तो जो घास यूनिवर्सिटी मे लगाई जाती है वह शीघ्र इतनी अधिक गहरी जड जमा लेती है और घनी हो

जाती है कि उसका बिल्कुल साफ हो सकना सर्वथा असंभव हो जाता है।

कहिये कितना अच्छा होता, यदि ईश्वर किसी महापुरुष को इस ससार मे भेजता जो बुद्धि का भंडार होता और जिसकी वाणी मे देवों का-सा वल होता; जो मनुष्य-जाति के वड़े-से-वड़े सहायक प्रकाश, वायु और ठडक का भय लोगो के हृदयो से निकाल देता, जिससे स्वास्थ्य और प्रसन्नता मिलती तथा कितने ही मनुष्यों के अमूल्य प्राण असमय प्रयाण करने से वच जाते।

मनुष्य प्रकाश और वायु का सवसे वड़ा पुत्र है। वायु और प्रकाश उसके जीवन के विशेष अग है और जैसी कि प्रकृति की इच्छा है; उसे प्रकाश और वायु मे रात हो या दिन, गरमी हो या जाडा, निर्वस्त्र ही रहना चाहिए।

मनुष्य अपने को प्रकाश और वायु से दूर रखने का पाप वहुत अधिक दिनों से करता आ रहा है, अतः उसके प्रकृति की ओर लौटने की, शीघ्र-से-शीघ्र लौटने की विशेष आवश्यकता है। वड़े दुःख की वात है कि प्रकाश और वायु से पूर्ण लाभ उठाने के लिए मनुष्य अपने को काफी देर तक निर्वस्त्र नही रख पाता। इस वारे में ज्यादती तो कभी हो ही नही सकती। क्या वह रात-दिन, सरदी-गरमी और वरसात के दिनो से अधिक समय तक नगा रह सकता है?

यह सोचना गलत होगा कि मनुष्य आदि मे वालों से ढका हुआ था और अव जव कि उसका यह चोगा उतर गया है, उसके लिए विना कपड़ो के रहना कठिन है। कुछ थोडे-से लोगों के शरीर पर वाल अवश्य होते है, पर उन्हे अपवाद ही मानना चाहिए। शेष लोगों के शरीर पर तो, जिनमे ऐसे लोग भी शामिल है जो सृष्टि के आदि से ही नंगे रहते है या अपने वदन को कम-से-कम ढकते है, वाल

कतई नही होते। हाथ, मुह और गर्दन पर भी, जो आज तक कपडो से वचे रहे है, वाल नही है। प्रकृति ने अपनी सर्वश्रेष्ठ कृति मनुष्य को यह समझकर ही वाल नही दिये है कि वह स्वास्थ्य के सहायक प्रकाश और वायु के सीधे सपर्क मे आ सके। कपडे पहनने से इसीलिए उसे रोग भी अधिक होते है और यदि वह नगा रहने लगे तो लाभ भी अधिक होगा।

वायु और प्रकाश से सरदी-जुकाम होता है, यह वात ही सावित करती है कि जीवनी-शक्ति को जगाने की उनमे वहुत अधिक शक्ति है, और जहा ठडी हवा और हवा के झोके लगने से वहुत जल्द जुकाम होता है वहा उनका उपयोग रोगनाश का प्रभावकारक और उत्तम साधन है।

प्रकृति ने जाडे और ठडक की इसीलिए व्यवस्था की है कि पशु-पौधे की और पृथ्वी पर होनेवाली सडन रुक जाय; सक्रामक कृमि, सडने से पैदा हुए कीडे-मकोडे और गदगी फैलानेवाले छोटे जीव मर जाय। रोगी शरीर के लिए तो इस प्रकार की सफाई की आवश्यकता वहुत ही अधिक रहती है।

जिसे खुजली हुई हो वह यदि जाडे के दिनो मे नगा हो, खुले वदन निकले तो उसके खुजली पैदा करने वाले कृमि जरूर मर जायगे। वायु और प्रकाश की शरण जाने पर इसी प्रकार यक्ष्मा से पीडित अनेक रोगियो के फेफडो मे पैदा हुए कृमि भी मर जायगे जो वहां पडे विजातीय द्रव्य की सड़न के कारण पैदा हो जाते है।

जो स्वस्थ है और जिनका शरीर सुदृढ है उनको तो कम, पर रोगी और कमजोर व्यक्तियो को अपने अदर की गरमी कम करने एव जीवनी-शक्ति वढाने की वडी आवश्यकता होती है।

एक वार मैने एक डाक्टर से पूछा कि प्रकाश और वायु-स्नान

का उपयोग हर रोग मे और खासकर ज्वर मे क्यों इतना कम किया जाता है ? उन्होंने जवाव दिया कि "अभी तक इस स्नान पर वहुत कम प्रयोग किये गए है।"

लड़कों को कई वर्ष तक स्कूल मे पढना पड़ता है, फिर कालेज मे, और इसके वाद पाच वर्षो तक डाक्टरी सिखाई जाती है। कई लड़के तो परीक्षा पास करने के वाद भी अधिक जानकारी के लिए कई वर्षो तक और पढ़ते रहते है, पर इतने पर भी उनमें प्रकाश और वायु, सरदी और गरमी के प्राकृतिक प्रभाव का अनुभव करने की शक्ति पैदा नही होती, और न वे विना प्रयोग किये यही समझ पाते है कि वायु और प्रकाश-स्नान नितात निर्दोष, प्रभावकर, स्वास्थ्य-रक्षक, जीर्ण एवं तीव्र रोग का निवारक है।

मै ऐसे भीरु प्राणियो को वता देना चाहता हू कि मैने इस स्नान का प्रयोग अनेक प्रकार के रोगो एवं उनकी दशाओं मे किया है और मेरी आशा के अनुसार ही वड़े सन्तोपजनक परिणाम प्राप्त हुए है।

वहुधा ऐसा हुआ है कि मेरे समझा देने पर रोगी आरभ से ही खुशी-खुशी यह नहान लेने को राजी हो गये।

जवान और वूढे दोनों ही प्रकार के ऐसे रोगी, जिन्होने मोटे-मोटे ऊनी कपड़े पहनकर तथा और भी अनेक प्रकार से अपने को वायु और प्रकाश से दूर रखकर अपने शरीर को अत्यंत सुकुमार वना लिया था, धीरे-धीरे आदत डाले विना ही एकाएक नगे होकर, वहती हवा में, वरसते पानी और वरफ मे, कड़कडाते जाडे मे, खुली जगह मे वायु और प्रकाश-स्नान लेने को तैयार हो गये।

कुछ तो ऐसे भी आये जो वायु और प्रकाश-स्नान लेने के स्थान तक चलकर जाने मे अशक्त थे। ज्यों ही उन्होंने अपने कपड़े उतारे,

वे अपने मे शक्ति का अनुभव करने लगे और जिस प्रकार वे घर से आये थे उससे बहुत कम कठिनाई से और अधिक तेजी से घर गये। वायु और प्रकाश के स्नानार्थियों मे बहुत कमजोर और रोगी, जवान ही नही, सत्तर-सत्तर, अस्सी-अस्सी वर्ष के बूढे-बूढी और नामी-नामी व्यक्ति थे।

तीव्र रोगो मे, खास तौर पर तेज बुखार मे, रोगियो को इस स्नान से ऐसी ताजगी और ताकत मालूम होती है कि अपने भयभीत घरवालो के बार-बार कहने पर भी वे कमरे की खिडकी के निकट से टलते नही।

नये रोग मे तो अनेक बार लाभ इतना आनन-फानन हुआ कि रोगी के आस-पास के लोग आश्चर्य मे डूब गये।

न्यूयार्क के निकट स्थित मेरे जघवार्न नामक प्राकृतिक चिकित्सालय मे हर मौसम मे और खासकर जाडे के दिनों मे वायु और प्रकाश-स्नान लोग बडी मौज से लेते है।

जिस प्रकार गरम कमरे मे बैठकर आंधी की बात करने पर वह बडी रहस्यमयी प्रतीत होती है, पर खुले मे जब उसका अनुभव कर लिया जाता है तो उसकी सारी भयकरता दिमाग से निकल जाती है, उसी प्रकार ठंड के दिनो मे वायु एव प्रकाश-स्नान लेने की बात जितनी विचित्र मालूम होती है उतना स्वयं स्नान नही।

वायु और प्रकाश-स्नान से शरीर गरम रहता है, ठडक नही मालूम होती और ताकत बढती है। इसे जारी रखने पर इसका लेना आसान हो जाता है और इसके साथ जो रहस्य-सा जुडा प्रतीत होता है वह चला जाता है।

गरमी के दिनो मे सवेरे ही वायु और प्रकाश-स्नान लेना बडा आनन्द देता है। सवेरे की ठडी-ठडी मजेदार हवा के सुखद स्पर्श से

चित्त प्रसन्न हो जाता है, फिर सूर्य की कोमल रश्मिया शरीर पर लगती है। उनकी गरमी अधिक होने पर किसी ठडी छांहदार जगह मे जा सकते है। यह स्नान, जाड़ा हो या गरमी, वरावर लेते रहना चाहिए। जाड़े का-एक अपना लाभ यह है कि त्वचा शीघ्र शीतल हो जाती है। अत. यह स्नान गरमी के दिनो की तरह जाड़े मे अधिक देर तक लेने की जरूरत नही पड़ती।

इतना कह लेने के वाद मेरी समझ मे अव किसी भी समझदार को विश्वास दिलाने की जरूरत नही रह जाती कि वायु और प्रकाश-स्नान से किसी भी हालत मे कोई नुक़सान होने की संभावना नहीं है। कितने ही जीर्ण रोगियो के लिए तो मैने कई वार चाहा है कि उन्हें तेज जुकाम या कोई तीव्र रोग हो जाय। यदि ऐसा हो जाता तो मै अवश्य ही रोगी के लाभ के लिए उसका उपयोग करता, पर मेरी यह चाह पूरी होने का सौभाग्य मुझे कभी प्राप्त नही हुआ। यदि जुकाम हो जाय तो भी वायु और प्रकाश-स्नान छोड़ने की जरूरत नही, बुद्धिमत्तापूर्वक उसे लेते रहना चाहिए। उसे लेते रहने पर जीवनी-शक्ति अधिकाधिक वढ़ती है, शरीर गंदगी निकाल फेंकने मे अधिक सफल होता है। जुकाम से जो अंदरूनी गरमी पैदा हो जाती है वह इस स्नान से शात हो जाती है जिससे रोगी का कष्ट कम हो जाता है और वह आराम अनुभव करता है।

प्राकृतिक चिकित्सक के लिए यह आवश्यक है कि वह वायु और प्रकाश-स्नान के सवध मे अपने विचार स्पष्ट कर ले और जव उसका प्रयोग करे तो उसके लाभ के संवंध मे किसी प्रकार की शंका न करे। यदि इस स्नान के प्रयोग से रोगी को जुकाम होने पर प्राकृतिक चिकित्सक घवराकर उसे वायु और प्रकाश से दूर गरम कमरे मे वंद कर दे और कही किसी दवा का प्रयोग करा वैठे तो रोगी

कमजोर हो जायगा। निकलता हुआ विजातीय द्रव्य शरीर के अदर ही रुक जायगा और परिणाम बुरा तो होगा ही, कभी-कभी खतरनाक भी हो सकता है।

पर सुस्थिरता और दृढता की हमेशा विजय होती हैं। इस चीज का विश्वास मै हर नये आदमी को आरभ मे ही करा दिया करता हू, अत पैसा लेकर स्वास्थ्य ठीक रखने की राय देने वाले डाक्टर से अधिक बुद्धिमती प्रकृति और उसके स्वास्थ्यप्रद साधनो मे विश्वास रखकर पहले हर एक को स्वय वायु और प्रकाश-स्नान करना चाहिए, और फिर अपने कुटुबियो को कराना चाहिए।

वायु और प्रकाश-स्नान से मिले लाभ के अनुभव से प्रभावित हुए कितने ही पुरुषो और स्त्रियो को भी गरमी मे ही नही, जाडे मे भी अपने कमरे की खिडकियो के सामने खडे होकर यह स्नान उत्साह-पूर्वक लेते देखकर मेरी तबीयत खुश हो जाती है।

यदि वायु और प्रकाश-स्नान का लोग आम तौर से उपयोग नहीं करते तो मै यह उनकी नही, प्राकृतिक चिकित्सको की ही गलती कहूगा, क्योकि सर्वसाधारण को तो अपने स्वास्थ्य के बारे मे सोचने की शिक्षा ही नही मिलती। उनमे तो बिना समझे-बूझे, बिना तर्क किये जो कहा जाय, उसे करने की आदत डाली जाती है।

रात और दिन को, जाडे मे और गरमी मे, नगे रहकर अबाध रूप से वायु और प्रकाश-स्नान करते रहना सर्वथा प्राकृतिक एव एक श्रेष्ठ स्वास्थ्यकर स्वभाव है, पर और किसी तरह की रुकावट न भी हो तो आज की कापुरुप और निर्बल पीढी के लोगो मे से कौन हमेशा नगा रहेगा! अत इस विषय मे प्रत्येक को अपनी सुविधा और समय के अनुसार यह स्वय निश्चित करना चाहिए कि सरदी-गरमी को देखते हुए कितनी देर तक और कितने समय बाद वह प्रकाश-

स्नान करे। सिद्धांत यह है कि जितनी देर तक और जितनी जल्दी-
जल्दी यह स्नान किया जाय, अच्छा है।

यदि वायु और प्रकाश-स्नान खुले मे तथा वन मे जाकर लिया
जा सके तो वह कमरे मे लेने की अपेक्षा अधिक लाभकर होगा।
प्रत्येक जंगल मे ऐसी खुली जगहे होती है जहां यह स्नान मजे मे
सवेरे ही लिया जा सकता है। गरमी के दिनों मे प्रातःकाल का समय
यह स्नान करने के लिए वहुत उपयोगी है। यदि इच्छा हो तो यह
स्नान करने का मौका भी मिल जायगा और समय भी निकल आयगा।

नदी, समुद्र, तालाव और झील के किनारे, जहा लोगो के स्नान
के लिए घाट वने होते है, वायु और प्रकाश-स्नान के लिए भी वहुत
उपयोगी हो सकते है। वहा जव कोई चाहे, जितनी देर तक चाहे,
वहुत हल्के कपडे पहनकर वायु और प्रकाश-स्नान वड़े मजे मे ले
सकता है। धीरे-धीरे वहा विल्कुल नगे रहकर यह स्नान करने के
स्थान वनवाये जा सकते है।

लेकिन ऐसे लोग खासकर औरते, जिन्हे खुले मे वायु और
प्रकाश-स्नान लेने की सुविधा प्राप्त नही है, जाड़ा, गरमी, वरसात
सभी ऋतुओं में अपने कमरे की खिड़की के निकट रहकर नित्य यह
स्नान कर सकती हैं। जो लोग यह स्नान आरंभ कर रहे हो, वे इस
रीति से यह स्नान जाडे मे भी शुरू कर सकते हैं। वच्चों को यह
स्नान खास तौर से और जन्म के दिन से ही कराना चाहिए। कमरे
मे कराना हो तो सवेरे सोकर उठते ही प्रात.काल का समय ठीक
रहेगा। उन्हे इसमे शीघ्र ही आनद मिलने लगेगा। जव उन्हे वह
दिया जायगा तो वे आनंद से कूदने-फादने लगेगे। यदि इस रीति का
अनुसरण सर्वसाधारण करने लगे तो आगे की पीढी के खूव स्वस्थ
और सुदृढ़ होने की आशा की जा सकती है। वायु और प्रकाश-स्नान

लेते समय बदन पर कोई कपड़ा न रहे, न जूते हों न मोजे।

वायु और प्रकाश-स्नान करते समय, खास तौर से जाडे के दिनों मे, खूब कसरत करनी चाहिए। यह कसरत टहलने और दौडने के रूप मे हो सकती है।

वायु और प्रकाश-स्नान के बाद शरीर मे गरमी लाना अत्यत आवश्यक है। तेजी से टहलने से, कोई श्रम-साध्य काम करने से एवं घर-गृहस्थी का काम करने से या कबल ओढकर लेटने से यह काम बहुत अच्छी तरह पूरा होता है।

यह समझना भूल है कि वायु और प्रकाश-स्नान बदन की गरमी को कम करने के लिए किया जाता है। जिस प्रकार हर समय अगीठी के पास बैठे रहने वाले को जाडा कभी नही छोड़ता, उसी प्रकार ठड मे वायु और प्रकाश-स्नान लेने वाले का शरीर, यह स्नान लेने के समय के सिवा, हर समय अधिक गरम रहता है।

कमरे मे नगे रहने का लाभ भी कम नही है।

यदि प्राकृतिक स्नान के बाद नहाकर और सारे शरीर को रगड़-कर गरम कर लेने के बाद वायु और प्रकाश-स्नान किया जाय तो रक्त हाथ-पैरो की अगुलियो तक मे तथा त्वचा की ऊपरी सतह तक तेजी से दौडने लगता है। उस समय यह स्नान करने मे आसानी होती है और मामूली से अधिक देर तक किया जा सकता है। एक बार परीक्षा कर देखिये तो आपको मेरे कथन की सचाई मे विश्वास हो जायगा।

वायु और प्रकाश-स्नान करने के अलावा बरसते पानी मे नंगे सिर चलना भी बहुत लाभदायक है।

जब कभी समय और मौका मिले, वायु और प्रकाश-स्नान करने वाले भी नंगे पैर जरूर चलें।

विशेष स्नान, साधारण स्नान अथवा सिर धोने के वाद या नंगे पैर टहलने के वाद भी शरीर को तौलिये से सुखाना अप्राकृतिक है। यह आदत ठीक नही है। खुले मे खूव कसरत कीजिये, वदन अपने आप सूख जायेगा।

जाड़ा, गरमी, वरसात—सभी दिनों मे सोने के कमरे की खिड़किया रात मे भी खुली रखनी चाहिए।

धूप-नहान भी एक प्रकार का वायु और प्रकाश-स्नान है। इसके लिए किसी वन मे जाकर निर्वस्त्र होकर जमीन पर लेटना चाहिए। यदि धूप वहुत तेज हो और आपने कभी पहले धूप-नहान न लिया हो तो वदन को जलने से वचाने के लिए वदन पर कोई पतला-सा कपड़ा या वड़ा अच्छा हो कि ताजी हरी पत्तियां डाल ली जायं।

ठडी गीली मिट्टी भी सारे वदन पर लगाकर उसे जलने से वचाया जा सकता है।

धूप से जलना न हानिकारक है न खतरनाक, पर जले हुए स्थानो मे अक्सर वहुत पीड़ा होती है; अत. जहां तक वन सके इस प्रकार जलने से अपने को वचाना चाहिए। यदि कही जल ही जाय तो उसकी दवा है ठडे पानी एवं ठडे पानी से भीगी पट्टियों का प्रयोग। (गीली मिट्टी लगाना भी उतना ही लाभकर होगा)। आम तौर से काम मे लाये जाने वाले मरहम और तेलों का प्रयोग कभी न करना चाहिए।

धूप वहुत तेज हो तो धूप-नहान वहुत अधिक देर तक कभी नही लेना चाहिए। वायु और प्रकाश-स्नान लेते समय कभी धूप मे और कभी साये मे रहा जा सकता है।

यह आवश्यक है कि धूप-नहान जमीन पर लेटकर ही लिया जाय। घर की छत पर या विछौने पर लेटकर लेना, जैसा कि लोग

अक्सर किया करते हैं, ठीक नही है। मनुष्य धरती का है।

पृथ्वी के सीधे सपर्क मे आने पर मनुष्य पर जो जीवनदायक प्रभाव पडता है उस पर मै सुविस्तृत प्रकाश फिर डालूगा।

यदि नगे होकर वायु और प्रकाश-स्नान लेने का मौका न मिले तो हलके कपडे पहनकर खुली जगह मे, और उसका भी मौका न मिले तो अपने कमरे मे ही लेना ठीक होगा। जब धूप मे लिया जाय तो मुंह को धूप से बचाना चाहिए।

धूप-नहान के बाद कटि-स्नान लेकर शरीर की गरमी शात करनी चाहिए।

५

झंझरीदार झोंपड़ी

मैदान मे बनी झोपडी मे, जिसमे वायु और प्रकाश निर्बाध रूप से आते हो, सोने से बडा लाभ होता है।

यह बिल्कुल मामूली झोपडी होती है। वर्षा के पानी से बचाव के लिए ऊपर छाजन डाल देते है। इसमे दीवारें नही होती, बिल्कुल खुली या झझरीदार होती है। आधी और तेज हवा से बचने के लिए परदे होते है और जाडे के दिनो मे घोर ठड से बचने के लिए सरकडे आदि की टट्टी या कम ऊंचाई का काठ का परदा लगा दिया जाता है जिसमे वायु का प्रवेश अच्छी तरह होता रहे। अगर खिड़कियां और रोशनदान काफी हो तो दीवारें भी रखी जा सकती हैं और तब यह रहने के काम मे भी लाई जा सकती है। छत मे भी रोशनदान रखना अच्छा होता है जिसमे खिडकिया बद होने पर वे

खुले रखे जा सकें।

शरीर के लिए, विशेषकर रात्रिकाल मे जब वह पाचन-कार्य मे सलग्न रहता है, शुद्ध ताजी हवा परमावश्यक है। इस दृष्टि से इस तरह की झोपड़ी मे सोना स्वास्थ्य के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। जिनके बाग-बगीचे आदि है वे रहने के लिए ऐसी झोंपड़िया मजे मे बनवा ले सकते है।

जगल मे बने हुए मकानो मे भी रसोईघर, रद्दी चीजों आदि की गध रहने के कमरों मे पहुंच सकती है। वायु के दूपित होने का एक कारण यह भी होता है कि एक ही मकान मे नीचे-ऊपर बहुत से मनुष्य रहा करते है और पत्थर की दीवारों मे घुसी हुई दुर्गंध बहुत दिनों तक रुकी रहती है; इसलिए ऐसे मकानों की हवा बिलकुल शुद्ध कभी नही रहती। झझरीदार झोपड़ी मे यह खराबी नही पायी जा सकती। सर्दी, आंत्रिक ज्वर, विसूचिका, गठिया, घातक अर्वुद, चर्म-रोग, फोड़ा या और कोई भी रोग हो, शुद्ध हवा उसे दूर करने मे सबसे अधिक सहायता होती है।

सारे सुखों का मूल आधार स्वास्थ्य ही है। मनुष्य भौतिक सुखों का उपभोग अपने स्वास्थ्य के अनुरूप ही कर सकता है। इस तथ्य का ज्ञान हो जाने पर लोग झंझरीदार झोंपड़ी मे रहने का लाभ समझने और उसका निर्माण करने लगेगे और तब प्रकृति की गोद मे बनी हुई इन सुन्दर झोंपड़ियो मे सोना या रहना लोगों के लिए आश्चर्य का विषय नहीं रह जायगा और इन्हे नगर के कमरों पर बहुत तरजीह दी जाने लगेगी जो गंदे, दुर्गंध से विपाक्त और ऐसे रोगो के उत्पत्ति-स्थान होते हैं जो शरीर को ही विकृत और विषाक्त नही करते, बल्कि सभी प्रकार के मानसिक और आध्यात्मिक विकारो—जड़ता और उन्माद, तृष्णा

और विनाश, पाप और अपराध, घृणा और द्वेष, कलह और सघर्ष, सक्षेप मे ससार की सभी बुराइयो के कारण होते है।

यह भय नही करना चाहिए कि इस तरह की झोपड़ी मे रहने पर जाडे के दिनो मे ठिठुरकर मर जायगे। अगर साधारण तोशक और रजाई या कवल हो तो मैदान या जगल मे वनी ऐसी झोपडी मे आराम से रहा जा सकता है, क्योकि शुद्ध और ताजी हवा मे सास लेने पर, भरे और गदे कमरे मे सास लेने की अपेक्षा शरीर मे अधिक गरमी पैदा होती है।

इन झोपड़ियो मे सोनेवालो और उनके कपडो का वर्षा से मजे मे बचाव हो जाता है। मौसम अच्छा होने पर खुले मैदान मे सोना झझरीदार झोपडी मे सोने की अपेक्षा अधिक लाभदायक होता है, क्योकि हम प्रकृति की ओर जितना ही वढते जाएगे वह हमे उसका उचित पुरस्कार देती जायगी। मैदान मे सोने पर हम अविराम गति से विचरण करनेवाले तारो तक पहुचते है और मद समीरण हमारा आलिगन करता रहता है। सुदर रात्रि मन को तो मुग्ध करती ही है, शरीर तथा आत्मा की सारी कमजोरियो को भी दूर कर देती है।

अगर कोई मनुष्य मकान से वाहर खुले मैदान मे सोता है तो इसमे दिखावे या उपहास की कोई वात नही है जव कि खरहे, हिरन, वारहसिंगे, सूअर तथा अन्य बहुत से जीव मैदान मे ही रहते हुए अपनी साफ चमकीली आखो, शरीर की स्फूर्ति और शक्ति, स्वास्थ्य तथा प्रकृति से प्राप्त अन्य अच्छे गुणो को उत्तम ढग से वनाये रख सकते हैं। ये पशु मनुष्य की तरह आचरण नही करते जो अपने स्वास्थ्य की उपेक्षा ही नही करते, उसे अपने ही पैरो से रौंदा करते हैं जिससे उनका जीवन कटु और दु:खमय हो जाता है।

स्वास्थ्य की दृष्टि से भारी-भरकम मकानों से छोटे हलके मकान अच्छे होते है। बागों मे या वृक्षों से परिवेष्टित छोटे-छोटे मकान अधिक बनने चाहिए। गलियों मे कतार मे बने हुए मोटी दीवारोंवाले मकान स्वास्थ्य की दृष्टि से अच्छे नही होते। नगर की सीमा पर बने हुए मकान भीतर के मकानो से कुछ अच्छे होते है। मकानो की बनावट ऐसी होनी चाहिए जिसमे हवा और रोशनी बिना किसी रुकावट के हमेशा आती रहे।

: ६ :

वेश-भूषा

प्रकृति की इच्छा है कि मनुष्य नंगा रहे, और इसी तरह के जीवन के उपयुक्त उसने मनुष्य के शरीर को बनाया है। यदि ऐसी बात न होती तो मनुष्य चरखे-करघे का आविष्कार करने के बहुत पहले ही मर-खप गया होता। इसलिए यथार्थ बात यही है कि मनुष्य को किसी तरह का भी कपड़ा नही पहनना चाहिए।

हम अपने शरीर को चाहे कुछ क्षणों के लिए ही क्यो न ढकें, किंतु ऐसा करना हमारे स्वास्थ्य के लिए बुरा है। मनुष्य को प्रकृति ने कैसा स्वास्थ्य दिया था, उसकी शारीरिक और मानसिक शक्ति कितनी तीव्र थी, उसे कितनी उम्र मिली थी और वह कितने आनंद और सुख का अधिकारी था—इसका ज्ञान हमे नही है, अतः हम यह नही समझ पाते कि कपड़े पहनकर और फलतः अपने शरीर को प्रकाश और वायु से वंचित रखकर मनुष्य-जाति ने अपने शरीर को कैसी कल्पनातीत हानि पहुंचाई है। शीतोष्ण कटिबंध मे अभी कई

ऐसी जातियां हैं (उदाहरण के लिए फायर आइलैंड के रहनेवाले तथा दूसरे लोग) जो जाड़ा हो अथवा गरमी, कभी कपडे नही पहनती। कुछ ही वर्ष हुए, समाचार-पत्रों ने यूरोपनिवासी किसी कैप्टन स्मिथ की सारे कटिबंधो मे की गई उस यात्रा का वर्णन किया था जो उन्होने विना कपडे, विल्कुल नगे वदन की थी।

आज हम एकाएक फिर से सबके नगा रहना शुरू करने की आशा क्यो नही कर सकते, यहां यह वताने की मुझे आवश्यकता प्रतीत नही होती।

पर इस वात की सख्त जरूरत है कि हम ऐसे ही कपडे पसद करे और वनाएं जो वायु और प्रकाश को शरीर तक आसानी से और भरपूर पहुंचने दे और जिनसे होकर शरीर की दूपित वायु विना किसी कठिनाई के निकलती रह सके।

इधर वहुत दिनों से स्त्री और पुरुप दोनो के लायक अनेक प्रकार के हवादार कपडे वाजार मे विकने लगे हैं, पर जो कपडे सिलवाये जाएं उनका सछिद्र और हवादार होना ही काफी नही है, वल्कि वे चुस्त न होकर खूव ढीले-ढाले भी होने चाहिए।

कपडे अजीव किस्म के और वहुत काट-छाटकर सिले हुए नही होने चाहिए, अन्यथा वे व्यर्थ मे लोगो का ध्यान आकृप्ट करेंगे; पर न तो कुरुचिपूर्ण फैशन का गुलाम होने की जरूरत है और न भड़कीले कपड़ो को मान्यता देने की ही।

इस सवध मे "वढ़िया कपडे पहनकर आदमी वड़ा दिखाई देता है", लोगों की यह आम धारणा वड़ी नैराश्यजनक है, पर हमे यह आशा करनी चाहिए कि ऐसा वक्त शीघ्र आयेगा जव लोग वस्तुतः ऊंची चीजो की सुंदरता को समझने लगेगे।

वाजार मे कई तरह की स्वास्थ्यप्रद कही जानेवाली वनियाइनें

मिलती हैं, किंतु वे तो और भी निकम्मी होती हैं। ऊनी कमीज या बनियाइन तो पहनना ही न चाहिए। ऊन के सीधे संपर्क में आने पर त्वचा सुकुमार हो जाती है। फोड़े-फुसी या घाव पर कोई ऊनी पट्टी नही बांधता, जो चीज चुटीली या घावभरी त्वचा के लिए बुरी है वह स्वस्थ त्वचा के लिए बहुत अच्छी कैसे हो सकती है ?

अनेक सूती बनियाइनें बडी गहरी बुनी होती हैं। धोने पर वे सिकुड़कर नमदे की तरह की हो जाती है। सन के बने कपडे बहुत भारी तो होते ही है, वे अक्सर हवादार भी नही होते। कुछ कपडे बडे महीन और पतले होते है, अतः वे बदन मे बिल्कुल चिपक जाते है। कई कपड़े इतने कमजोर होते है कि बहुत जल्दी फट जाते है। कमीज और बनियाइन के लिए कपड़ा खरीदते वक्त इन बातों का पूरा ध्यान रखना चाहिए, क्योंकि इनका हमारे स्वास्थ्य से विशेष संबध है।

मेरे चिकित्सालय में लोग जो कमीजे पहनते है वे बहुत हवादार होती हैं और इतनी पतली नही होती कि बदन मे चिपक जाए। इनका रंग मलाई का-सा होता है, ये बिल्कुल सफेद कपडे की भी बन सकती है।

सबसे अधिक अत्याचार तो हम अपने पैरों पर करते हैं। शरीर के किसी भी अंग की बनिस्बत पैरों से अधिक गंदगी निकलती है, यह उनसे निकलनेवाले पसीने से स्पष्ट प्रतीत होता है। इसलिए पैरो को समय-समय पर खुला रखना चाहिए, पर दुर्भाग्य से चाल इससे बिल्कुल उल्टी है। लोग अपने पैरों को चमडे के तंग जूतों मे कसे रखते हैं जिससे उन्हे कष्ट होता है और स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचता है।

चमड़े के जो जूते पहने जायं वे कड़े फिट न हों। कपड़े अर्थात

कैनवस के बने जूते चमडे के जूतों से अधिक स्वास्थ्यप्रद होते है। अब कैनवस के जूते हर जगह बिकने लगे है। रबड और चमडा स्वास्थ्य के लिए खास तौर से हानिकारक है। इसलिए चमडे के जूतो, दस्तानों एव जुर्राब के इस्तेमाल से बचना चाहिए। सूत के पतले मोजे ऊनी मोजो से अच्छे है।

दस्तानो का प्रयोग बिलकुल न करना चाहिए। यदि उनका व्यवहार किया ही जाय तो वे सूत या बटे सूत के बने होने चाहिए। जुर्राब भी मजबूत लचीले सूती कपडे के बने होने चाहिए।

सबसे अच्छा तो यही है कि मनुष्य फिर से नगे पाव चलना आरभ करे। नगे पाव चलने को लोग तमाशे की चीज न समझें; इसके लिए इस सबध की अनेक प्रचलित रूढियो को मिटाना होगा, पर ऐसी रूढियों से हमे बहुत डरने की जरूरत नहीं है, हमे हिम्मत करके आगे बढना चाहिए और लोगो के सामने आदर्श उपस्थित करना चाहिए। ऐसा कर हम लोगो को 'प्रकृति की ओर लौटो' के पथ पर लगायेगे। इसके लिए आवश्यकता हो तो हमे कष्ट भी सहना चाहिए। फिर शीघ्र ही हमारे साथ चलनेवाले लोग मिल जायेगे।

यदि शहर की सड़को पर नगे पाव चलने की हमारी हिम्मत न हो तो जब हम गावो मे जाय या यात्रा आदि पर निकले, उस वक्त तो हमे नगे पाव ही चलना चाहिए।

अपने घर मे या अपने कमरे मे हम चप्पल पहनकर मजे मे रह सकते है और अपने पैरो को आराम दे सकते है। मुझे तो चप्पलें बडी सुदर लगती है। प्राचीन यूनान-निवासी और पुराने राजा चित्रों मे चप्पल पहने दिखाये जाते है और वे चप्पल पहने बडे भव्य प्रतीत होते है। आज की चप्पलों और सेडिलो मे कई दुर्गुण होते है। कई

ऐसी होती है जो पैरों को दवाती और काटती है। मेरे चिकित्सालय मे जो सेंडिलें पहनी जाती हैं वे मेरे वताये अनुसार वनी है और इन दुर्गुणों से मुक्त है। उनमे पैर, वहुत अधिक स्वतंत्र रहते है और उन्हें आराम मिलता है।

प्राचीन काल मे पाजामा घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। जो पाजामा पहनता था लोग उसे जगली समझते थे, साधारण लोग ढीला-ढाला मोडदार 'टोंगा' (प्राचीन रोम का चोगा-विशेष) पहनते थे।

आज के लोग पाजामा छोडकर टोगा या चोगा पहनना जल्दी पसद न करेगे। लोगों की इस रुचि के विपरीत कोई दूसरी चीज चलाना कठिन प्रतीत होता है; पर इतना तो हो ही सकता है कि लोग कसे हुए जाघिए वगैरह का उपयोग न करे।

स्त्रिया, लडकियां और छोटी-छोटी वच्चिया तक जाघिया क्यों पहनती है, यह वात विल्कुल समझ मे नही आती। मै यहा इस रिवाज की निदा करने मे समय नही लगाऊंगा, पर मेरा यह दृढ विश्वास है कि यदि स्त्रियां जाघिया पहनना वंद कर दें और उनके पेडू के चारो तरफ हवा आ-जा सके तो वे गर्भाशय के रोग, वच्चे जनने मे पीडा, मूर्च्छा आदि अनेक रोगो से, जिनसे वे प्रायः पीड़ित रहती हैं, वची रहेगी।

कीजिये और देखिये।

हमारी मा-वहनो के वस्त्रो मे एक भयकर राक्षसी घुस आई है—वह राक्षसी है चोली। पुराने जमाने की निशानी के तौर पर रखे गये यंत्रणा देने के अस्त्र, जिनसे मनुष्य के अत्याचार करने की सीमा प्रदर्शित होती है, मुझे इतने भयानक नही प्रतीत होते जितनी आजकी ये चोलियां। अत्याचार के उन साधनों का प्रयोग तो वड़े-वडे अप-

राधियो को सजा देने के लिए किया जाता था और अपराधी इसे जबरन सहता था, पर हमारी मा-बहने तो खुशी-खुशी अपनी इच्छा से अपने ऊपर भयानक अत्याचार कर रही है और इन चोलियो से इस हद तक अपने को कसती है कि उनके लिए सास तक लेना कठिन हो जाता है। यह बडी विचित्र पहेली है।

स्त्रिया अपने इस कष्ट की इतनी आदी हो गई है कि वे इसका अब अनुभव ही नही कर पाती, पर वास्तव मे यत्रणा के उन प्राचीन अस्त्रो से चोली की यत्रणा कम नही होती।

चोली के विरुद्ध अब तक लोगो ने बहुत-कुछ कहा और लिखा है, पर उससे कोई विशेष लाभ नही हुआ। मै इस विषय पर अब व्यर्थ के लिए अधिक लिखना उचित नही समझता। जब तक बेहोशी के दौरो, मूर्च्छा, तरह-तरह की कमजोरियो और पीडाओ को आनद की वस्तु समझा जाता है और पीले करुणोत्पादक चेहरे को सौंदर्य का आदर्श, तब तक चोली का चलन बना रहेगा। इस सबध की अपनी गलती के लिए जब पुरुष सजा पा लेगे तब ईश्वर उन्हे अवश्य अक्ल देगा।

यदि स्त्रिया ढीले कपडे पहनना पसद करे तो वे कई तरह की ऐसी ढीली अगिया भी बना सकती है जिनका शरीर पर दबाव न पडे और रक्त के सचालन मे बाधा न हो।

कितना अच्छा होता, यदि जनमते ही बच्चो को गरमाने के लिए कपडे मे लपेटने की प्रथा का अत हो जाता। इस प्रथा के कारण बच्चो की बाढ शुरू मे ही रुक जाती है। बच्चो मे बडों की अपेक्षा जीवनी शक्ति और उष्णता अधिक होती है। वे नंगे रहना बडो से ज्यादा अच्छी तरह बर्दाश्त कर सकते है। उनकी नैसर्गिक प्रवृत्ति उन्हे अपने कपडे उतार फेंकने के लिए बार-बार प्रेरित करती है।

जब कभी उनके कपडे उतार दिये जाते हैं, वे कितने खुश होते हैं। अतः हमें प्रकृति की आवाज पर ध्यान देना चाहिए और बच्चों को समय-समय पर नगे सुलाने और नंगे रखने का खयाल रखना चाहिए।

प्यारी माताओ, यदि आप अपने बच्चों के कपड़ों की कम चिंता करेंगी तो निश्चय जानिये कि वे एक दिन आपको इसके लिए अवश्य धन्यवाद देंगे। वे आपके इतने अधिक कृतज्ञ होंगे कि जिसकी आप कल्पना भी नही कर सकतीं। नगे पांव रहने मे बच्चों को बडा आनंद मिलता है। हमे उन्हे यह आनंद मनाने देना चाहिए और उन्हे इस आज की सभ्यता के रोग, शोक और अकाल-मृत्यु से बचने के पथ पर चलने से न रोकना चाहिए। यदि हम इस संबंध मे औचित्य से काम लेंगे तो हमे अपने बच्चों के लिए व्यर्थ की किता, दुःख और कष्ट उठाने की आवश्यकता न रहेगी। पर बात क्या है कि माताएं अन-जाने अपने सुकोमल प्यार को कठोर निर्दयता मे बदल देती हैं और बच्चों को उस सच्चे आनंद, खुशी के खजाने का उपभोग नही करने देती जो प्रकृति उनके लिए सहर्ष खुला रखती है और इस प्रकार बच्चों के जीवन भर के रोग-शोक का कारण होती हैं! इस गुत्थी को कौन सुलझा सकता है?

फटे हवादार कपड़े पहने, नगे पांव गांव की धूल मे खेलनेवाले प्रसन्नवदन नटखट लड़को और खानाबदोशो के लड़कों पर नजर डालिये, फिर बच्चों को स्वस्थ रखने के नियम जानने की आवश्यकता न रह जायगी। नंगे पांव रहने की आदत डालना बच्चों और बड़ों, दोनों के लिए लाभदायक है।

हम किसी को प्रणाम करते वक्त, गिरजे मे और कब्रिस्तान मे एवं प्रार्थना के समय की गंभीर और महत्त्वपूर्ण अवस्थाओं मे अपनी

टोपी- क्यों उतार देते है ? अब भी एक धीमी-धीमी आवाज हमे बताती है कि बुद्धि के उद्गमस्थान सिर को ढकना प्रकृति की इच्छा एव ईश्वर की आज्ञा के विरुद्ध है, अत पाप है। धार्मिक अनुष्ठानो के समय यह पाप करने से हम अनजाने मे ही बच जाते हैं।

'प्रकृति ने मनुष्य के सिर को आरंभ मे लबे, घुघराले, लहरदार बालो से सुसज्जित किया था। स्त्रियो के बाल तो इतने बडे होने चाहिए कि उनकी सुनहली अलको से उनका सुदर शरीर ढक जाय। पर मनुष्य जब अपने सिर को ढकता है तब वह प्रकृति की इस देन का निरादर करता है। इसे नष्ट कर देना पापपूर्ण भी है और मूर्खतापूर्ण भी। ईसा के सिर को कभी किसी टोपी ने नही ढका। उसे तो केवल काटो के ताज से सुसज्जित किया गया था।

जितना ही अच्छी तरह सिर को ढका जाता है उतना ही अधिक बालो को नुकसान होता है, अत मे वे बिलकुल उड जाते है। बाल उड जाने पर हम सुदर से अधिक असुदर ही प्रतीत होते है। खल्वाट मस्तक साक्षात् कुरूपता है।[1]

अत: सभी टोपिया और हैट हवादार और हल्के होने चाहिए और उनके अदर अस्तर मे चमडा नही लगाना चाहिए। भीतर की तरफ चारो ओर कपडे की (ऊनी) पट्टी लगाई जा सकती है, पर नंगे सिर रहने के लिए हमेशा मौका निकालना चाहिए। जब हम

---

[1]जो फिर से या अच्छे घने बाल उगाना चाहते है उन्हे प्रकृति के नियमो के अनुसार (जल, प्रकाश, वायु, भोजन) जीवन व्यतीत करना चाहिए। और जहा जब बने, सिर को नगा रखना चाहिए। सिर पर मिट्टी की पट्टी रखने से सिर की त्वचा से विजातीय द्रव्य खिच आयेगा और बालो के उगने मे सुविधा होगी। प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा बालो के बढने और घने होने मे और भी सुविधा मिलेगी।

अपने घर मे रहे या कमरे मे बैठकर काम करें, उस वक्त हमे अपना सिर खुला रखना चाहिए। शहर की सीमा पार कर लेने पर हमेशा टोपी उतार लेनी चाहिए।

यदि लोगो मे एक वार फिर से नंगे सिर, नंगे पाव और वन सके तो माझियो की भाति सीना भी खोल कर रहने की आदत डाली जा सकती तो उन्हे अपार लाभ पहुँचाया जा सकता। लोगों का यह प्रकृति की ओर एक वडा कदम होता और जीर्ण रोगो की लंवी शृंखला जगह-जगह से टूट जाती। पर कभी भी इतने कम कपडे पहनने की जरूरत नही है कि आदमी जाडे से ठिठुरता रहे और कष्ट भोगता रहे।

यदि हम हर तरह से प्राकृतिक जीवन विताना आरभ कर देंगे तो हमारे शरीर मे स्वय धीरे-धीरे इतनी उष्णता उत्पन्न हो जायगी कि हम अपने को जाड़ो मे जिन ऊनी कपड़ो से लादे रहते है उनमे से एक के वाद दूसरा कपड़ा स्वयं अपनी इच्छा से और खुशी-खुशी उतार फेकेगे। यह नही कि उस वक्त उनके विना हमारा काम चल जाएगा, वरन् उनका फिर से उपयोग करने पर उनसे हमे तकलीफ होने लगेगी।

कुछ लोग प्राकृतिक जीवन से यह अर्थ लगाते है कि ऐसा जीवन व्यतीत करनेवाले को टेवुल, कुँर्सी, मेज, कपड़े आदि वस्तुओं से, जो उसे अभी तक आराम और आनद प्रदान करती रही है, वंचित रहना पडेगा, पर यह डर निराधार है।

आरभ मे जो इन वस्तुओ से जितना चाहे आनद उठाये, पर प्रकृति-पथ पर अग्रसर होने पर सभ्यता के ये अधिकाश चिह्न धीरे-धीरे न केवल व्यर्थ प्रतीत होगे, वरन् वे भारवत् एव कष्टकर हो जायगे। उनसे तव खुशी-खुशी छुट्टी ली जा सकेगी और इस प्रकार

प्राप्त सादगी और स्वतत्रता अवश्य ही अधिक आनद और सुख का सर्जन करेगी।

इसलिए चलो प्रकृति की ओर लौटे। इस पथ पर चलकर हम आनद और प्रसन्नता प्राप्त करेंगे, शातिप्रदायिनी सादगी के अधिकारी होगे और असतोप की मूर्ति आवश्यकता से मुक्ति मिलेगी।

आज हम इतने सुकुमार हो गये है कि कपडे विना हमारा काम नही चलता। दूसरे, कपडो की इसलिए भी जरूरत है कि समाज मे विना कपडे के रहना लोगो मे अपने प्रति क्रोध और घृणा उत्पन्न करता है। कपडो से वस इतना-सा काम सधता है, अन्यथा वे विल्कुल व्यर्थ है।

कपडो द्वारा न तो चमकने की और न लोगो को अपनी ओर आकृष्ट करने की इच्छा करनी चाहिए और न उनसे अपनी नकली कीमत वढाने की ही कोशिश करनी चाहिए। यदि ऐसा हो तो फिर हम अपने कपडो के लिए पहले की तरह चिंतित न रहेगे, उनका हमारे लिए विशेप मूल्य न रह जायगा, न वे हमारा उतना समय लेगे और न उन पर उतना ध्यान देना पडेगा। निस्सदेह यह वडे सतोप की वात होगी। तव हमे अपने शरीर पर अगूठी, हार, वाजूवद, कठी-से कृत्रिम अलकार लटकाने और चिपकाने की जरूरत न रह जायगी।

ससार को मुक्ति दिलानेवाले ईसा ने अपने अनुयायियो से अनुरोध किया था कि वे दो कोट न पहने, और उन्होने कहा था—"जिसके पास दो कोट है उनमे से एक वह उसे दे दे जिसके पास एक भी नही है।"

यदि ईसा लोगो को प्रकृति-पथ पर लौटाये वगैर उन्हे जिंदगी मे सुखी और ईश्वर के निकट भला वनाने की कोशिश करते तो वे

भी अपने पहले और बाद मे हुए क्षीण-ख्याति सुधारकों की भांति असफल रहते। उस दशा मे प्रकृति की अवहेलना करने के कारण विस्मृत हुए अनेक दार्शनिकों एवं उपदेशकों की भांति ईसा और उनके उपदेश भी विस्मृति के गर्त मे कब के विलीन हो गये होते।

ईसा के समय मे एसेन नाम का एक छोटा-सा सम्प्रदाय था। इस संप्रदाय का वर्णन रोम के इतिहासकार जोसेफस और फिलो ने किया है। ये एसेन बिलकुल प्राकृतिक जीवन व्यतीत करते थे। अपने जीवन के कुछ भाग मे तो ये संन्यासी की तरह रहते थे। उस वक्त ये रेगिस्तान मे या पहाड पर रहते थे। रोग और आवश्यकता से रहित इस तरह के जीवन द्वारा वे इस पृथ्वी पर सुख और आनंद प्राप्त करते थे और अपने को स्वर्ग के लिए तैयार करते थे।

एसेनों के उपदेश, जो हमे इतिहासकारों द्वारा प्राप्त है और ईसा के उपदेशों मे, जो इंजील मे लिखे मिलते हैं, इतना अधिक साम्य है कि खुले दिल और दिमाग से सोचनेवाला व्यक्ति इस परिणाम पर पहुंचता है कि ईसा निश्चय ही एसेन थे। धर्मशास्त्रियों का भी मत इसके विपरीत नहीं है।

इस विषय पर मैं फिर लिखूंगा। हां, इतिहासकारों का कहना है कि एसेन हर प्रकार के आडबर से दूर रहते थे और केवल एक सफेद-सा लबादा अपने शरीर पर धारण करते थे जो अधोवस्त्र और ऊर्ध्व वस्त्र दोनों का काम देता था और इससे शरीर ढकने का काम पूरा-पूरा चल जाता था। एसेनो को अपने को सुंदर दिखाने की इच्छा नही थी और न वे कपड़ों द्वारा भव्य बनना और लोगों पर रोब जमाना चाहते थे। जब उनका चोगा फट-फटकर शरीर को किसी तरह ढकने लायक नही रह जाता था तभी वे उसे बदलते थे। इसके पहले वे नये चोगे का व्यवहार नही करते थे।

प्राकृतिक जीवन-सबधी ईसा के उपदेश धीरे-धीरे करीब-करीब विस्मृत हो गये या लोगो ने उनपर विशेष ध्यान नहीं दिया, अथवा अब लोग उनका केवल लाक्षणिक अर्थ लगाते हैं।

"जिसके पास दो कोट है वह एक कोट उसे दे दे, जिसके पास एक भी नही है"—अपनी इस आज्ञा का ईसा चाहते थे कि लोग लाक्षणिक नही, शब्दश अर्थ करें और वही अर्थ करे जो एसेन करते थे। अत. प्रत्येक सच्चे ईसाई और हर ईमानदार आदमी को चाहिए कि वह अपने लिए केवल एक लिबास रखकर बाकी सारे कपड़े गरीबो को दे दे।

आज के वातावरण मे लोगो के बधे विचारो के अंतर्गत रहकर अधिक-से-अधिक प्रकृति के निकट रहने के लिए एव ईसा के आज्ञानुसार चलने के लिए स्वास्थ्य को कम-से-कम हानि पहुंचाते हुए किसे कितने कपडे की जरूरत होगी, वह कपड़े के मामले मे कितनी सादगी अपना सकता है एव उसकी आवश्यकता से किस हद तक स्वतत्र हो सकता है, इसका निर्णय प्रत्येक को अपने लिए स्वय करना चाहिए।

कम-से-कम नये कपडे बनवाते समय तो हमे सादगी और स्वास्थ्य का ध्यान रखना शुरू कर ही देना चाहिए। स्त्रियो को इधर खास तौर से ध्यान रखने की जरूरत है। सादे कपडे पहनना शुरू कीजिये, वे आपको आज के मूर्खतापूर्ण फैशनेबुल कपडो से अधिक सुदर जचने लगेंगे। जो स्त्री फैशन की गुलाम न बनकर, बल्कि फैशन की अवहेलना कर, सादे कपडे पहनती है, वह कभी नुकसान नही उठायेगी। उसे इसके लिए हर जगह सहानुभूति और सम्मान मिलेगा।

मूर्खतापूर्ण फैशन की प्रशंसा करना अब हमे बद कर देना

चाहिए। जो लोग बहुमूल्य वस्त्र पहनकर अपने को आकर्षक बनाना चाहते है उन्हे ईसा के इन शब्दो पर ध्यान देना चाहिए "खेत मे खिली हुई लिलो की ओर देखो, कितनी सुदर है। और मै तुम्हे बताता हू कि यद्यपि सोलोमन इसकी तरह सजाये नही गये थे, पर वे इससे कम गौरवशाली न थे।" खेतों मे खिले फूल, एक पेड से दूसरे पेड़ पर प्रमुदित मन दौड़ती गिलहरी, पत्थरों और झाड़ियो पर से शान से छलांगे मारता हुआ हिरन, सुंदर पखोवाली गाती हुई चिड़िया, ये सभी सुंदर है।

अपने सुदर केशो से सुसज्जित, उत्कृष्ट रूप से सुडौल अंगोंवाली ढीला-सा वस्त्र पहने यूनान की स्त्री भी सुदर होती थी। सैमन स्त्रिया अपने सौंदर्य के लिए बहुत प्रसिद्ध है। प्रकृति की ये बालिकाए बहुत थोड़े कपड़े पहनती है और अपने द्वीप मे निष्कपट भाव से विचरण करती रहती हैं। इनका भोजन होता है करीब-करीब केवल फल, जिन्हे प्रकृति अब भी बहुतायत से उपजाती है।

जवानी मे ही वृद्धत्व को प्राप्त हुए, मक्खन-सी चिकनी चांद लिये, नुकीले टोवाले जूतों, एक आंख के चश्मे तथा अन्य सिंगार-सामान से बने-ठने जवान कुरूपता की प्रतिमूर्ति है, उन्हे देखकर घृणा होती है।

खेत मे गड़े डरावे की तरह प्रेत-सी लगती हुई पीली-पीली लड़किया और स्त्रियां, जो गोटे-पट्टे से लैस चमकीले भड़कदार कपड़े पहने, सिर के बालों को आड़ा तिरछा किये, रुनझुन-रुनझुन बजते गहने पहनकर शहर की सड़को पर घूमती नजर आती हैं उन्हे कुरूप न कहा जाय तो क्या कहा जाय? उनकी ओर लोग आकृष्ट नहीं होते, वरन् उन्हें देखकर प्रत्येक सौंदर्य के पारखी के मन मे घृणा

उत्पन्न होती है।

ईसा ने अपनी आज्ञा मे छोटी-छोटी बातो पर भी ध्यान रखा है। उन्होने अपने शिष्यो को छडी लेकर चलने से भी मना किया है—"तुम लोग अपने साथ दो कोट न रखो, न जूते ही पहनो और न छडी लेकर ही चलो।" इसलिए बिना छडी के टहलना अधिक प्राकृतिक एव स्वास्थ्यप्रद है। अनुभव की बात है कि बिना छडी लिये चलना अधिक सुखप्रद और स्वास्थ्यप्रद है।

कपडो की बात तो अलग रही, घर को सजाने मे भी हम जिस तडक-भडक से काम लेते है वह अधिकतर अप्राकृतिक और हानिप्रद है। इस दशा मे भी हम अपनी उस प्राकृतिक दशा से बहुत दूर जा पडे है जब मनुष्य ईश्वर के बनाये प्रासाद मे, तारो से ग्रथित आकाश के नीचे, पेडो के सायेदार गुबद के तले रहता था और खुली धरती पर बैठता और लेटता था। उस समय प्रकृति स्वय अपने हाथो उसके घर को फूल-पौधो और वृक्षो से सजाती थी।

पहले हमे तकिया और झालर लगी मेज-कुर्सी से बचना चाहिए और उनका त्याग करना चाहिए। मुलायम गद्दी-तकिया लगे सोफे पर बैठने या लेटने पर शरीर के कुछ अग बहुत अधिक गरम हो जाते हैं। फल यह होता है कि इन अगो मे रक्त इकट्ठा हो जाता है जिससे शरीर के रक्त-सचालन मे बाधा पडती है, थकान और सुस्ती आती है, कापुरुषता और हर तरह की कमजोरी का आगमन होता है। मैं समझ नही पाता कि लोग गद्दे और झालरदार टेबुल-कुर्सी से, जिनमे गर्दा बुरी तरह फसा है, भरे कमरे मे आराम का अनुभव कैसे करते है। इनके बजाय बेत की बनी और बेत से बनी कुर्सी आदि का उपयोग हो सकता है। सादी लकडी से बनी मेज, कुर्सी और बेच, जैसी कि पहले लोग काम मे लाते थे, आज के तकिये

और झालरदार सोफे और कुर्सी से अच्छी समझी जानी चाहिए।

खिड़कियो को सजाने मे भी कम वेवकूफी से काम नही लिया जाता। पहले लोग खिड़की पर पर्दा नही लगाते थे। वायु और प्रकाश अवाध रूप से कमरे मे आता रहता था और यह वहुत अच्छी वात थी। आज के सुसंस्कृत कुटुवों मे यदि घर मे कोई ऐसी खिड़की हो जिससे रोशनी घर मे घुस सकती हो, तो यह वड़ी शर्म की वात समझी जाती है और इसलिए वे उस पर पर्दा डाल देना आवश्यक समझते है। अतः वे लोग ऐसा पर्दा खिड़की पर नही लगाते जिससे सड़क पर चलने वालो को घर के अंदर की चीजे न दिखाई दे, वरन् वे उसपर इतना मोटा कपड़ा लगाते है कि कमरे मे अधेरा हो जाता है जिससे कमरा अस्वास्थ्यकर तो हो ही जाता है, उसमे आराम भी नही मिलता। यदि खिड़कियो को सजाना ही हो तो क्यो न किसी सुंदर, पतले पारदर्शी कपड़े से उन्हे सजाया जाय जिससे सूर्य की किरणो और प्रकाश को कमरे मे पहुंचने मे कम-से-कम रुकावट हो।

यहा मै विछावन के वारे मे भी थोड़ा-सा कहना चाहता हूं। मनुष्य की जिंदगी का आधा भाग विछावन पर ही कटता है। विछावन पर वह अपनी थकान दूर करना और अपना स्वास्थ्य वढाना चाहता है। इसलिए विछावन पर वहुत ध्यान देने की जरूरत है ताकि उसे प्रकृति के अनुकूल वनाया जा सके। पहली जरूरत विछावन के वारे मे यह है कि उसमे हवा आसानी से आ-जा सके। चादर के अंदर की हवा शरीर से निकली भाप और पसीने के ससर्ग में आकर गदी हो जाती है। उसकी गंदगी दूर करने के लिए चादर के अंदर की हवा को वाहर की हवा से मिलने का पूरा मौका मिलना चाहिए। इसलिए रुई या फर से भरी रजाई और गद्दे का पूर्ण वहिष्कार करना चाहिए। ओढ़ने के लिए केवल ऊनी कंवल सर्वश्रेष्ठ

है। शरीर से लगी रहने वाली चादर ज़रा पतली रहनी चाहिए ताकि वह शरीर से अच्छी तरह चिपक सके। कंवल के ऊपर जो चादर डाली जाय वह भी हल्की, सूक्ष्म रध्र-युक्त होनी चाहिए। ऐसे ओढने के नीचे शरीर मे उपयुक्त और आवश्यक गरमी पैदा होती है।

विछाने के लिए खर-पयाल की वनी चटाई, जैसी कि पहले चला करती थी, वहुत अच्छी रहेगी। पयाल या खर मे हवा अच्छी तरह आ-जा सकती है और वह शरीर को, विना अप्राकृतिक रूप से गरम किये, काफी गरम भी रहती है। पर आज लोग अपने शयन-कक्ष के फर्श पर विछे गलीचे पर गिरा हुआ खर देखना कैसे पसद करेगे। इसलिए चटाई का चलन चलेगा, ऐसा प्रतीत नही होता।

पर गद्दा समुद्री घास, ज़ई, भूसे आदि से भरकर भी वन सकता है। कवल से भी गद्दे का काम लिया जा सकता है। घोडे के वालो और ऊन से भी गद्दा वन सकता है। ऊन के साथ यदि घोडे के वाल मिलाकर गद्दा वनाया जायगा तो ऊन दव-दवकर इतना चिपटा नही हो जायगा कि हवा उसके आर-पार न जा सके।

ऊचे-ऊचे तकिए लगाकर सोते वक्त सिर को वहुत न उठाइये। तकिए हो ही तो वहुत पतले। ओढने के नीचे विल्कुल नंगे (विना कमीज या जाघिया पहने) सोने पर जितना जोर दिया जाय, कम है। विना कपडे पहने सोने पर कपडे पहनकर सोने से शरीर ज्यादा गरम रहता है। हवादार गद्दे वडी आसानी से वन सकते हैं। धीरे-धीरे लोगो को पुरानी चाल के गद्दे छोडकर स्वास्थ्यकर गद्दे वनवाने चाहिए।

: ७ :

धरती माता

मछली जल का जीव है, वह जल मे ही रह और जी सकती है। पक्षी का निर्दिष्ट स्थान वायु है। वह आकाश का राजा है। जव वह आराम करना चाहता है तव वह पेड़ पर वैठता है, इसके लिए जमीन पर तो शायद ही कभी उतरता है। (मेरे यह कहने का लक्ष्य मुर्गी-सा परदार जानवर नही है) लेकिन आदमी धरती पर चलता है।

जव तक आदमी ने जूते-कपडे नही पहने थे तव तक वह वैठा होता था या चलता, दोनो ही हालतों मे पृथ्वी के सीधे संपर्क मे रहता था।

पृथ्वी और मनुष्य के संवंध मे उस वक्त किसी प्रकार भी अडचन नही पड़ती थी।

प्रकृति यह चाहती है कि उसका और मनुष्य का यह निकट संवध अव भी वना रहे। प्रकृति की इस इच्छा को एक पवित्र एवं अलंघ्य नियम की तरह समझना चाहिए जिसे तोड़ने पर हमेशा दड मिलता है।

यह जानकारी मुझे अधिक-से-अधिक प्रकृति की ओर लौटने तथा अपने और अपने साथियो के लाभ के लिए उसके नियमो को गहराई से समझने की अटूट एवं अथक कोशिश के सिलसिले मे हुई और मुझे आशा है कि लोगो के लिए यह जानकारी काम की होगी। मुझे इसका अनुभव साफ-साफ हुआ है कि कमरे अथवा तख्तों पर नगे पैर टहलना उतना पुरअसर, शक्ति एवं उत्साहवर्द्धक नही है जितना खुली धरती पर टहलना; चाहे उसपर की धूल और घास विल्कुल सूखी ही क्यों न हो। वनवासियों एव वन मे काम

करनेवाले मजदूरों से बात होने पर उन्होने मुझे विश्वास के साथ कहा है कि बेंच अथवा और किसी चीज पर सोने से पृथ्वी पर सोना उनके अधिक अनुकूल पडता है एव इससे उन्हे अधिक शक्ति भी मिलती है।

पशु और मनुष्य, दोनो ही पौधो की तरह पृथ्वी के प्राणी है। उनके विकास मे उनका पृथ्वी से सबध छूट गया और ये नाडी-वृक्ष चलने-फिरने लगे, पर पौधो की तरह पशुओ और मनुष्यो पर प्रकृति के नियम समान रूप से लागू है। उन्हे शारीरिक शक्ति एव प्राणशक्ति अब भी पृथ्वी से ही मिलती है।

इस जानकारी के बाद मैने नगे पाव पृथ्वी पर चलने को अधिक महत्त्व दिया और मुझे नगे पाव चलने का आरोग्यप्रद गुण ज्यादा-से-ज्यादा समझ मे आने लगा। फिर मै यह सोचने लगा कि मनुष्य धरती से और अधिक लाभ किस प्रकार ले सकता है। मैने पहला काम यह किया कि रोगियो का चारपाई पर सोना बद करा दिया और उन्हे खुले आसमान के नीचे अथवा वायु एव प्रकाशपूर्ण झोंपडों मे जमीन पर पयाल या गद्दा विछाकर सुलाने लगा। इस प्रकार सोने के समय वे धरती के कुछ अधिक नजदीक आये। इससे प्रत्यक्ष लाभ मालूम हुआ, नीद ज्यादा ताजगी और आनद देने वाली हुई।

पर जल्दी ही कुछ रोगी बिल्कुल नगे ही मुलायम घास पर पयाल ओढकर सोने लगे। वे सभी सोने मे पृथ्वी से मिले लाभ का वर्णन उत्साहपूर्ण शब्दो मे करते। वे लोग जो कुछ कहते, उससे ज्ञात होता कि यदि रोगी पृथ्वी पर सोना शुरू कर दे तो उन्हे सभी रोगों, खास तौर से आज के प्रचलित कोडियो नाड़ी-संबधी रोगो मे से किसी का कोई डर न रहे। रात को सोते मे मनुष्य पर पृथ्वी की शक्तियों का जो प्रभाव पडता है वह निस्सदेह आश्चर्यजनक है।

जिसने इसका कभी अनुभव नही किया है उसकी समझ मे इस वात का आना कठिन है कि मनुष्य-शरीर पर इसका सोते में कितना तरोताजा करनेवाला और शक्ति एव जीवनदायक असर होता है।

रोगी की पाचन-क्रिया को सुधारना एवं उसे शक्तिशाली बनाना प्रत्येक चिकित्सा-पद्धति का पहला काम है। प्राकृतिक नहान एवं वायु और प्रकाश-स्नान से शौच समय पर और साफ होने लगता है, पर पाचन-क्रिया को ठीक करने के लिए जमीन पर सोने-सा दूसरा उपाय नही है।

धरती पर सोने से शरीर की सुस्ती जाती, चेतना जगती और आंतें सड़ांध एवं पुराने कड़े मल को अच्छी तरह निकाल पाती है। फलत. शरीर नवजीवन और नई शक्ति का अनुभव करता है।

नंगे पांव चलने, प्रकाश और वायु-स्नान लेने या जमीन पर नंगे लेटने से पृथ्वी की आरोग्य-प्रद शक्ति का वह अनुभव नहीं होता जो रात को पृथ्वी पर सोने से होता है। पता नही, यह विशेष लाभ सोते वक्त शरीर के विल्कुल निश्चेष्ट रहने से मिलता है अथवा पृथ्वी की शक्तिप्रदायिनी क्रिया रात को खास तौर से तेज हो जाती है।

प्राय: सभी पशु, विशेपतया खरहे और हिरन, जब अपने लिए सोने का स्थान बनाते है, पत्ती एवं लकड़ी के टुकड़े वगैरह जमीन पर से हटा देते है। वे ऐसा निश्चय ही इसलिए करते है ताकि वे पृथ्वी के सीधे संपर्क मे रह सके और पृथ्वी की शक्ति उनपर प्रभाव डाल सके। कोई भी पशु घास, पत्ती, लकड़ी वगैरह इकट्ठीकर उनपर नही सोता, इन सव चीजों को तो पक्षी ही अंडा सेने के सुभीते के विचार से गरम रहनेवाला घोंसला बनाने के लिए इकट्ठा करता है। एक खास तौर से ध्यान देने योग्य वात यह है कि जंगल के पशु जहां सोते या आराम करते हैं उस जगह से लकड़ी, डंठल, पत्ती

वगैरह और यहा तक कि यदि हो तो वरफ भी हटाकर साफ कर लेते है। कभी-कभी वे जमीन पर लोट भी लगाते हैं। जर्मनी के शिकारी उनकी इस आदत को 'गदहलोट' कहते हैं।

लोमड़ी और बिज्जू अपनी माद मे बहुत-सी चीजे घसोट ले जाते हैं, पर अपने सोने की जगह बिल्कुल साफ रखते हैं। वे हमेशा साफ-सुथरी जमीन पर सोते है। जगली सूअर मिले तो पेड की पत्तियो के ढेर मे घुसकर या झाडियो मे छिपकर सोना पसंद करते हैं, पर उनके सोने की जगह पर कोई चीज नही होती। कभी-कभी तो अपने शरीर का कुछ भाग वे जमीन मे गडा तक देते है।

एक वार मुझे एक बीमार पालतू वाज की गतिविधि का अध्ययन करने का मौका मिला था। उसे उसके गदे पिजडे के वाहर निकाल दिया गया था और मेरे कहने पर लोगो ने उसे बिल्कुल अकेला छोड दिया था कि वह जहा चाहे जा सके। वह तरकारी के खेत मे गया और करमकल्ले की क्यारी मे, जहा जमीन मुलायम थी, कुछ जमीन खुरची और अपने को उसमे थोडा धसाकर चुपचाप लेटा रहा। कुछ दिनो वाद वह वाग से लौट आया और हम लोगो ने देखा कि वह बिल्कुल स्वस्थ हो गया है। जव तक वह बीमार रहा उसने कुछ भी नही खाया। इस प्रकार पशु, गोकि अपने साधारण जीवन मे चलते-दौडते वक्त पृथ्वी के सपर्क मे रहता है, फिर भी आराम करते वक्त और बीमारी मे पृथ्वी के अधिक नजदीक और सीधे संपर्क मे आने की कोशिश करता है।

जव तक बिछावन रहेंगे उनके सुधार की वात चलती रहेगी, और जव तक मनुष्य प्रकृति द्वारा निर्मित बिछावन पर नही सोयेगा, बिछावन की अपूर्णता भी मनुष्य के सामने आती रहेगी। प्रकृति ने अपने इस बिछावन मे वह जादूभरी शक्ति भर दी है कि उसके

संपर्क मे आने पर मनुष्य को अपने जीवन मे अधिकाधिक आनद का अनुभव होता है।

पहले मनुष्य प्रकृति के नेतृत्व मे पापरहित, पवित्रतम एवं आनंद से परिपूर्ण जीवन व्यतीत करता था। वह अवाव रूप से उस स्वर्गीय सुख का उपभोग करता रहता था जिसकी कल्पना प्रत्येक सुसभ्य जाति की स्वर्ग-संवंधी कल्पना के अंतर्गत की गई है; पर स्वर्ग के सर्प की तरह तर्क ने पृथ्वी पर हमला किया और लोगों को वहकाया कि वे खुदा के हुक्मों—प्रकृति के नियमो की, जिनकी अनुभूति हमे ज्ञानेंद्रियों, नैसर्गिक प्रवृत्तियो एवं विवेक द्वारा होती है, अवहेलना कर अपने इच्छानुसार मौज और खुशी मे रत रहेंगे तभी उनके शरीर, मन और आत्मा तीनों को पूर्ण आनंद मिलेगा।

जैसा कि मैंने 'प्रकृति के वोल' पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा था कि तर्क के दुरुपयोग एवं अपमान के फलस्वरूप सर्प के वच्चे 'विज्ञान' का जन्म हुआ। उसने औपध-विज्ञान को ही नही, अध्यापन-विद्या, धर्म-शास्त्र, दर्शन एवं न्याय-शास्त्र को भी पैदा किया। मनुष्य को सुखी एवं समृद्ध वनाने वाले प्रकृति के नियमों के पालन की राय विज्ञान कभी नही देता। औषध-विज्ञान तो यह घोषणा करता है कि यदि मनुष्य प्रकृति के अनुकूल जीवन व्यतीत करेगा तो उसका अहित हुए विना न रहेगा। वह कहता है कि प्राकृतिक भोजन—फल आदि—से मनुष्य को पूरी शक्ति तो मिलती ही नही, उसका स्वास्थ्य नष्ट होता है और मनुष्य का प्रकाश और वायु के सम्पर्क मे अपने को लाना खतरे से खाली नही है (इससे सर्दी वगैरह हो जाती है)। उसकी यह भी मान्यता है कि प्राकृतिक जीवन व्यतीत कर (प्राकृतिक भोजन ग्रहण कर) हम जिंदगी के वहुत-से मजे खो देंगे। इसके वाद विज्ञान, शरीर-विज्ञान एवं और भी प्रयोगशाला में किये गए अनेक

प्रकार के अन्वेषणो के आधार पर वह अप्राकृतिक भोजन का एक नुस्खा तैयार करता है, जिसके लिए वह कहता है कि इसे खाते ही शक्ति मिलती है और यह स्वादिष्ट लगता है। इस प्रकार विज्ञान नैसर्गिक प्रवृत्ति, स्वाद (सही मानो मे) एव सदसद्-विवेक का कोई खयाल न करनेवाले स्वास्थ्य-नियमों का निर्माण करता है। विज्ञान की दूसरी शाखाए—अध्यापन, धर्म, दर्शन, न्यायशास्त्र—भी अब ऐसे नियम बनायेगी जिनमे मनुष्य को प्रकृति के सपर्क मे आने से भरसक बचाया जायगा और कहा जायगा कि इन पर चलकर मनुष्य अच्छा और भला बनेगा तथा उसे सुख और संतोष प्राप्त होगा ।

इस प्रकार विज्ञान के फेर मे पडकर मनुष्य ने जूते पहने और पृथ्वी की सुखद शय्या को छोडकर पलग पर लेटा। उसने कल्पना की कि इनके द्वारा उसे वह हिफाजत, आराम और आनद मिल रहा है जो प्रकृति उसे नही देती थी; पर तर्क की इस झूठी लुभावनी और विज्ञान की चमकीली सिखावन के फेर मे पडने पर मनुष्य को न आराम मिला न आनद, न स्वास्थ्य न खुशी, न माधुता न सौजन्य; पर उसकी आशा के विपरीत मिले उसे रोग और पीडा, ऊब और घबराहट, पाप और अपराध, दुःख और नैराश्य। प्रकृति अपने विरुद्ध चलने वाले से इसी तरह का बदला लेती है। कविवर गेटे ने ठीक ही कहा है :

"इस प्रकार के जीवन मे मनुष्य को शायद कुछ अधिक संतोष मिल जाय, पर जब उसने स्वर्गीय प्रकाश से पथ-प्रदर्शन लेना छोड़-कर तर्क का पल्ला पकड़ा तो उसने अपने को अधिक शक्तिशाली अनुभव किया—पशु से भी अधिक शक्तिशाली, और फिर उसमे पशु-जितना भी विवेक नही रहा ।"

तर्क एक उच्च प्रतिभा है और मनुष्य के लिए ईश्वर की विशेष

देन है, पर मनुष्य इसका सदुपयोग नही कर सका और यह शक्ति उसके लिए आसुर फंदा और दु खों का कारण वन गई।

आत्मा और शरीर का सच्चा और पूर्ण स्वास्थ्य, जिसमे शारीरिक शक्ति, मानसिक स्वच्छता और आत्मानंद सम्मिलित हैं, विना एक वार फिर अपने को पृथ्वी के सीधे संपर्क मे—चलते-फिरते वक्त और खास-तौर से आराम करते वक्त—लाये वगैर मनुष्य को और किसी तरह मिलने को नहीं है।

यह उम्मीद तो नही की जा सकती कि मनुष्य एक-दम कपड़ा पहनना ही छोड़ देगा और दिन-भर नंगा घूमेगा। अभी इस रास्ते की अनेक कठिनाइयों को उसे पार करना है, और न यही उम्मीद की जा सकती है कि वह एकाएक सर्वथा प्राकृतिक भोजन को अपना लेगा और केवल फल-मेवे का आहार ग्रहण करेगा; पर इतना तो वह कर ही सकता है कि हरदम नंगे पांव रहे। इस चलन मे जाडे मे भी कोई तकलीफ नही होगी, वरन् लोग खुशी और आनंद का अनुभव करेंगे। नंगे पांव चलना तपस्या नही है, इससे जीवन का आनंद घटता नही, वढता है। मनुष्य जव नगे पांव चलना शुरू करता है, धरती को अपना वेटा वापस मिल जाता है। मनुष्य पर नूतन स्वास्थ्य और सच्ची खुशी की वर्षा होने लगती है। आज के रोगी, दु:खी, पापी, अन्यायी मनुष्य का पुनर्निर्माण भी होगा, पर वह जो है उससे दूसरा तभी वनेगा जव वह नंगे पांव चलना, रोज कुछ मिनटों या चंद घंटों के लिए ही नही, वल्कि हमेशा के लिए सीख लेगा।

वृक्ष मे जो काम जड़े करती हैं हमारे शरीर मे वही काम कुछ अंशों मे पैर करते हैं। उनके द्वारा पृथ्वी हममे शक्ति और जीवन का संचार करती है।

ईसा नगे पांव चलने को वहुत महत्त्व देते थे। वे स्वय नगे पांव

चलते थे और उन्होंने अपने शिष्यो को आज्ञा दी थी

"तू जूतो का वोझ मत घसीट !"

वे भिक्षु, जो नगे पाव चला करते थे, ठीक ही समझते थे कि ईसा द्वारा प्रतिपादित आनद और मुक्ति तव तक मनुष्य को नही मिलेगी जव तक वह जीवन मे उस प्राकृतिक पद्धति को नही अपनायेगा जिसे इश्वर ने अपने भक्तो के जीवन द्वारा सारे ईसाई-ससार के सामने उपस्थित किया है और जिसकी आज सर्वथा अवहेलना की जाती है ।

प्रत्येक आरोग्य-मदिर का यह पहला नियम होना चाहिए कि उसके अधिवासी हमेशा नगे पैर रहे, चप्पल भी न पहनें ।

जब कुछ दिन नगे रहने पर प्रकृति के दिये हमारे पैरो मे खून दौडने लगेगा और इससे उनकी आकृति स्वाभाविक हो जायेगी और जव लोग घिसे, भोडे, पैवद-लगे जूतो से खुले पैरो को अधिक सुदर और सौदर्यसवर्धक मानने लगेगे, तव नगे पाव चलने का, जिसका प्रतिपादन ईसा ने अपने उपदेश और उदाहरण द्वारा किया है, न मजाक उडाया जायगा, न इसे ओछी दृष्टि से देखा जायगा । घृणा-स्पद जूतो को, जो अक्सर पैरो को दवाते-काटते है और जिसका कष्ट मनुष्य के मुख पर प्रतिविवित होता रहता है, प्रकृति की कला-कृति मनुष्य के पैरो से सुदर समझना प्रकृति का अपमान करना है ।

यदि धरती पर सोने का महत्त्व एक वार पूरी तरह समझ लिया जाय और इसका चलन चला दिया जाय तो मनुष्य जाति रोगी शरीर और विकृत मन के भवर-जाल से निकल जाय । इस स्थिति से मुक्ति दिलाने मे प्राकृतिक स्नान, वायु और प्रकाश-स्नान, प्राकृतिक भोजन आदि भी वडे सहायक होगे ।

नये-पुराने सभी प्रकार के रोगों मे धरती पर सोने का चमत्का-

रिक गुण शीघ्र देखने को मिलता है ।

हजरत ईसा गदी हवा, विलास, कापुरुषता और नैतिक पतन के अड्डे शहरों से हमेशा दूर रहते थे । वे अधिकतर रेगिस्तान मे या पहाड़ो पर रहते थे । वे अपने उपदेश अधिकतर इन्ही स्थानों के वासियो को दिया करते थे और यदि किसी दिन वे यरूसलम के मदिर मे उपदेश करते थे तो अपनी रात वे आलिवस पहाड़ पर ही विताते थे जहा निश्चय ही वे खुली धरती पर सोते थे । प्रकृति की गोद मे विश्राम करते वक्त उनके शरीर पर ओढने के नाम पर केवल एक ढीला-ढाला लवादा रहता था ।

धरती पर सोना प्रारभ करने वालों को दूब से ढकी बढिया जगह चुननी चाहिए ; यदि ऐसी जगह न मिले तो जमीन पर चटाई विछाकर सोना चाहिए । इसमे तो कोई सदेह नही कि चटाई पृथ्वी की शक्ति को वहुत कुछ रोक लेगी । पायल, ऊन या रुई से भरे गद्दे या कवल-दरी पर सोने की तो वात ही नही सोचनी चाहिए । इनका उपयोग पृथ्वी से सवंध होने मे वहुत वाधा पहुचाता है । तकिए की भी जरूरत नही है । ठंडी, ताजगी प्रदान करनेवाली धरती पर सिर रखकर सोना विशेप लाभदायक है ।

यदि धरती पर सोने की पहली रात कुछ तकलीफदेह सावित हो तो निराश होने की जरूरत नही है ।

मैंने वरावर यह देखा है कि दो-चार दिनों के वाद ही रोगी को उसकी धरती की शय्या अति सुखद प्रतीत होने लगती हैं । तव वह पृथ्वी पर कोई भी चीज विछाकर सोना कभी स्वीकार नही करता । वरसात की रात मे ओढने की चीजों को भीगने से वचाने के लिए मै चाहता था कि रोगी अपनी झोपड़ियो मे सोये, पर वे अपनी-पृथ्वी-शय्या छोड़ने के लिए वड़ी कठिनाई से तैयार होते थे । कुछ ही दिन

धरती पर सो लेने के वाद उसकी कठोरता का भी कोई अनुभव नही होता। इससे भी डरने की जरूरत नही है कि जाडे की रातो मे जब ओढने के नीचे धरती पर नगे वदन सोयेगे तो धरती वडी ठडी लगेगी। वहुत से लोगो को विछावन पर सोने की अपेक्षा जमीन पर सोने से पसीना जल्द आता है, पर धरती पर सोना आरभ करने-वालो को, और ऐसे लोगो को भी जिन्होने प्राकृतिक जीवन व्यतीत कर अपने शरीर की गरमी नही वढा ली है, ग्रीष्म एव वसत की-सी ऋतुओ मे खुली धरती पर खुले वदन सोना चाहिए और जरूरत हो तो कुछ ओढकर सोना चाहिए।

जव आदमी धरती पर सोना शुरू करता है तव शुरू मे पहली रात को उसे अक्सर वैसी अच्छी नीद नही आती जैसी उसे अपने विछावन पर आती थी। इसके वाद सवको और कभी-कभी निद्रा भाव के पुराने और बुरे रोगियो को भी खूब नीद आती है और इससे उन्हे अपूर्व ताजगी और शक्ति मिलती है, पर यह गहरी नीद आने की अवस्था वहुत दिनो तक नही चलती। अक्सर कुछ दिन वाद लोगो को वहुत थोडी नीद आती है, यहा तक कि उन्हे एक-दो घटे ही सोने की जरूरत पडती है और ऐसे लोगो को जितनी ही कम नीद आती है दूसरे दिन वे उतनी ही चेतनता, ताजगी एव शक्ति का अनुभव करते है। पहले जव मै नाडी-दौर्वल्य का वुरी तरह से शिकार था, यदि मुझे किसी रात नीद नही आती थी तो दूसरे दिन मेरी बुरी गति हो जाती थी, पर पृथ्वी पर सोना आरभ करने पर आगे चलकर मुझे हफ्तो नीद नही आई, मैने एक झपकी भी नहीं ली, फिर भी मुझे किसी तरह के कष्ट या परेशानी का अनुभव नहीं हुआ। इसके विपरीत वे राते अधिक आनदमय एव क्लातिविहीन प्रतीत होती थी और मै उन दिनो एक अपूर्व ताजगी का अनुभव

करता था । किसी प्रकार की थकान या आलस्य का तो कोई अनुभव होता ही नही था ।[1] स्वतंत्र प्रकृति में विचरण करनेवाला हमें ऐसा कोई भी प्राणी नही दिखाई देता जो मनुष्य की तरह निद्रा के वशीभूत होता है और जो रोज-रोज रात को मनुष्य की तरह छः से आठ घटे तक या अधिक भी मृत्यु की-सी अवस्था मे व्यतीत करता है[2] । जितने घंटे मनुष्य सोता है उतने घंटे उसकी जिंदगी से घट जाते है । पशु प्राय: रात भर घूमते रहते है । वे कभी-कभी आराम जरूर करते हैं, खास तौर से दिन मे । जब वे आराम करते है तब कभी-कभी ऐसा मालूम होता है जैसे उनके सभी मानसिक एवं शारीरिक कार्य बद हो गये है, पर वे उस तरह नही सोते है जिस तरह आदमी सोता है । मनुष्य की तरह, तो घरेलू पशु भी नही सोता । घोड़े को ही लीजिये, वह कठिन परिश्रम के बाद ही कुछ घंटे गहरी नीद में सोता है । गोकि पशु सोते नही है, पर उनकी ताज़गी और चमक बनी रहती है । वे रात भर सोनेवाले मनुष्य की तरह न कभी जम्हाई लेते हैं और न उनके मुह पर कभी उनीदापन और

---

[1]ज्यों-ज्यो मनुष्य प्रकृति के निकट पहुंचता जायगा, रोगावस्था की समकक्ष क्लांति उससे दूर होती जायगी । मनुष्य का प्रत्येक क्षण पशु के मुकाबले मे प्रकृत्या अधिक आनद और प्रसन्नता मे बीतना चाहिए, क्यो कि उसे तर्क और कल्पना मिली है जिससे पशु विहीन है । इस प्रतिभा के बल पर वह कविता-जगत् मे विचरण कर सकता है । उसे जगत् मे क्लाति के लिए स्थान कहां ? क्लाति जडता की प्रतीक है, रोगावस्था की बहन है ।

[2]कुछ पशु जाडे भर सोते रहते हे । उनसे मनुष्य की तुलना नही की जा सकती । उनकी बनावट कुछ ऐसी होती है कि ठडक की वजह से उनके शरीर मे रक्त-परिचालन बहुत धीमा होता है और पाचन-क्रिया का काम बिल्कुल रुक जाता है अत. ऐसे वक्त पशुओ को भोजन की बहुत कम जरूरत होती है या बिल्कुल नही होती ।

थकान ही दिखाई देती है। शरीर की चमक बनी रहे, सुस्ती कभी न घेरने पाये, इसके लिए हमे प्रकृति से अधिक सपर्क स्थापित करना चाहिए जिससे धीरे-धीरे हमे सोने की बहुत कम जरूरत रह जाय और सभवत. आगे चलकर इसकी जरूरत बिल्कुल खतम हो जाय। यहा आराम करने और सोने के भेद को समझ लेना चाहिए। कार्य के बाद विश्राम प्रकृति का नियम है। आज के मनुष्य के शरीर और मन को उसकी आतरिक अशांति और उद्विग्नता के कारण कभी पूर्ण विश्राम नही मिलता। ज्यो-ज्यो उसका स्वास्थ्य सुधरता जायगा वह सुदरतम आनद, मधुरतम प्रसन्नता प्रदान करनेवाले विश्राम का अधिकारी होता जायगा।

इस प्रकार के विश्राम मे जडता नही होती, न मस्तिष्क की मरणावस्था की-सी दशा।

पशु पूर्ण विश्राम की अवस्था मे सब कुछ सुनते और करते है। प्राकृतिक भोजन ग्रहण करनेवाले और प्राकृतिक स्नान करनेवाले को बहुत कम नीद की जरूरत होती है।

जिस प्रकार खुली धरती के बजाय कबल पर सोकर भी धूप-नहान लेनेवाले को नीद नही आती, उसी प्रकार प्राकृतिक जीवन व्यतीत करनेवाला यदि नगा होकर अधिक गरमी के दिनो मे भी धरती के बजाय बिछावन पर सोये तो भी निद्रा उस पर अधिकार नही कर पाती। जितना ही अधिक हम अपने को, विशेषत. धरती पर सोकर एव अन्य प्राकृतिक नियमो द्वारा प्रकृति के संपर्क मे लायेंगे उतना ही कम हमे बल तथा ताजगी के लिए नीद की जरूरत रहेगी।

यदि किसी को सुलाना हो तो किसी तरकीब से उसकी नाड़ियो मे ढीलापन लाने की जरूरत होती है। यह अवस्था ब्रोमाइड, मार्फिया

और अफीम के विपो द्वारा उत्पन्न की जाती है और इतने जोर के झटके से एव इतनी गहराई से की जाती है कि वाद में स्वास्थ्य पर उसका बुरा असर साफ-साफ प्रकट होता है। शराव पीने से, अप्राकृतिक भोजन करने से, गरम कमरे मे सोने से, गरम कपड़े ओढ़कर सोने से और मोटे गद्देदार विछावन पर सोने से भी नीद आती है और इस नीद को लोग शक्तिदायक और लाभदायक समझते है; पर यह नोद भी इन वाहरी उपकरणों द्वारा शरीर मे ढीलापन उत्पन्न हो जाने के कारण ही आती है और निश्चय ही शरीर को नुकसान पहुंचाती है किन्तु यह हानि, इतनी अधिक नहीं होती कि उसके लक्षण साफ-साफ दिखाई दे सके।

फिर भी लोग सोकर उठने पर एक प्रकार की घवराहट और भय का अनुभव करते ही है, पर जव लोग धरती पर सोने लगते हैं तव उन्हे नीद थोड़ी ही क्यों न आये या न भी आये तो भी सोकर उठने पर उन्हें कोई अप्रिय एवं कष्टकर अनुभूति नही होती।

आज के कृत्रिम जीवन, नाड़ियों की उत्तेजना तथा गरम विछौने के कारण जो लोग नाड़ी-दौर्वल्य के अनेक रोगियों की तरह अपने शरीर को ढीला नहीं कर पाते एव जिन्हे अच्छी तरह देर तक नीद नही आती उनकी दशा चिंतनीय समझी जानी चाहिए।

जो लोग शराव पीते हैं तथा दूसरे अप्राकृतिक खाद्यों का उपयोग करते है एव अप्राकृतिक जीवन व्यतीत करते हैं, गरम कपड़े आदि पहनते है और जिन्हे धरती पर सोने की आदत नही है वे यदि थकान आने पर अपने गरम विछावन पर जाकर लेटते है तो गलती करते हैं। पहले तो ऐसा कार्य करना जिससे शरीर थके और फिर उस थकान से लड़ना शरीर को तेजी से खपाना है। उदाहरण के लिए, यदि कोई अफीम या मार्फिया खा ले और इससे जो नीद आये उससे

लड़े तो शरीर पर इन विषो का असर ज्यादा बुरा होगा और नीद से वह जीत भी न सकेगा, वह उसे जरूर धर दवायेगी।

मैने निद्रा-सवधी अपने जो विचार यहां प्रकट किये है वे केवल यह दिखलाने के लिए प्रकट नही किये है कि मै प्रचलित विचारो के विपरीत, विल्कुल भिन्न विचार रखता हू और न इस आशा से किये हैं कि लोग उन्हे पढकर मुझे वाहवाही देगे या यदि मेरे विचार उन्हे असुविधाजनक और भार-स्वरूप लगे तो कम-से-कम मै उनके क्रोध और घृणा का भाजन वनूगा। मेरी इच्छा केवल इतना वताने की है कि यदि कोई सज्जन खुली धरती पर नगे सोने का प्रयोग, सभवत. गरमी की किसी सुदर रात्रि मे करे और उन्हे नीद कम आये तो वे पस्तहिम्मत न हो और इस सर्वथा प्राकृतिक रीति का अनुसरण करने से उनके स्वास्थ्य और शरीर को जो अपूर्व लाभ मिलनेवाला है उससे वचित न रहे। यदि ये प्रयोगकर्ता वीच मे ही अपना योग छोड वैठे तो वे जान ले कि किसी शराव की भट्टी मे चुलाई औषधि या किसी मरीज-दिमाग मे पैदा हुए रसायन से महरूम न रह जायगे, वरन् एक ऐसी प्राकृतिक महौषधि के अपने को अनधिकारी ठहरायंगे जिसे प्रकृति स्वयं अपने हाथो प्रदान करती है और जिसकी अनुभूति स्वास्थ्य की एकमात्र सच्ची नियत्री और पथप्रदर्शिका नैसर्गिक प्रवृत्ति द्वारा होती है।

जिन लोगो ने नगे पैर टहलने का इरादा पक्के तौर से कर लिया है वे इसकी चिंता न करे कि वे कहां टहलेगे। खेत और वन, चरागाह और मार्ग काफी लंवी दूरी मे फैले हुए है, जहा कोई भी टहल सकता है। आज के लोगो के दिमाग से रूढिवादिता खतम हो रही है जिससे वे नई चीजे देखने के आदी होते जा रहे है। अत. नगे पाव टहलने को लोग वहुत विचित्र चीज नही मानते और नंगे

पाव टहलनेवालो को न चिढाते है न उनका मजाक ही उड़ाते है।

लोग यह भी पूछ सकते है कि रात को खुली धरती पर खुले वदन सोने के लिए अपना कवल और ओढना लेकर कहां जाये ? प्राकृतिक चिकित्सालयो मे इसकी सुविधा रहती है। वहा पार्कों मे ऊंचे-ऊचे तख्ते खडे करके स्त्रियो और पुरुषों के लिए अलग जगहें वना दी जाती है जिनमे वायु एवं प्रकाशपूर्ण झोंपड़े भी होते है ताकि रोगी इच्छानुसार खुली जमीन पर या जमीन पर (पयाल पख से भरा) गद्दा विछाकर सो सके और वायु और प्रकाश-स्नान कर सके।

ऐसी जगहों मे प्राकृतिक स्नान की भी सुविधा अवश्य होनी चाहिए। वहा इस स्नान के लिए छोटी-छोटी कोठरियां वनवा दी जा सकती है।

मेरी कदापि यह मंशा नही है कि प्रत्येक व्यक्ति मेरे विचारो से प्रेरित होकर पुरानी रूढ़ियो से, जो समाज मे गहराई तक जड़ जमा चुकी है और अक्सर नुकसानदेह ही होती हैं, अपना नाता तोड़ ले और जिनके साथ अभी तक वह भुगतता और सहता रहा है, जिनके साथ अव भी उसका भाई-चारे और प्रेम का सवध है उनके विरोध का भाजन वने एवं उनसे खुली लड़ाई ठान वैठे।

जहां तक वन सके, हमे ऐसे खुले विद्रोह से वचना चाहिए, पर ऐसा न हो कि हम जिस लक्ष्य की सिद्धि के लिए कटिवद्ध हैं उसे ही हतोत्साह होकर छोड़ वैठें। ऐसा करना अपमानजनक एवं भीरुता का लक्षण होगा। स्वास्थ्य-प्राप्ति का हमे सदा ध्यान रहना चाहिए। स्वास्थ्य पर ही-सारी दुनिया का सुख निर्भर है।

समाज के स्वास्थ्य की देख-रेख के लिए नियत सरकारी अधिकारियो से भी हमे न भिड़ना चाहिए और न ऐसे कानूनों को ही

तोड़ना चाहिए, गो वे गलत ही क्यों न ठहरते हो, जिन्हे साधारण जनता के मत के आधार पर चुने प्रतिनिधियो ने बनाया है।

पर प्रत्येक नागरिक को यह ध्यान रखना चाहिए कि ऐसे कानून (टीका आदि लगाने के कानून) से लोगो का कम-से-कम अहित हो और उन्हे इस बात की कोशिश करनी चाहिए कि ऐसे कानून समय पाकर बदल दिये जाय या रद्दकर दिये जाय।

सर्वथा प्राकृतिक जीवन व्यतीत करनेवालो का मजाक उडाने और उनकी राह मे रोड़ा डालने की लोगो की इच्छा होने के कई कारण है। पहली बात तो यह है कि जो लोग ऐसा करते है उन्हें अपने अस्वाभाविक जीवन का एव उससे आनेवाली विपत्तियो का नैसर्गिक रूप से ज्ञान रहता है और प्राकृतिक जीवन व्यतीत करने-वालो को हुए लाभ को देखकर उन्हे ईर्ष्या होती रहती है, दूसरे, भोजन एव जीवन की अस्वाभाविक रीति से, जिसका मनुष्य मादक द्रव्यो एव पापाचारो की तरह गुलाम बना रहता है, मुक्ति पाने के लिए न उनमे काफी मानसिक बल होता है, न इसके लिए उसे प्रोत्साहन अथवा मौका ही मिलता है। और सबसे बडी बात यह है कि उन्हे इस सही रास्ते का समुचित ज्ञान भी नही होता कि इसका अनुसरण कर सके।

पर जब लोग इस सत्य को अधिकाधिक साफ तौर से जानने लगेगे और शाति एव बुद्धिमत्तापूर्वक उसे इस तरह अपनायेगे कि लोग उनसे कम-से-कम चिढे या भडके, तो इसकी जड उतनी ही जमती जायगी और इसके मार्ग मे काटे बिछानेवालो की सख्या भी कम होती जायगी। और अब तो मालूम होता है कि रास्ता बहुत कुछ साफ हो भी गया है।

तब पृथ्वी के आनद और आराम का दरवाजा जिस प्रकार आज

मेढक और चूहा, खरहा, और साही, हिरन और बारहसिंघा, लोमडी और बिज्जू आदि इन-इन जीवो के लिए खुला है उसी प्रकार ईश्वर के प्रियपात्र मनुष्य को भी धरती माता के जादू-भरे संसर्ग मे रहकर आराम करने की सुविधा मिल जायगी, जिससे उसे पृथ्वी का सच्चा आनंद मिलेगा एव उसके स्वास्थ्य को अपरिमेय लाभ प्राप्त होगा।

कुछ ही दिन हुए जब कुछ स्थानो मे स्वास्थ्योन्नति एव रोग-निवारण के लिए कुछ लोगों को बरफ पर भी नगे पाव टहलना आरंभ करने का समाचार सुना गया था, तब सुननेवालो ने इसका मजाक ही उड़ाया था।

लोग तो पहले पावों को, जिनका हमेशा से खास खयाल रखा जाता रहा है एवं जिन्हे हर समय गरम रखने का खास इंतजाम किया जाता रहा है, ठंडी हवा, खुरदरी धरती एवं शीतकाल हो तो बरफ के सपर्क मे लाने के विचारमात्र से झिझकते थे। आखिर वे क्यों न झिझकते? हमेशा से दादी जो कहती आई है कि "बेटा, पांवों को हमेशा गरम रखो" और डाक्टर साहब पावो को ठडे पानी से बचाने की सीख जो देते आये है। इस समाचार के बाद कुछ लोगों ने नंगे पांव टहलने की आजमाइश की और जाना कि नगे पांव टहलना स्वास्थ्य के लिए तो सब तरह से उपयोगी है ही, बढ़िया कसरत भी है। तभी से इस सर्वथा प्राकृतिक उपचार के सबंध में लोगो के विचारों में बड़ा परिवर्तन हुआ है।

इसी तरह धरती पर सोने का भी चलन चलेगा। कुछ दिनों-तक यह चलन नगे पांव चलने से बहुत अधिक कठोर एवं अमानुषिय समझा जायगा; पर जब लोग इसका प्रयोग कर देखेगे तब इसके रोग-निवारण के विशेष गुण से परिचित हो जायगे और यह भी जान जायंगे कि यह चाल नगे पाव चलने की तरह ही निरापद है।

सूर्य-किरणें रोग-निवारण मे बडी लाभकर सिद्ध हुई है। यदि रोगी, धूप मे टहलने के बजाय लेटकर धूप ले तो लाभ बहुत अधिक होता है। इसी तरह धरती पर लेटने पर धरती का असर भी टहलते समय से ज्यादा सीधा पडता है। धूप की तरह धरती भी शरीर मे रोग-निवारण की क्रिया प्रारभ कर देती है, पर यदि टहलने मे या और किसी कार्य मे शक्ति का व्यय हो रहा हो तो धूप और धरती से शक्ति मिलती रहने पर भी शरीर अपने शोधन का कार्य पूरी तेजी से नही कर पाता।

जो भी हो, प्रचलित विचारो का खयाल करके प्रत्येक रोगी को और खास तौर से चिकित्सालय के निवासियो को खुली धरती पर आराम करने या सोने की राय देते वक्त बहुत सोच-समझ से काम लेना चाहिए। इसके चुनाव का सारा भार रोगी पर ही छोडना चाहिए। इक्के-दुक्के आदमी, जो धरती पर सोकर लाभ उठायगे उन्हें देखकर और लोग भी उनका अनुसरण करेगे। शुरू मे एक रात जमीन पर और दूसरी रात बिछावन पर सोना काफी होगा।

जब मैंने अपने चिकित्सालय मे धरती पर सोने का चलन चलाया तो मुझे भी अनेक वहमो का सामना करना पड़ा। किसी को जमीन पर सोने का प्रयोग करने की इच्छा ही नही होती थी। तब कई लोगों ने एक साथ बडे उत्साह से धरती पर सोना आरभ किया और इससे प्राप्त लाभों से बडे प्रसन्न हुए। फिर तो उन्होने प्राय. सभी को खुली धरती पर सोने के लिए राजी कर लिया। इससे प्रत्येक को जो लाभ हुआ उसे देखकर सचमुच बडा आश्चर्य होता था।

जल के प्रयोग लोग प्रिसनीज, कनाइप, कूने आदि के समय से करते आ रहे हैं। नहाने के साथ शरीर को रगडने की क्रिया भी प्रचलित हो गई है; पर इनमे से कोई भी क्रिया पूर्णतया प्राकृतिक

विधि के अनुसार नही होती ।

नंगे रहने का प्रचार पहले-पहल रिक्ली ने किया था । वह वायु और प्रकाश-सबंधी प्राकृतिक नियमो को पूरी तरह नही समझता था और इनकी जानकारी के बगैर भी वह कुछ लोगों को नंगे रहने की राय दे देता था, पर इससे साधारण जनता मे इसका चलन नहीं हो सका ।

पर धरती की शक्ति और उसके प्रयोग पर किसी का जरा भी ध्यान नही गया था । जब मैने पहले-पहल इसकी चर्चा की तो लोगों को बडा आश्चर्य हुआ ; पर शीघ्र ही धरती की शक्ति लोगो के लिए कुतूहल का विषय बन गई और हर जगह इसकी बात बडे ध्यान से सुनी जाने लगी ।

सचमुच धरती के रोग-निवारक गुण और इससे मिलने वाले अनेक प्रकार के लाभों से बढ़कर दूसरा दिलचस्प और आवश्यक विषय है भी नही । इसलिए मै इसकी चर्चा विशेष रूप से करना चाहता हूं । पृथ्वी में इसके आदि से ही एक शक्तिशाली प्राण प्रवाहित हो रहा है जिस पर मनुष्य के बनाव-बिगाड़ का कोई असर नही पड़ सका है । यदि मनुष्य पृथ्वी के सीधे सपर्क मे आ जाय तो पृथ्वी मनुष्य को भी अपनी इस सजीव शक्ति से प्रवाहित करने को तैयार रहती है ।

हम पृथ्वी से इच्छित शक्ति प्राप्त कर सकते हैं और जो जितना ही अधिक प्राकृतिक जीवन व्यतीत करता है उसे पृथ्वी से उतनी ही अधिक शक्ति मिलती है । जब कभी मौका मिले, आदमी को धरती पर, कपड़े पहनकर ही सही, बैठना चाहिए । टहलते वक्त या लंबी यात्राओं मे खुली धरती पर बैठकर या लेटकर आराम करना चाहिए । पृथ्वी की शक्ति प्रकृत्या मनुष्य पर उसके कपड़ों के द्वारा

भी असर करती है। आप थोडी देर के लिए आराम से खुली धरती-पर सो जाइये, आप मेरे कथन का अनुभव कर लेगे।

उत्तेजित मनोदशा, निरुत्साह और शोक के क्षणो मे, हिस्टीरिया का दौरा होने पर एव शरीर मे ऐंठन चलने आदि की दशाओ अथवा अनेक प्रकार की रोगावस्थाओं मे मैने धरती पर बैठने या लेटने से लोगो को अक्सर शीघ्रता से शात होते, उनका कष्ट कटते और उन्हे रोगमुक्त होते देखा है।

पृथ्वी यदि गीली हो तो हमे इसकी चिंता करने की जरूरत नही है। ऐसी हालत मे पृथ्वी की रोगनिवारक शक्ति अधिक तेज होती है जिसकी पुष्टि इस बात से होती है कि कई लोगो को इससे सर्दी-जुकाम हो जाता है। यह शरीर की शुद्धि प्रारभ होने का प्रत्यक्ष प्रमाण है। जैसा कि अक्सर लोग समझते हैं यह किसी तरह भी डर की चीज नही है।

सारी प्रकृति मे ही रात के वक्त एक निराली शक्ति प्रवाहित होती रहती है। यदि आप रात्रि के समय जगल मे जाय तो प्रतीत होता है कि वहा ससार के मुक्त प्राण पर्यटन कर रहे हैं। लोग कहते है कि दूर्वा दिन मे नही, रात्रि को ही बढती है। इससे यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि धरती की शक्ति रात को खास तौर से शक्तिशाली होती हैं।

मैने अपने चिकित्सालय मे बराबर ऐसी कोशिश की है जिससे लोगो को धरती पर सोना अधिकाधिक सुखद प्रतीत हो। अत मे मेरे मन मे बालू के गद्दे बनवा देने का विचार उत्पन्न हुआ। साधारण धरती पर सोने के बजाय इनपर सोना ज्यादा आरामदेह होता है। ये धरती से मुलायम भी होते है।

चार से आठ इच मोटी बालू की तह सोने के लिए काफी होती

है। इसपर कोई भी पतला टाट या कपड़ा विछाया जा सकता है। इससे पृथ्वी की शक्ति प्राप्त करने मे कोई विशेष वाधा नहीं पड़ती और ओढना भी साफ रहता है। इसमे और भी कई लाभ हो सकते हैं। सिरहाने की ओर घास की ऊंची पटिया-सी वनाकर तकिये का कम लिया जा सकता है।

यदि वालू का यह विछावन खुली जगह मे लगाया जाय तो लाभ और विशेष हो, क्योकि मनुष्य के रोग-निवारण में आकाश का भी स्थायी प्रभाव पड़ता है, और यह प्रभाव रात्रि को अधिक शक्ति-पूर्ण रहता है। तारोंभरी रात में आकाश के महान् गुंवद के नीचे जव मनुष्य सोता रहता है, यह शक्ति उसके शरीर मे जीवन और बल भरती रहती है। आकाश और धरती की शक्ति मिलकर एक महान् शोधक शक्ति वन जाती है।

मौसम ठीक न होने पर यह विस्तर खुले कमरे मे या खेमे मे वनाना चाहिए।

काठ का कोई भी लवा और वडा-सा वक्स किसी कमरे मे रख दिया जा सकता है और मिट्टी और वालू भरकर सोने के काम में लाया जा सकता है।

: ८ :

सर्दी का भय

खुले मे, हवा मे और प्रकाशमय झोंपड़ी मे जमीन पर सोने और जाड़े के दिनों मे तथा खास तौर से रोग की हालत मे भी इस तरह रहने की मेरी सिफारिश ने कुछ लोगों के सामने कितने ही भयंकर

रोगो की तस्वीर खडी कर दी होगी, उनके रोंगटे खडे कर दिये होगे। वे सोचते होंगे इस तरह रहा जाय तो सर्दी, जुकाम, गठिया, मीयादी बुखार, इन्फ्लुएजा, न्यूमोनिया आदि भले-चगे को घर दवायेंगे और रोगी इस रहन-सहन की वदौलत दुनिया से ही कूच कर जायगा।

लोगो के दिलो से ठड के भय का भूत भगाने की कोशिश मै कई वार कर चुका हू। यह जानते हुए भी कि राक्षस की भाति इसके पांव चारो तरफ फैले हुए है, मै एक वार फिर इस पर एक आघातिक आघात करना चाहता हू।

मनुष्य की पाचन-प्रणाली का काम देखने से मालूम होता है कि वह ऐसे ही खाद्य-पदार्थो को अच्छी तरह पचा सकता है जिन्हे प्रकृति ने उसके लिए उपजाया है अर्थात् जिन्हे धरती विना खेती या वागवानी की मदद के अपने-आप उपजाती है और जिन्हे आदमी उनकी प्राकृतिक—विना विगडी हुई अवस्था मे (मेवे, झरवेर, फल एवं अन्य कई चीजे) स्वाद लेकर खा सकता है। अव यदि आदमी इन प्राकृतिक खाद्यो को वदली हुई दशा मे आग की मदद से खाता है या ऐसे अप्राकृतिक खाद्य खाता है जो देखने मे तो प्राकृतिक खाद्यो से थोडे-वहुत मिलते है, पर जिन्हे प्रकृति ने उसके लिए नही वनाया है, तो उसकी पाचन-प्रणाली उन्हे अशत., और सो भी कठिनाई से ही पचा पाती है या वे विल्कुल नही पचते। शरीर इन अप्राकृतिक खाद्यों का उपयोग (रक्त, पेशी, अस्थि आदि वनाने मे) पूरी तरह नही कर सकता। उनसे हमारे शरीर और मस्तिष्क को न तो समुचित रूप से वढने के लिए उपयुक्त सामान मिलता है न पूरी शक्ति और जीवन। उन खाद्यो का अवशेप आमाशय मे पडा रहकर वहा से ठोस, तरल और वायव्य रूपो मे शरीर के प्रत्येक अग और

उनके सिरोंतक पहुंच जाता है और कभी-कभी शरीर का रूप ही बिगाड़ देता है। यह शरीर-द्रव्य नहीं, विजातीय द्रव्य है और यह द्रव्य दूसरे तरीकों, सास और त्वचा द्वारा टीके और इंजेक्शन के रूप मे भी शरीर मे पहुंच सकता है।

विजातीय द्रव्य धीरे-धीरे अंगों के बीच मे स्थान बना लेता है। यह अंगों को अपनी प्रकृति के अनुसार जल्दी या देर से नुकसान पहुंचाता और उन्हे नष्ट कर देता है। विजातीय द्रव्य भीतर सड़ने भी लगता है और उससे एक प्रकार की गरमी निकलती है जो शरीर को नुकसान पहुचाने और नष्ट करने का असर रखती है। इस तरह शरीर के कभी इस अंग मे तो कभी उस अंग मे दर्द उत्पन्न होता रहता है और उनके सारे साधारण कार्यों मे व्याघात पहुचता रहता है जिससे आगे चलकर मनुष्य की अकाल-मृत्यु हो जाती है। इस जमाने के लोगों मे विजातीय द्रव्य के बनने और इकट्ठा होने की यह क्रिया अधिक तेजी से होती है, क्योंकि हम लोग भारी-भारी जूते और मोटे-मोटे कपड़े पहनते है, शरीर पर ठंडा पानी लगने मे अपने को बचाते हैं, पृथ्वी से हमारा कोई संबंध नहीं रह गया है, वायु और प्रकाश हमारे तन तक नहीं पहुंच पाते और हम गदी हवा मे सास लेते है। इन कारणों एवं प्रकृति के विरुद्ध किये गए अन्य पापों के कारण हमारी पाचन-शक्ति और जीवनी शक्ति के कार्य मे बाधा पड़ती रहती है जिससे आगे चलकर वे निकम्मी हो जाती है।

पर ज्यों ही मनुष्य अपने भारी जूतों और भारी कपड़ों को अलग कर देगा और ऐसे कपड़े इस्तेमाल करेगा जिनसे होकर पानी, प्रकाश, हवा और खास तौर से तेज ठडी हवा शरीर तक आसानी से पहुंच सके, त्यों ही प्रकृति हमारी जीवनी शक्ति को विजातीय द्रव्य को ढीला करने और बरजोरी शरीर से बाहर निकालने का लाभ-

कर कार्य करने के लिए प्रेरित करेगी । जीवनी शक्ति की इस क्रिया को स्वास्थ्यकर उभार कहते है ।

यह उभार कमजोर, दुवले और विगडे शरीर वालों मे स्वभावत. वहुत जल्द और तेजी से होता है । उन्हे प्रकृति की इस सहायता की आवश्यकता भी वहुत अधिक रहती है, क्योकि ठडे पानी, प्रकाश, वायु और ठडी जमीन के डर से और इनसे मिलने वाले लाभ से अपने को वचाये रखने की वजह से उनकी जीवनी शक्ति वहुत मद पड जाती है और उनके शरीर मे विजातीय द्रव्य वहुत अधिक मात्रा मे इकट्ठा हुआ रहता है ।

इससे सर्दी और जुकाम डेरे डाल देते है अथवा अगो (फेफडे, नाडिया आदि) की अपना विजातीय द्रव्य निकाल डालने की आतुरता के अनुरूप लाल बुखार, चेचक (वच्चो के रोग), हाफाडाफा, मीयादी बुखार, न्यूमोनिया, इन्फ्लुएजा आदि तीव्र रोग होते है । नमी, हवा और ठडक लगने के अलावा अन्य कारणो—उदाहरणार्थ, वायुमडल के तापमान मे एकाएक परिवर्तन, अत्यधिक मानसिक उत्तेजना आदि तीव्र रोग (मीयादी बुखार, हैजा आदि) हो जाते है । कभी-कभी ये रोग शरीर मे स्वय विना किसी वाहरी कारण के उत्पन्न हो जाते है ।

इन तीव्र रोगो के साथ हमेशा तीव्र ज्वर भी होता है । पहले प्राय: कुछ ठडक-सी लगती है । विजातीय द्रव्य मे उत्तेजना होने से, अणुओ के आपस मे रगड खाने से शरीर के अन्दर गरमी चढ जाती है; इसलिए रक्त शरीर के अदर की तरफ खिच जाता है, शरीर का वाहरी भाग ठडा हो जाता है और रोगी को ठडक मालूम होती है, पर जल्द ही गरमी के शरीर की त्वचा तक पहुच जाने से शरीर गरम हो जाता है, क्योकि इस समय परिचालित विजातीय द्रव्य को

शरीर त्वचा द्वारा तीव्रता से बाहर निकालने की कोशिश करता है। हाफाडाफे मे गला खास तौर से आक्रान्त हो जाता है। बढती हुई गरमी से विजातीय द्रव्य का आकार बढ जाता है और वह पेट से सिर की ओर जाते समय गले मे फंस जाता है जिससे दम घुट कर मृत्यु हो जाने का भय उत्पन्न हो जाता है।

अब यदि हम रोगी के कमरे की खिड़कियां बंद कर प्रकृति के चिकित्सा-साधनों, शुद्ध वायु और प्रकाश, को रोगी तक पहुंचने से रोकते है एवं ज्वरनिरोधक जहरीली दवाएं आदि देते हैं तो बेचारे रोगी की जीवनी शक्ति और भी कमजोर हो जाती है और गरीब रोगी प्रकृति के विरुद्ध ठानी हुई इस लड़ाई मे सदैव परास्त होता एवं गिरता है। रोगी को भयानक कष्ट और पीड़ाये सहनी पड़ती हैं। तब भी होता यही है कि प्राय: उसकी मृत्यु ही हो जाती है, कभी-कभी यह भी होता है कि इस लड़ाई मे रोग के लक्षरण चले जाते हैं, रोगी अच्छा हुआ-सा दिखाई देता है अर्थात् शरीर अपने को शुद्ध करने का प्रयास बंद कर देता है; पर कुछ ही दिन बाद शरीर अपने को विजातीय द्रव्य से मुक्त करने की और भी अधिक कठिन रीति ग्रहण करता है और एक भयानक उभार प्रस्फुटित होता है। हो सकता है कि इन्फ्लुएंजा किसी शोथनाशक दवा से प्रकट रूप से चला जाय, पर शीघ्र ही फेफड़ों मे प्रदाह आरम्भ हो जाता है। इस प्रकार औषधियों के उपयोग के कारण कभी-कभी जीवनी शक्ति ऐसी क्षीण हो जाती है कि शरीर तीव्र रोग अथवा अन्य किसी रीति से अपने विजातीय द्रव्य को निकाल फेकने मे सदा के लिए असमर्थ हो जाता है।

शरीर मे इकट्ठा विजातीय द्रव्य जब सड़ने लगता है तब जीर्ण

रोग होते है—यह सडान गरमी उत्पन्न करती है जो शरीर के[1] लिए हानिकर है। जीर्ण रोग अब खतरनाक होता जाता है, धीरे-धीरे नाडी-दौर्बल्य, यक्ष्मा (इन्फ्लुएंजा और फेफडो मे प्रदाह उत्पन्न

[1]भीतर गरमी मालूम होना जीर्ण ज्वर का लक्षण है। इस रोग मे रोगी का शरीर बाहर से ठडा रहता है, पर ज्यो-ज्यो रोग की दशा बिगडती जाती है रोगी का शरीर ऊपर से भी गरम रहने लगता है। इसीलिए पुराने जीर्ण रोगियो को अत मे तेज ज्वर रहने लगता है। ऐसी दशा मे समझना चाहिए रोगी की जीवनीशक्ति बिल्कुल क्षीण हो गई है और ज्वर तीव्र रोग के ज्वर के समान विजातीय द्रव्य को शरीर से बाहर निकालने के लिए नही बढता है वरन् इसका यह अर्थ है कि जो जीवनीशक्ति शरीर के अन्दर से ज्वर को दूर करने मे लगी हुई थी और ज्वर को बाहर जाने से रोक रही थी उसने थककर काम छोड दिया है जिसकी वजह से ज्वर शरीर के बाहर-भीतर सभी जगह बढ गया है। जीर्ण ज्वर की अतिम अवस्था के इस ज्वर से लडने के लिए भी प्राकृतिक चिकित्सा के साधनो प्रकाश, वायु, जल, मिट्टी, प्राकृतिक भोजन आदि का उपयोग सफलता के साथ किया जा सकता है।

उदाहरण के लिए सदा बहनेवाले खुले घाव को लीजिये। कभी-कभी यह कोई तेज मरहम लगाने से बन्द हो जाता है, पर ऐसा करके केवल एक ऐसे रास्ते को, जिससे शरीर का विजातीय द्रव्य धीरे-धीरे निकल रहा था, बन्द कर दिया जाता है। अब विजातीय द्रव्य शरीर के अदर की ओर चलता है और यदि इसे निकलनेका कोई दूसरा रास्ता शीघ्र न मिला तो यह शरीर को इतनी बडी हानि पहुचा सकता है कि जिससे मृत्युतक हो सकती है। किन्तु यदि विजातीय द्रव्य का बनाना ही प्राकृतिक भोजन द्वारा रोक दिया जाय एव प्रकाश, वायु, जल और धरती की शक्ति के उपयोग द्वारा शरीर की जीवनी-शक्ति और पाचन-शक्ति बढाकर विजातीय द्रव्यको मल, मूत्र एव स्वेदमार्गसे निकालने मे सहायता की जाय तो घाव का बहना अपने-आप बन्द हो जायगा और शरीर की रोग-निवारिणी शक्ति बढने से वह सूख जायगा। इस विधि से किसी प्रकार की हानि की सभावना नही है, न शरीर का ही कोई नुकसान हो सकता है।

हो जाने के कारण), कैंसर, गठिया, मधुमेह, बडे घाव सरीखे कठिन रोग उत्पन्न हो जाते है। इस समय यदि प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा रोगी की जीवनी शक्ति धैर्यपूर्वक लगे रह कर एक वार फिर न जगा दी जाय तो ये रोग रोगी को वर्षो खाट मे सड़ाकर धीरे-धीरे उसे कब्र तक पहुंचा देते है।

तीव्र रोगों मे शरीर को वहुत हानि पहुंचाते हुए भी, औपधोपचार, रोगों को दवाने मे सफल हो जाता है, पर जीर्ण रोगों को तो वह दवा भी नही पाता। वहां उसकी कुछ नही चलती। हा, चीर-फाड़ और संखिया आदि सरीखे भयंकर विपों के द्वारा जीर्ण रोग की दशा भी कभी-कभी कुछ वदल जाती है, रोग के एक-दो लक्षण दूर हो जाते हैं और शरीर के किसी विशेप अंग के रोग के लक्षण प्रकट रूपसे चले भी जाते है; लेकिन रोगी का प्रधान रोग तो वढता ही जाता है, यहां तक कि जिन चीजो के मोह के कारण वह प्रकृति-पथ से हटा था वे उसकी कोई सहायता नही कर पाती और अंत मे वह मृत्यु के कराल गाल मे जा पड़ता है।

टीके के जहर द्वारा शरीर की जीवनी शक्ति आरंभ में निकम्मी कर दी जा सकती है। फलस्वरूप जीवनी शक्ति से भरे-पूरे लड़कों के शरीर का विजातीय द्रव्य चेचक आदि वाल-रोग कहे जाने वाले जिन उपायो से निकल जाता था वे वंद हो जाते है। अव इन सीधे-सादे तीव्र रोगो के वजाय डिप्थीरिया, फेफड़ों का प्रदाह-सरीखे भयानक रोग होते हैं और नाड़ी-दौर्वल्य, यक्ष्मा, कैंसर आदि सरीखे जीर्ण रोगों की एक लंवी कतार उनके पीछे लग जाती है। कितने ही लोग यक्ष्मा, कैंसर, नाड़ी-दौर्वल्य, कंठमाला, वहरेपन को साथ लिये अपनी वैसाखी के सहारे कब्र की ओर लडखड़ाते हुए वढते दिखाई दे रहे है। इनमे से कितने ही अंधे भी हो चुके हैं और वहुतो के शरीर का

आकार विकृत हो गया है। इनमे से अनेक की यह दशा स्वास्थ्य के रक्षक कानून और औपधोपचार द्वारा विहित टीके ने की है, पर यह बात बहुत कम लोगो को मालूम है। इस सबध मे भी यही देखना है कि अधेरे मे रखे गये इस सत्य पर कब प्रकाश पडता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जुकाम एव अन्य साधारण तीव्र रोगों के लिए दी गई दवाये ही मनुष्य के लिए बडे-से-बडा खतरा उत्पन्न करती है, उसे कष्ट और सकट मे डालती हैं। यहा भी औषधोपचार प्रकृति की आवाज पर कान नही देता और प्रकृति के सदुद्देश्यो का गलत अर्थ लगाता है।

हम जितना ही आगे बढकर प्रकृति का स्वागत करेंगे, तीव्र रोगो के उद्देश्यों को समझकर उनके सहायक होगे, जितना ही हम रोगों के वास्तविक कारणो—अप्राकृतिक भोजन, शहरो और कमरो की गदी हवा—से बचेंगे और जितना ही हम अपने शरीर पर प्रकाश, वायु, शीतल जल एव धरती की शक्ति का असर होने देंगे, उतनी ही पूर्णता और शीघ्रता से हम अपने शरीर के अदर उत्पन्न गरमी के खतरे से दूर होगे और तब मल भी (नाक और फेफडे के रास्ते) अधिक शीघ्रता से और समुचित रीति से निकलने लगेगा। गुर्दे और बडी आत अपना काम ठीक-ठीक करने लगेंगी, गरमी होने पर पसीना आने लगेगा; खसरा, लाल बुखार और चेचक के रूप मे मल त्वचा के ऊपर आ जायगा तथा अनेक अन्य रूपो मे विजातीय द्रव्य शरीर से बाहर होने लगेगा। शरीर मे गरमी कम होने पर रोगी को कष्ट और पीडा कम होगी और उसे शीघ्र ही आराम का अनुभव होने लगेगा। तीव्र रोग जाने पर उसे अपने मे नवीन शक्ति आई प्रतीत होगी एव इससे उसका काया-कल्प उस यूनानी पौराणिक पक्षी की भाति हो जायगा जो अपने को भस्म करके अपनी राख से फिर पैदा हो जाता था।

तीव्र रोगों के उपचार में औषधोपचार की असफलता एवं औषधि के प्रयोग से होने वाली हानियां उन सब पर, जो डाक्टरों की तड़क-भड़क से चौंधिया नहीं गये हैं एवं जो दवाओं द्वारा रोगी पर लाये गए असर को निष्पक्ष भाव से देख सकते हैं, प्रकट हो जायंगी। इसी प्रकार तीव्र रोगों में प्राकृतिक चिकित्सा करने पर जो लाभ होता है एवं रोगों के जाने पर स्वास्थ्य में जो सुधार होता है वह कोई भी किसी प्राकृतिक चिकित्सालय में जाकर या स्वयं अनुभव करके साफ-साफ देख सकता है। तब उसे मेरे इस कथन पर भी विश्वास हो जायगा कि तीव्र रोग जरा भी खतरनाक नहीं है, वरन् वे उपचारात्मक उभार हैं जिनके द्वारा शरीर अपने को विजातीय द्रव्य से मुक्त कर लेता है।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि मीयादी बुखार, डिप्थीरिया, हैजा आदि सभी तीव्र रोग, जो अधिकतर सर्दी के कारण होते हैं और जिनसे लोग आजकल बुरी तरह डरते हैं, बिल्कुल खतरनाक नहीं है। यदि उनका समुचित उपचार किया जाय तो वे अत्यधिक लाभकारी सिद्ध होते हैं। वे मनुष्य के लिए वरदानस्वरूप हैं, आनंद और हर्ष के साथ उनका स्वागत करना चाहिए।

अनगिनत रोगियों एवं स्वयं अपने पर किये गए अनेक प्रयोगों ने मेरे इस विश्वास को कि सर्दी, जुकाम आदि रोग प्रकृति हमारे लाभ के लिए लाती है, अधिक दृढ़ कर दिया है। जो मेरी बताई उपचार-पद्धति को काम में लायेगा उसे मेरे कथन की सत्यता की प्रतीति कराने वाले ठोस प्रमाण भी मिल जायगे।

तीव्र रोग, शरीर को चलाते रहने का प्रकृति का एक साधारण उपाय है, पर वह सर्वथा आवश्यक नहीं है। यदि प्रकृति की ओर लौट चला जाय तो उससे पूरे तौर पर बचा जा सकता है। जुकाम या

अन्य कोई तीव्र रोग होने पर यदि जल्द ही उसकी प्राकृतिक चिकित्सा आरभ कर दी जाती है अर्थात् यदि रोगी प्राकृतिक स्नान करता है, कमरे की सारी खिडकिया खुली रखकर कमरे मे या बाहर खुले मे सर्दी-गरमी के अनुसार थोडी या अधिक देर तक बार-बार नगे रहकर वायु को शरीर पर लगने देता है, नगे पाव टहलकर, खुले बदन सोकर या आराम कर धरती से अपना संबंध जोडता है तो चेचक, डिप्थीरिया, मीयादी बुखार, तीव्र ज्वर, हैजा-सरीखे डरावने रोग भी कोई कष्ट नही देते और रोगी की परिचर्या मे लगे लोगो को भी रोग के उतार-चढाव के समय कोई चिता नही होती। किंतु यदि स्वस्थ दिखाई देने वाले लोग या जीर्ण रोग के रोगी अभी, तीव्र रोग होने के पहले ही, प्रकृति की ओर लौट चले अर्थात् जल, प्रकाश, वायु और धरती का समुचित उपयोग, जिसका वर्णन मैं कर चुका हू, करने लगे और प्राकृतिक भोजन करें, जिसके सबध मे मैं आगे लिखूगा, तो उन्हे जुकाम या कोई भी अन्य तीव्र रोग न होगा।

मेरे प्राकृतिक चिकित्सालय मे और इसे स्थापित करने के पहले मुझसे जिन अनगिनत रोगियो ने पूरे विश्वास के साथ चिकित्सा कराई, उन्हे चिकित्सा-काल मे न तो जुकाम हुआ और न कोई अन्य तीव्र रोग। इस प्रकार के स्वास्थ्यकर उभार भी किसी-न-किसी रूप मे अप्रीतिकर होते है। वे कम-से-कम हमारे साधारण जीवन-क्रम मे बाधक तो होते ही है। पर जिन अनेक बूढे और जवानो ने, जिन्होने बिना किसी विशेष सावधानी या क्रमागत परिवर्तन के सीधे नगे पाव टहलना शुरू कर दिया, खुले मे प्राकृतिक नहान लेने लगे, वायु और प्रकाशपूर्ण झोपडी मे सोने लगे अथवा बिल्कुल खुली जगह मे खुली धरती पर लेटने लगे और नगे रहने लगे, उनमे से किसी को भी, यद्यपि उन्होने अच्छे और बुरे मौसम मे, बरसात और धूप मे और

कभी-कभी कड़ाके की सर्दी में भी सारी चिकित्सा जारी रखी, कोई उभार नही हुआ।

इस प्रकार पूर्णतया प्रकृति की ओर लौटने से हमारी जीवनी शक्ति प्रचंड रूप से उद्दीप्त हो उठती है और वह अपनी पूरी शक्ति के साथ शरीर से विजातीय द्रव्य निकालने मे लग जाती है जिसकी प्रक्रियास्वरूप सारे शरीर मे ऐंठन-सी होती है, कभी-कभी हल्का या तेज दर्द भी होने लगता है (फोड़े भी हो जा सकते है), पर साथ-साथ शरीर के अंदर की बढ़ती हुई गरमी, जो सभी कष्टकर, उत्तेजक और थकानेवाले तीव्र रोगो का कारण होती है, तुरत कम हो जाती है और धीरे-धीरे चली जाती है। इसकी वजह से तीव ज्वर और साधारणतया जुकाम या कोई भी तीव्र रोग नही होने पाता। साधारण जीवन मे भी मनुष्य जितना ही अधिक ठंडे जल, ठंडी हवा के संपर्क मे अपने शरीर को रखता एवं उसपर मोटे कपडे और भारी जूते नही लादता तथा जितनी ही दृढता के साथ वह प्रकृति मे अपने विश्वास को बनाये रखता है उसे उतना ही मामूली और निरापद स्वास्थ्यकारक उभार होता है और यदि हल्का जुकाम-सा कोई उभार हुआ ही तो वह आसानी से चला भी जाता है, पर जब प्राकृतिक जीवन व्यतीत करते कुछ दिन हो जाते है तब तो इस प्रकार के उभार के आने की सभावना ही नही रह जाती।

यह सभी जानते है कि जो सर्दी से नही डरते या जिनके पास सर्दी से बचने के लिए काफी कपड़ा, जूता वगैरह खरीदने को पैसा नही है उन्हे या तो तीव्र रोग होते ही नही, या बहुत कम होते हैं।

क्या ठंडक के बारे मे मेरे विस्तारपूर्वक लिखे हुए विचारों को पढ़कर आपके मस्तिष्क से सर्दी का भय निकल जाने की आशा की जा सकती है? नही; मै इतना मूर्ख नही हूं कि यह सोचू भी कि

सर्दी के भय के किले को मेरे विचारों से जरा भी ठेस लगी होगी। चाहे जितने प्रमाण उपस्थित किये जाने पर भी कुछ लोगो को भय-रहित होकर मौज से हवा और ठडक के झोके नगे बदन पर सहते एव गीली धरती पर नगे पाव चलते दिखाई देने पर भी लोग तरह-तरह की आपत्तिया पेश करेगे और कहेगे : 'अरे वह तो अभी जवान है, उसका शरीर सहनशील बन गया है, उसकी काठी मजबूत है इसलिए वह यह सब कर सकता है, पर मेरे लिए यह कैसे सभव है ?' इन बहानो की फौज के बल पर ही सर्दी अपने भय के गढ को रक्षा करती है।

यदि डाक्टर अनेक रोगो से पीडित भी हो तो भी लोग उसके पास जाते है और इस विश्वास के साथ जाते है कि वह हमे रोग-मुक्त कर देगा। जो दवा दवाफरोश के यहा से आती है वह यदि जहर भी हो, अत स्वास्थ्य को नुकसान पहुचानेवाली एव नष्ट करनेवाली हो और दवा बनानेवालो की जरा-सी गलती से जान लेनेवाली साबित हो, तो भी हम आख मूदकर उसका विश्वास करते है। जब डाक्टर इन खतरनाक दवाओ के नाम सादे कागज पर लटिन भाषा मे, जिसे हम समझ नही पाते, लिखकर देता है तो उन पर हमारा विश्वास और भी बढ जाता है।

पर प्रकृति से लोग डरते है और उस प्रकृति पर विश्वास नही करते जिसकी चिकित्सा के साधन जल, प्रकाश, वायु, गरमी, सरदी आदि है जिन से ससार बना है एव चलता है और जो प्रकृति सारे प्राणियो का भला चाहती है। जब तक मनुष्य प्रकृति-पथ से नही हटा वह प्रकृति की गोद मे खुशी-खुशी खेलता रहा और प्रकृति अपनी इच्छा उसे साफ-साफ बताती रही। डाक्टर यही कोशिश करते है कि लोग प्रकृति के प्रति अपना यह अविश्वास बनाये रहे।

विश्व की उत्पत्ति शाश्वत प्रेम के भंडार से हुई है; इस भंडार से शुभ के अतिरिक्त क्या कभी कोई अशुभ या बुरी चीज प्रकट हो सकती थी ? इसलिए प्रकृति मे जल की एक बूद भी ऐसी नहीं है, कोमलतम वायु का मदतम झोका भी ऐसा नही है और न सर्दी का एक लघुतम अश ही ऐसा है जिसका निर्माण देह-धारियो के कल्याण और सुख की दृष्टि से न किया गया हो।

जब मनुष्य प्रकृति से विमुख हो गया तब वह अपने कष्टों का कारण अपने मे न खोजकर अपने से बाहर प्रकृति मे खोजने लगा। यह उसके नये आचरण के अनुरूप ही कहा जायगा। अब उसने प्रकृति को खतरों से भरी हुई, निर्दय और कठोर माना जिसके परिणामस्वरूप वह प्रकृति का अविश्वास करने लगा। इसका आगे चलकर यह फल हुआ कि प्रकृति और उसके कार्यों का वह गलत अर्थ लगाने लगा और फलस्वरूप वह प्रकृति के साधनों का दुरुपयोग करके अपने लिए कष्ट और दु.ख मोल लेने लगा। अनेक खतरनाक काम प्रकृति को गलत समझने के कारण ही किये जाते है।

प्राय: एक सदी से ज्यादा हो गया कि डाक्टरों ने जल का उपयोग उसकी स्वाभाविक अवस्था मे, अर्थात् उस अवस्था मे जिसमें अपनी नैसर्गिक प्रवृत्ति का अनुसरण करनेवाले पशु काम मे लाते हैं, रोगियों की चिकित्सा मे इस्तेमाल करने से इन्कार कर दिया है। चाहे फोड़ा सड़ जाय और रोगी मर जाय, फिर भी वे फोड़े को धोने के लिए गरम पानी का ही उपयोग करेंगे।

बहुत दिन नही हुए जब कि किसी भी ऐसे रोगी को, जिसे जोरों-का ज्वर चढा हो, चाहे वह अत्यधिक प्यास की पीड़ा से परेशान हो एव भीतर की गरमी से जला जा रहा हो, चिकित्सक पीने को ठंडा पानी नही देते थे। किसी को भी जिसका शरीर, किसी कारण से

गरम हो गया है, किसी रूप मे भी ठडा पानी पीने की इजाजत नही थी। सिपाहियों को मार्च करते समय ठडा पानी पी लेने पर सख्त सजा दी जाती थी। यदि सिपाही प्यास के मारे थककर गिर जाय तो भी इसकी परवा नही की जाती थी। वदन के गरम हो जाने या रहने पर ठडे पानी से नहाना वहुत खतरनाक समझा जाता था।

पर आज अवस्था वदल गई है। आज यदि किसी को घाव हो जाता है या कोई अग कट जाता है तो पहले ठडे पानी का ही उपयोग होता है; ज्वर के रोगी का कष्ट कम करने के लिए उसे खुशी-खुशी ठंडा पानी पिलाया जाता है; मार्च करते समय सिपाही को केवल ऐसी जगहो को छोडकर, जहा के लोग कीटाणुओ से डर गये है—यही तो लोगों के लिए आज हौआ वना हुआ है—ताजगी लाने के ठंडा पानी पिलाया जाता है।

यह सप्रमाण सिद्ध हो चुका है कि स्नान करते समय शरीर को जव पहले पानी छूता है उस समय शरीर जितना ही अधिक गरम होता है स्नान से लाभ उतना ही अधिक मिलता है। अव लोग वाष्पस्नान के वाद जव वदन से पसीना जोरो से चूता रहता है, तुरत ठडे पानी से नहाते है।

आज इसके स्पष्ट चिह्न दिखाई दे रहे है कि लोग प्रकृति की ओर लौटना चाहते है, पर ठडी हवा के वजाय लोग पहले ठडे पानी की ओर आकृष्ट हो रहे हैं। आज जगह-जगह ठडे पानी से चिकित्सा करनेवाले जल-चिकित्सालय खुल गये है और रोगी वहुतायत मे वहा चिकित्सा के लिए पहुचने लगे है।

प्रकृति निस्सदेह वहुत दयालु है, यदि कोई उनकी तरफ एक कदम भी वढता है तो वह उसे अपने हृदय से लगाने को हाथ फैला-कर दौड़ती है और हमारी भलाई के लिए अपना वरद हस्त सदा आगे

बढाये रहती है। यद्यपि ठंडे पानी का उपयोग आज उस पूर्ण विधि से नही होता जैसा कि प्रकृति चाहती है, फिर भी लोग यह जान गये है कि ठडे जल मे रोग-निवारण का गुण अत्यधिक मात्रा में मौजूद है। यदि इस ठडे पानी के द्वारा प्राप्त सफलता की तुलना औषधोपचार द्वारा प्राप्त सफलताओं, या यों कहिये कि असफलताओं, से की जाय तो निश्चय ही वह मानव-जाति को विस्मित कर देनेवाली होगी। किंतु ठंडे पानी का उपयोग एक वार मे केवल कुछ ही देर तक और सीमित रूप मे ही किया जा सकता है।

पर शुद्ध ताजी हवा मनुष्य का प्राण है। त्वचा एवं फेफड़ों द्वारा जिस मात्रा मे शुद्ध वायु मनुष्य को मिलती है ठीक उसी अनुपात मे उसका शारीरिक, मानसिक एव नैतिक स्वास्थ्य घटता-बढ़ता है।

यदि हम केवल एक क्षण के लिए भी मनुष्य को वायु से वंचित कर दे तो उसके जीवन का तत्काल अत हो जायगा। यदि हम उसके नाक और मुह खुले रखकर उसके शरीर पर किसी ऐसे पदार्थ का लेप कर दे कि वह त्वचा द्वारा सास न ले सके, तो कुछ ही घटों मे उसकी मृत्यु हो जायगी।

जल के विपरीत वायु मे रोगी हमेशा रह और घूम सकता है और इच्छा होने पर समय-समय पर वह अपने कपड़े भी उतार दे सकता है। भोजन को, जिससे मनुष्य का सारा शरीर और नाड़ियां वनी है, प्राकृतिक कर देने से शरीर मे विजातीय द्रव्य एवं रोग का वढ़ना तुरंत रुक जाता है। यदि स्वास्थ्य को वनाये रखने एवं रोगों को दूर करने के लिए वायु, ठडक, धरती की शक्ति एवं प्राकृतिक भोजन का—इस भोजन की आज के शाकाहारियों के भोजन से कोई तुलना नही है—उपयोग किया जाय तो उससे प्राप्त सफलता के सामने शीतल जल द्वारा प्राप्त सारी शानदार सफलता मात हो

जायगी; पर यह प्रयोग अनिवार्यत मेरी बताई विधि के अनुसार, जिसका वर्णन मै कर चुका हू और आगे चलकर और करूगा, होना चाहिए।

जल का प्रयोग यदि गलत तरीके से और देर तक किया जाय तो हानि हो सकती है, पर वायु से किसी हालत मे भी कोई नुकसान नही होता, उसका प्रयोग सदा लाभकर ही होता है। लेकिन तब भी लोग वायु को अविश्वास की दृष्टि से ही देखते है। आज जब हमारा शरीर विशेष रूप से गरम रहता है या जब हमारे शरीर से गरमी के मारे पसीना बहता रहता है उस समय भी हम ठडे पानी से स्नान करते नही हिचकते, ज्वर के रोगियो को भी ठडे पानी मे सुला दिया जाता है, पर क्या कोई यात्री, जो तेज रफ्तार से चलने के कारण पसीने-पसीने हो गया है, किसी खुले स्थान मे या किसी शिलाखड पर बैठकर अर्धनग्नावस्था मे (नगी छाती, नगे पाव और नगा सिर) या बिल्कुल नंगा होकर अपने शरीर पर तेजी से आती हुई ठडी हवा केवल कुछ समय के लिए लगने दे सकता है ? डिप्थीरिया या चेचक से पीड़ित किसी बालक को या न्यूमोनिया या मोयादी बुखार के तीव्र ज्वर से पीडित किसी बडे को, जो गरमी के मारे छटपटा रहा हो और मोटे भारी ओढने को फेक देना चाहता हो, जाडे के दिनो मे खुली खिडकियो वाले ठडे कमरे मे या खुले मैदान मे बिल्कुल नगा ले जाने का कोई साहस करेगा ?

ऐसे रोगी को आज कौन दुर्गंधभरी, भारी जहरीली हवा भरे कमरे मे से और ठडक के दिनो मे भी बाहर ले जाकर बाग या बन मे बनी वायु और प्रकाशवाली झोपड़ी मे सुलायेगा या यदि बहुत ठडक नही हुई तो उसे नगे ही साफ समतल भूमिपर लेटने या सोने देगा ?

केवल ऐसा करने के खयाल से ही, औरो की कौन कहे, हमारे आज के प्राकृतिक चिकित्सक और उनके अनुगामियों का दिल दहल उठेगा और वे भय के मारे काप-उठेगे, और जो खुल्लम-खुल्ला ऐसा करने को कहेगा लोग उसे सीधे-सीधे पागल करार दे देंगे। सदियों पहले पुराने जमाने मे जैसा कानून था वैसा यदि आज होता तो मेरे-ऐसे लोग जेलखाने या पागलखाने की हवा खाते होते। और ज़िस प्रकार गैलीलियो पर यह कहने के लिए कि 'सूर्य पृथ्वी के चारों ओर नही, पृथ्वी ही सूर्य के चारों ओर घूमती है', मुकदमा चलाया गया था उसी प्रकार मुझपर आज के वैज्ञानिक मुकदमा चलाते।

जो भी हो, यह तो सही ही है कि ठडी वायु भी ठंडे पानी की भाति ही गरम शरीर पर लगने पर उसे चेतनता एवं शक्ति प्रदान करती है। गरम दिन के वाद शीतल रात्रि का आगमन होता है, गरमी के मौसम के बाद जाड़े का मौसम आता है—गरमी और ठंडक के इन परिवर्तनो के पीछे प्रकृति के महान् उद्देश्य छिपे हुए हैं। किसी भी खुली जगह मे, वाग मे या अच्छा हो कि किसी जगल मे, रोगी को ले जाने पर उसे शुद्ध ताजी हवा मिलेगी, शीतल समीर उसके खुले वदन पर लगेगा, धरती उसके ताप एवं रोग को हरेगी, तीव्र रोग का रोगी शीघ्रता से स्वस्थ होगा एवं जीर्ण रोग के रोगी की उगली प्रकृति स्वय पकड़कर उसे फूलों भरे रास्ते से सुख और आनद के अप्रत्याशित ससार मे ले जायगी।

यदि हम पानी, प्रकाश, वायु और धरती की शक्ति के उस तरह के उपयोग की, जैसा कि मै रोगियो के रोग-निवारणार्थ करता हू, केवल वात भी करे तो लोग मारे डरके इसे हैवानी चिकित्सा-कह उठेंगे, जिसका तात्पर्य यह होता है कि प्राकृतिक चिकित्सा बड़ी कष्ट-साध्य एवं खतरनाक चिकित्सा है जिसके द्वारा कुछ ही लोग इसके

खतरे के बावजूद भी आकस्मिक रूप से अच्छे हो सकते हैं वरना अधिकतर लोगो को तो इसमे मरना ही होता है।

असल मे तो जल, प्रकाश और वायु से बेचारे कमजोर रोगी को वंचित रखना और मीठी, कडवी और जहरीली दवा देना ही लापरवाही, क्रूरता, कठोरता एव मूर्खता की चरम सीमा है।

प्रकृति के हाथो सौपने से अधिक मृदुता का व्यवहार रोगी के साथ और क्या किया जा सकता है? प्रकृति की चिकित्सा से अधिक शीघ्रता से रोगी को कौन स्वास्थ्य प्रदान कर सकता है?

प्रकृति की शरण मे रहने वाले रोगी के कष्ट शीघ्रता से दूर होते हैं, उसकी चिंता चली जाती है और उसे नव जीवन एव नईप्रसन्नता प्राप्त होती है। यदि रोगो का उपचार जल, प्रकाश, वायु, ठडक एव धरती की शक्ति से किया जाय तो निश्चय ही आज से बहुत कम लडके निराश माता के हृदय से एवं भग्नहृदय पिता के हाथों से छिनकर ठडी कब्रो मे सोयेंगे, दु:ख और अभाव मे लिपटी विधवाए और बच्चे भी कम दिखाई देगे तथा लुटे हुए-से, शोकमय जीवन बिताने वाले पुरुषों की संख्या भी कम हो जायगी।

मै इसका पूरा अदाजा नही कर पा रहा हू कि यदि हम अपने को वायु और धरती को पूरी तौर से सौप दें तथा प्राकृतिक भोजन[1] ग्रहण करना आरभ कर दें तो दुनिया से दु:ख और अभाव, कष्ट और नैराश्य कितना कम हो जायगे।

---

[1]यदि भोजन मे परिवर्तन किये बिना भी वायु, प्रकाश, धरती की शक्ति और प्राकृतिक स्नान का अथवा केवल वायु और प्रकाश का सहारा लिया जाय तो मनुष्य के स्वास्थ्य और सुख मे अभूतपूर्व उन्नति होती है; पर यदि साथ-साथ प्राकृतिक भोजन का, जिसके बारे मे आगे बताऊगा, उपयोग किया जाय तो यह उन्नति बहुत अधिक बढ जाती है।

पर आज भी मां बडे प्रेम से अपने बच्चे को मोटे-मोटे कपड़े पहनाती है, पैरो मे मोजे, सिर पर कंटोप और गले मे गुलूबंद बांधती है तथा अपने पति को हमेशा कोई-न-कोई कपडा बच्चे के लिए लाने को कहती रहती है। यदि बाहर ठडी तीखी वायु लोगो को अपनी ठंडक से ताजगी एवं शक्ति प्रदान करने का न्योता देती हुई बहने लगती है तो मां बडे यत्न से बच्चे को भारी वायु से भरे कमरे के अंदर ही रखती है। उसे ठंडक का डर एक क्षण के लिए भी चैन नही लेने देता। इस प्रकार अपने बच्चे के स्वास्थ्य और कुशलता के बारे मे व्यर्थ मे चिंतित होकर वह अनजान मे अपने हाथों उसकी कब्र खोदती है।

गलत भोजन के कारण शरीर मे रोगकारक द्रव्य अधिकाधिक इकट्ठा होता है और प्रकृति को वायु और धरती की शक्ति-द्वारा शरीर की जीवनी-शक्ति को उत्तेजित करके इस विजातीय द्रव्य को निकालने का मौका नही दिया जाता। यदि प्रकृति किसी प्रकार कोई मौका ढूढ निकालती है तो डाक्टर अपनी जहरीली शीशिया लिये प्रकृति के इस प्रयास को दबा देने के लिए तैयार मिलता है। तब कफन से लिपटा हुआ शरीर घर से निकलता है। ओह! इस शरीर से लोगों को कितनी आशा थी, लोग इसे कितना प्यार करते थे, मृत्यु ने इन सबपर पानी फेर दिया! मृत्यु प्राकृतिक है, इसमे कुछ भी बुराई या भद्दापन नही है, पर लोग मृतक के पीछे बुरी तरह रोते चलते है। श्मशान मे ऐसा आर्तनाद होता है कि जिसे सुनकर आदमी भयभीत हो उठता है, उसपर मुर्दनी छाने लगती है और लगता है उससे कोई बड़ा पाप हो गया है। मनुष्य के अज्ञान ने क्रूरता-पूर्वक फिर एक हत्या कर दी! पर चिता के बुझने के पहले ही चारों ओर से यह आवाज

सुनाई दे जाती है कि "ईश्वर जो कुछ करता है वह अच्छे के लिए ही करता है।"[1]

खैर, हम लोगो ने ठडे पानी का उपयोग आरभ कर दिया है और वह दिन शीघ्र ही आने वाला है जब हम लोग वायु, धरती और सही प्राकृतिक भोजन पर अपनी आस्था जमायगे। जल से अधिक ये हमारे विश्वास के अधिकारी हैं।

तब मनुष्य को नया स्वास्थ्य प्राप्त होगा, उसके जीवन मे सच्चे आनंद का प्रवेश होगा, जवानी की ताजगी उसके बुढापे तक बनी रहेगी और वह हर प्रकार से सुख का अधिकारी होगा। तब रोग और शोक, दु ख और कष्ट, अभाव और नैराश्य उसके पथ से अलग रहेगे और मृत्यु, स्वच्छ आकाश से बिजली की भाति अप्रत्याशित रूप से गिरकर, उसके बाग की नवकलियो को नष्टकर उसके ससार से आनद और प्रसन्नता को अतर्हित नही कर सकेगी।

. ६ .

मिट्टी

बाइबिल मे लिखा है, "खुदा ने धरती की धूल से आदमी का पुतला बनाया, उसके नथनो मे प्राण फूके और वह सजीव प्राणी हो गया।"

---

[1]यह समझना कि ईश्वर जिसे प्यार करता है उसके लिए रोग और कष्ट भेजता है, बहुत बडी और दु:खद भूल है। यह ईश्वर के प्यार और बुद्धिमत्ता का मजाक उडाना है। सारे दु ख और कष्ट प्रकृति-पथ से हटने और अपने जीवन को प्राकृतिक नियमो के विरुद्ध चलाने के अपराध का आवश्यक फल और दड हैं।

तो आदमी मिट्टी का ही बना है !

घाव और हर प्रकार के चर्मरोग के लिए गीली मिट्टी असली प्राकृतिक मरहम है। मिट्टी के बने शरीर की-क्षति की पूर्ति मिट्टी से ही हो जाती है।

मैने कई बार यात्रियों से सुना है कि वहशी लोग घावों और त्वचा के रोगों पर गीली मिट्टी का प्रयोग बराबर करते है और शीघ्र रोग से मुक्ति पा लेते है।

पशु भी घावो पर मिट्टी का ही प्रयोग करते हैं। हाथी के शरीर पर यदि डाली वगैरह की रगड़ से कभी घाव हो जाता है तो वह तुरंत अपनी लार से मिट्टी गीली करता है और उसे सानकर मुलायम हलुए-सी बनाकर घाव पर थोप देता है।

पशुओं के रोगों मे गीली मिट्टी का प्रयोग बराबर होता है। गाय-बैल के खुर पकने पर उन पर-लोग गीली मिट्टी बांधते या उन्हे कीचड़ मे खड़ा रखते हैं। हम अब फिर से जब प्रकृति के नियमों के अनुसार रहने लगेंगे, प्रकृति की आवाज पर कान देने लगेंगे, तब हमे गीली मिट्टी को अपनाना ही होगा। यदि हमने इसे अपना लिया तो समझ लीजिये हमने एक बड़ी सिद्धि प्राप्त कर ली।

मिट्टी का प्रयोग करने वालों को किसी प्रकार के घाव, उसके प्रदाह, सूजन तथा ज्वर से कभी कोई खतरा नही हुआ, न उसके डर से वे आतंकित ही होते है। यदि मिट्टी का प्रयोग किया जाय तो चीर-फाड़ की जरूरत ही न रहे, न उनसे किसी को कष्ट ही उठाना पड़े। हर प्रकार के घाव और चर्मरोग मिट्टी के प्रयोग से कम-से-कम समय में बिना किसी कष्ट अथवा दर्द के अच्छे होते है। सर्वथा प्राकृतिक गीली मिट्टी की पुलटिस के गुण अनत हैं। घाव, फोड़ा-फुसी और चर्मरोग तो इसके प्रयोग से यो ही अच्छे हो जाते

हैं। युद्ध मे भी मिट्टी की पुलटिस विशेप उपयोगी हो सकती है।

शरीर पर किसी तरह की चोट लग जाय, घाव हो जाय, कट जाय, वर्छी-भाले से लग जाय, जल जाय, गोली वगैरह लग जाय, सारा शरीर फूल जाय, फोडा-फुसी, दाद, खाज-उकवत हो जाय, सूजन आ जाय, बिच्छू-वर्रं या साप डस ले, जानवर काट खाय, रक्त मे जहर फैल जाय, घाव दूषित हो जाय, नाक-मुह पर फफोले पड़ जाय, सेहुआ हो जाय, सिर मे रूसी पड जाय, कोढ हो जाय, हड्डी टूट जाय, तो रोग के स्थान पर मिट्टी गीली करके या नदी-नाले की गीली चिकनी मिट्टी बाधनी चाहिए

मिट्टी बाधते ही शीतलता आती है, आराम का अनुभव होता है और लाभ तत्काल होता है जिसे देखकर लोगो को बड़ा आश्चर्य होता है। मिट्टी की महिमा ऐसी ही है, पर कितने लोग है जो इस महिमा से परिचित है ?

मिट्टी की पुलटिस के लिए, जिसे मिट्टी की पट्टी भी कह सकते है, गीली-से-गीली मिट्टी (नदी-नाले का कीचड) लेनी चाहिए और उसे सीधे घाव पर (गहरा हो तो घाव के अदर भी) रखना चाहिए, फिर ऊपर से कपडा बाध देना चाहिए कि मिट्टी इधर-उधर न सरके। घाव पर कपड़ा रखने के वाद उस पर मिट्टी रख कर घाव और मिट्टी का सीधा सबध होने से बचाने की कोशिश कभी न करनी चाहिए।

लोगो को मिट्टी का यह प्रयोग आवश्यकता से अधिक सीधा और सरल प्रतीत होता है। उनका चिंतित, अस्थिर मस्तिष्क बडे-बडे वैज्ञानिक अनुसधानो के वल पर जटिल मशीनो की सहायता से शमनात्मक मरहम वनाने की कोशिश करता है।

मिट्टी की साधारण पुलटिस, आदमी को विना खतरे मे डाले, घाव को भर देती है, वडी आसानी से अच्छा कर देती है। मरहम

अकसर बहुत हानि पहुंचाते है। मिट्टी के प्रयोग से कई लोग इसलिए डरते है कि कही मिट्टी गंदी हुई तो खून मे विष न पहुंच जाय; पर जहा कूडा-करकट फेका जाता हो या गंदगी गाड़ी जाती हो वहां की मिट्टी कोई लगायगा ही क्यों ?

शराव, मांस आदि अनेक अप्राकृतिक खाद्यों द्वारा शरीर मे पहुंचने वाली गंदगी के बारे मे, जिसके कारण अनेक रोग उत्पन्न होते हैं और जो घावों को खतरनाक बना देती है, आज कोई नही सोचता। शरीर मे भरे विप से कोई नही डरता, लोग डरते है उन विपों से जो वाहर से शरीर मे अनजाने पहुंच सकते है, गो कि इनसे डरने की जरा भी जरूरत नही है। मिट्टी द्वारा शरीर मे विप पहुंचने की तो जरा भी आशंका नही है।

घाव पर से मिट्टी की पट्टी जब हटाई जाती है तो अकसर उसके साथ वदबूदार तरल पदार्थ निकलता है। मिट्टी इसे घाव के चारों तरफ से खीचकर निकाल लाती है। इससे यह आसानी से समझा जा सकता है कि मिट्टी घाव को और उसके चारो ओर की जगह को दूषित पदार्थ से मुक्त रखती है और इसीलिए मिट्टी के प्रयोग से घाव शीघ्र और आसानी से अच्छे होते है।

घाव मे मिट्टी द्वारा विप पहुंचने का कोई डर नही है। यदि मिट्टी द्वारा कुछ गदगी घाव मे पहुंच जायगी तो मिट्टी उस गंदगी को तुरंत सोखकर नप्ट कर देगी।

कुछ लोग मिट्टी में खाद-गोवर मिले होने की शंका करते हैं, पर यह तो सभी जानते है कि देहाती घाव पर सीधे गोवर रख देते हैं। उनका घाव विना विपाक्त हुए ठीक हो जाता है, इसलिए यदि मिट्टी की पुलटिस मे गोवर हो भी तो किसी प्रकार डरने की जरूरत नही है।

'रोगो के कीटाणु पृथ्वी पर भरे पडे हैं', आज के विज्ञान के इस कथन पर जरा भी ठडे दिल से विचार किये वगैर लोग इतने घवरा गये है कि गीली मिट्टी के प्रयोग की वात करना ही एक साहस का काम हो गया है। इसके प्रचार पर पुलिस रोक लगा सकती है, पर हमें इन पक्षपातपूर्ण रूढिवादी विचारो से डरने की जरूरत नही है।

यह कहने की जरूरत नही कि मैने अनगिनत वार मिट्टी का प्रयोग किया है और प्रत्येक वार फल आशातीत हुआ है। नुकसान तो कभी किसी को पहुचा ही नही, न एक का भी रक्त विपाक्त हुआ।

वहशी और पशु अपनी नैसर्गिक प्रवृत्ति द्वारा प्रेरित होकर अपने घावो पर मिट्टी का प्रयोग कर उन्हे अच्छा कर लेते है। नैसर्गिक प्रवृत्ति किसीको कुराह नही ले जा सकती। हम विना किसी सशय के इसके इशारे पर चल सकते है, हने कभी कोई हानि नही होगी।

यदि घाव वड़ा हो तो हर प्रकार से प्राकृतिक जीवन व्यतीत करने की (मास, मदिरा, वीडी, सिगरेट आदि छोडने की) आवश्यकता होती है, यह प्रयोग द्वारा सिद्ध हो चुका है।

मिट्टी की पुलटिस और इसके अनेक प्रकार के प्रयोगों के वारे मे कहना अभी थोड़ा वाकी रह गया है।

मै यह पहले ही वता चुका हू कि मिट्टी मे घुलाने और चूसने की शक्ति है। वह विजातीय द्रव्य को घुलाकर चूस लेती है।

यह वरावर देखा गया है कि लोग विना पहले की जानकारी के डक मारने पर या साप के डस लेने पर नैसर्गिक प्रवृत्ति द्वारा प्रेरित होकर मिट्टी का प्रयोग करते है।

एक वार जव ईसामसीह कही जा रहे थे तो उन्होने रास्ते मे एक ऐसा आदमी देखा जो जन्म से अधा था।

जब उन्हे उसके वारे मे ज्ञात हुआ तो उन्होंने जमीन पर थूक-कर मिट्टी सानी और अंधे की आंखों पर लगा दी।

और कहा, "सैलम तालाव पर जा और अपनी आखें धो।" यह सुनकर वह गया, आंखें धोई और देखता वापस लौटा।

धरती मे जो आश्चर्यजनक रोगनाशक गुण है और उनके कारण मिट्टी की पुलटिस को भी विशेष स्थान प्राप्त हो गया। मिट्टी के प्रयोग से कितने स्थानीय रोग इस प्रकार चले जाते है जैसे उन पर जादू कर दिया गया हो। यह प्रकृति की ही शक्ति है जिससे ये आश्चर्यजनक कार्य संपन्न होते है।

कोई किसी भी रोग का रोगी क्यों न हो, सामान्यतया उसके सारे शरीर की चिकित्सा जल, प्रकाश, वायु तथा प्राकृतिक भोजन-द्वारा होनी अत्यतावश्यक है। इसी एक उपाय द्वारा स्थायी स्वास्थ्य की प्राप्ति होगी। पर स्थानीय चिकित्सा के भी वहुत से लाभ हैं। यदि तुरत लाभ प्राप्त करना हो तो रोगी अंग की चिकित्सा कभी-कभी अत्यंतावश्यक हो जाती है, और इसके लिए वस्तुतः प्राकृतिक साधन मिट्टी से वढ़कर दूसरा ज्यादा पुरअसर उपाय नही है।

अब तक ऐसे अवसरों पर जल का प्रयोग होता आया है। रोग के स्थान पर लोग भीगे कपड़े की पट्टी वांधकर गरमी लाने के लिए ऊपर से ऊनी कपड़ा वांधते है; पर मिट्टी की पुलटिस अधिक प्राकृतिक है और अधिक लाभदायक भी; क्योकि मिट्टी पानी ज्यादा सोखती है और जल्द सूखती भी नही। इसके अलावा घुलाने और जज्व करने का मिट्टी में अपना निजी गुण भी है।

प्रिसनीज साहव[1] के वताये पेडू पर गीले कपड़े की पट्टी वांधने

---

[1]प्रिसनीज साहव जस्ट के पहले हुए थे। ये रोगो को मिटाने के लिए पानी का प्रयोग भीगी पट्टियों के रूप मे करते थे।—अनुवादक

तथा और भी जितने प्रकार के गीली पट्टी के प्रयोग है वे मिट्टी की पुलटिस के प्रयोग की तुलना मे नगण्य है और वह दिन दूर नही है जब लोग उनके बजाय मिट्टी की पट्टी का ही उपयोग करेगे।

मिट्टी की पट्टी भी प्रिसनीज साहब की बताई पट्टियो की तरह ही बांधी जाती है। अतर केवल यह है कि जल की जगह गीली मिट्टी का प्रयोग होता है। जहा तक बन सके मिट्टी ढीली रखनी चाहिए, पर इतनी ढीली नही कि रखने पर बहने लगे।

मिट्टी की पट्टी बनाने के लिए गीली मिट्टी या नदी-नाले का कीचड़ लेकर छाती, आख, गले के चारो ओर और गरदन, गाल, पैर, पिडली, पजे, हाथ, जननेद्रिय, मूत्राशय, तिल्ली और जिगर के स्थान, रीढ की हड्डी आदि जहा भी रोग हो फैला देनी चाहिए और फिर उस पर कोई ऊनी या सूती मोटा कपड़ा रखकर बाध देना चाहिए ताकि मिट्टी अपने स्थान पर बनी रहे। ऊपर वाले कपडे के एक सिरे पर एक डोरी लगी रहे तो बाधने से सहूलियत होगी।

सोचने-समझने वाला कोई भी आदमी आसानी से जान लेगा कि किसी विशेष स्थान पर मिट्टी की पुलटिस कैसे बाधी जा सकती सकती है। समझना केवल यही रहता है कि गीली मिट्टी अपने स्थान पर कैसे टिकी रखी जा सकेगी।

बाधने की पट्टी सूती या ऊनी कोई भी हो सकती है। पानी की पट्टी या गद्दी मे ऊपर से ऊनी पट्टी बाधने की जैसी जरूरत होती है वैसी मिट्टी की पट्टी मे नही, क्योकि मिट्टी अपने आप गरम हो जाती है, पर जो रोगी कमजोर हो, जिनके शरीर मे गरमी कम हो, उनके लिए ऊनी पट्टी का प्रयोग बहुत अच्छा है।

मिट्टी की पुलटिस वह बनी बनाई दवा है जिसका कोई भी रोग क्यो न हो, किसी तरह का दर्द क्यो न हो, तुरत उपयोग कर

जब उन्हें उसके बारे मे ज्ञात हुआ तो उन्होंने जमीन पर थूक-कर मिट्टी सानी और अंधे की आंखों पर लगा दी।

और कहा, "सैलम तालाब पर जा और अपनी आंखें धो।" यह सुनकर वह गया, आखें धोई और देखता वापस लौटा।

धरती मे जो आश्चर्यजनक रोगनाशक गुण है और उनके कारण मिट्टी की पुलटिस को भी विशेष स्थान प्राप्त हो गया। मिट्टी के प्रयोग से कितने स्थानीय रोग इस प्रकार चले जाते हैं जैसे उन पर जादू कर दिया गया हो। यह प्रकृति की ही शक्ति है जिससे ये आश्चर्यजनक कार्य संपन्न होते है।

कोई किसी भी रोग का रोगी क्यों न हो, सामान्यतया उसके सारे शरीर की चिकित्सा जल, प्रकाश, वायु तथा प्राकृतिक भोजन-द्वारा होनी अत्यंतावश्यक है। इसी एक उपाय द्वारा स्थायी स्वास्थ्य की प्राप्ति होगी। पर स्थानीय चिकित्सा के भी बहुत से लाभ हैं। यदि तुरंत लाभ प्राप्त करना हो तो रोगी अंग की चिकित्सा कभी-कभी अत्यंतावश्यक हो जाती है, और इसके लिए वस्तुतः प्राकृतिक साधन मिट्टी से बढकर दूसरा ज्यादा पुरअसर उपाय नही है।

अब तक ऐसे अवसरों पर जल का प्रयोग होता आया है। रोग के स्थान पर लोग भीगे कपड़े की पट्टी बांधकर गरमी लाने के लिए ऊपर से ऊनी कपड़ा बांधते है; पर मिट्टी की पुलटिस अधिक प्राकृतिक है और अधिक लाभदायक भी; क्योंकि मिट्टी पानी ज्यादा सोखती है और जल्द सूखती भी नहीं। इसके अलावा घुलाने और जज्ब करने का मिट्टी में अपना निजी गुण भी है।

प्रिसनीज साहब[1] के बताये पेड़ू पर गीले कपड़े की पट्टी बांधने

---

[1]प्रिसनीज साहब जस्ट के पहले हुए थे। ये रोगों को मिटाने के लिए पानी का प्रयोग भीगी पट्टियो के रूप में करते थे।—अनुवादक

तथा और भी जितने प्रकार के गीली पट्टी के प्रयोग हैं वे मिट्टी की पुलटिस के प्रयोग की तुलना मे नगण्य है और वह दिन दूर नही है जब लोग उनके बजाय मिट्टी की पट्टी का ही उपयोग करेंगे।

मिट्टी की पट्टी भी प्रिसनीज साहब की बताई पट्टियो की तरह ही बाधी जाती है। अतर केवल यह है कि जल की जगह गीली मिट्टी का प्रयोग होता है। जहा तक बन सके मिट्टी ढीली रखनी चाहिए, पर इतनी ढीली नही कि रखने पर बहने लगे।

मिट्टी की पट्टी बनाने के लिए गीली मिट्टी या नदी-नाले का कीचड लेकर छाती, आख, गले के चारो ओर और गरदन, गाल, पैर, पिडली, पजे, हाथ, जननेद्रिय, मूत्राशय, तिल्ली और जिगर के स्थान, रीढ की हड्डी आदि जहा भी रोग हो फैला देनी चाहिए और फिर उस पर कोई ऊनी या सूती मोटा कपड़ा रखकर बाध देना चाहिए ताकि मिट्टी अपने स्थान पर बनी रहे। ऊपर वाले कपड़े के एक सिरे पर एक डोरी लगी रहे तो बाधने से सहूलियत होगी।

सोचने-समझने वाला कोई भी आदमी आसानी से जान लेगा कि किसी विशेष स्थान पर मिट्टी की पुलटिस कैसे बाधी जा सकती सकती है। समझना केवल यही रहता है कि गीली मिट्टी अपने स्थान पर कैसे टिकी रखी जा सकेगी।

बांधने की पट्टी सूती या ऊनी कोई भी हो सकती है। पानी की पट्टी या गद्दी मे ऊपर से ऊनी पट्टी बाधने की जैसी जरूरत होती है वैसी मिट्टी की पट्टी मे नही, क्योंकि मिट्टी अपने आप गरम हो जाती है, पर जो रोगी कमजोर हो, जिनके शरीर मे गरमी कम हो, उनके लिए ऊनी पट्टी का प्रयोग बहुत अच्छा है।

मिट्टी की पुलटिस वह बनी बनाई दवा है जिसका कोई भी रोग क्यों न हो, किसी तरह का दर्द क्यों न हो, तुरंत उपयोग कर

सकते है। सदा अभीष्ट फल प्राप्त होगा। कितने ही रोगों मे तत्क्षण आराम पहुचेगा। रोग कड़ा हो तो मिट्टी की पुलटिस देर तक रखी रहनी चाहिए। सर्वरोगहारी मिट्टी रोगो की एक ही औषधि है।

रोग शरीर के वाहर हो या भीतर, मिट्टी की पट्टी गरमी को खींचती है। यदि रोग छाती पर है तो मिट्टी की पट्टी छाती पर, मूत्राशय और तिल्ली के रोगों मे इनके स्थान मे पेट के ऊपर, डिप्थीरिया के रोग मे गले के चारों ओर तथा और भी रोगों मे भी इसी तरह रखनी चाहिए।

सभी रोग पेट की गड़वड़ी के कारण पैदा होते है, अतः पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी रखना सभी रोगो मे लाभदायक सावित होगा। ऐसे रोगों मे जिनमे कोई खास स्थान ग्रस्त नही होता—जैसे नाड़ी-दौर्वल्य, शोकातुर होना, आदि रोग जो सारे शरीर के रोग कहे जा सकते हैं—पेडू पर मिट्टी की पट्टी रखना लाभकारी है।

पेडू पर मिट्टी की पट्टी रखने से ज्वर तुरत कम होता है। अतः इसका उपयोग मीयादी बुखार, लाल बुखार, मोतीझरा, कफज्वर आदि-से नये रोगों मे और किसी भी कारण से गिरे स्वास्थ्य मे अवश्य करना चाहिए।

मिट्टी की पट्टी पेडू पर घंटों पड़ी रह सकती है, अतः यह कटिस्नान की वनिस्वत, जो एक वार मे केवल कुछ मिनटो के लिए ही लिया जाता है, पेट से ज्यादा गरमी खीचती है। पर क्योंकि मिट्टी की पट्टी के वाद पेडू को साफ करने के लिए उसे धोना ही पड़ता है, अतः मिट्टी की पट्टी के वाद वहुत थोडे समय का एक कटिस्नान हमेशा ले लेना चाहिए। नहान यदि न भी लिया जाय तो भी कोई हरज नहीं।

मिट्टी की पट्टी उतारने के वाद उस पर हाथ रखने से मालूम हो

जायगा कि मिट्टी की पट्टी पेड़ू या फ़ोडे की कितनी गरमी खीचती है।

सारे वदन मे धूप लेनी हो तो मिट्टी पोतने के बाद धूप मे लेटकर हम अपने वदन पर अहसान करेगे। इस प्रकार शरीर मे धूप लगने से चमडी काली नही होगी, न जलेगी। धूप-नहान लेते वक्त यदि केवल मिट्टी-मिला पानी ही शरीर पर चुपड लिया जाय तो वह जलने से वचेगा।

मिट्टी की पट्टी आवश्यकतानुसार घटो रखी रह सकती है और दिन मे कई बार बदली भी जा सकती है। रोग कड़ा हो तो पट्टी शुरू मे जल्दी-जल्दी वदलना चाहिए। सोते समय रात को मिट्टी की पट्टी वाधी जा सकती है और तकलीफ न होती हो तो पट्टी रात भर वधी रह सकती है। जब पट्टी वहुत गरम हो जाय तो उसे उतारकर दूसरी लगा देनी चाहिए।

जहा आदमी रहता है वहा की मिट्टी जैसी भी हो, पट्टी वनाने के लिए उपयोगी होती है। चिकनी मिट्टी आसानी से चिपकती है और इससे लाभ भी कुछ विशेष होता है। अगर मिले तो चिकनी मिट्टी का ही उपयोग करना चाहिए।

सूजन, फेफडे, गले और कठनलिका, आख, नाक के रोग, गठिया, वात-रोग, रूसी, चर्मरोग, पेट के और जननेद्रिय-सवधी रोग, मूत्राशय और यकृत-सवधी रोग, नसो की पीडा, हर प्रकार के दर्द, सिरदर्द, दात का दर्द आदि जैसे अनगिनत रोगो मे, जो आये-दिन होते रहते है, मिट्टी की पट्टी का सहारा विश्वासपूर्वक लिया जा सकता है।

दर्द का तो मिट्टी निश्चय और निरापद इलाज है, क्योकि दर्द के कारण विजातीय द्रव्य को मिट्टी की पुलटिस खीच लेती है और दर्द हमेशा के लिए चला जाता है। फोडे, फुसी, सूजन वगैरह के लिए

जिन अप्राकृतिक औषधियों का उपयोग किया जाता है वे रोग को अच्छा करने के साथ ही विप को शरीर के अंदर पहुंचाती है और इस प्रकार घातक सिद्ध होती है।

दर्द मिटानेवाली दवा का उपयोग कर दांतसाज दांत को ही खतम कर देता है। ऐसी दवाओं से वचना चाहिए। अगर दांत का दर्द विना दांत खोये (उखड़वाये) चला जाय तो फिर उस लाभ का क्या कहना।

अगर एक वार मिट्टी रखने से दर्द न चला जाय तो उसे तव तक वदलते रहना चाहिए जव तक इच्छित लाभ प्राप्त न हो जाय।

गरदन पर मिट्टी की पट्टी वाधने से सिर-दर्द में विशेप लाभ होता है।

विजली गिर जाने पर या सांप का विप चढ़ जाने पर या किसी प्रकार के घातक रोग से एकाएक आक्रांत हो जाने पर आदमियो को सिर वाहर रखकर समूचा जमीन मे गाड़ दिया गया है। कभी-कभी कोई खास अंग, विशेप तौर पर हाथ-पाव ही गाड़े गये है। इससे रोगी जल्द अच्छा हो गया और वच गया है। आदमी को समूचा या उसका कोई विशेप अंग गाड़ते वक्त ऋतु की उपयुक्तता पर ध्यान रखना चाहिए। हैजे के उग्र रोगी तथा मीयादी बुखार के रोगी को गाड़ना श्रेप्ठतर साधन है। जिस मिट्टी मे रोगी गाड़ा जाय वह वहुत खुश्क न होनी चाहिए।

शरीर के जिस अग की चिकित्सा मिट्टी की पुलटिस से की जाती है अथवा सारा शरीर या शरीर का जो अंग मिट्टी मे गाड़ा जाता है उसे मिट्टी शक्तिशाली और तरोताजा वना देती है, यह देखकर मिट्टी का महान् उपचारात्मक गुण स्पप्ट हो जाता है। जिनकी किसी कारणवश एकाएक मृत्यु हो गई है वे मिट्टी मे गाड़ देने से पुनर्जीवित

हो गये है।

सूर्य के प्रकाश मे शरीर को वालू मे गाड़ने की भी सिफारिश की जा सकती है। सूर्य वालू को गरम कर देता है, अत इस क्रिया का लाभ वढ जाता है।

हमेशा मिट्टी की ठडी पुलटिस का ही प्रयोग करना चाहिए, उसे अप्राकृतिक तरीके से आग पर कभी गरम न करना चाहिए। गरम पानी पीकर देखिये। तुरंत मालूम हो जायगा कि उसमे न तो ताजगी है न शक्तिप्रदायक गुण। इस तरह पुलटिस को जव आग पर गरम कर देते है तो पुलटिस मे लगा पानी और मिट्टी दोनो की रोगनाशक और शक्तिदायक शक्ति नष्ट हो जाती है। गुनगुने गरम या खूव गरम पानी के प्रयोग से भी विजातीय द्रव्य को घुलाया जा सकता है और रोग से कथित मुक्ति पाई जा सकती है। इस रीति से शरीर कमजोर हो जाता है और उसे वडी क्षति पहुंचती है, यहां तक कि हानि का पल्ला लाभ से वहुत भारी पडता है। इसमे तो कोई सदेह नही कि हानि की प्रतीति तुरत नही होती, पर वह लगड़ाती हुई धीरे-धीरे आती है और कुछ देर वाद पहुच ही जाती है।

गरम पानी या गरम पुलटिस के प्रयोग के तुरत वाद ठडे जल के स्नान, फुहारे आदि का प्रयोगकर हम गरम प्रयोग से हुई क्षति को मिटा नही सकते।

इसी तरह की हानि गरम वाष्प के स्नान से भी होती है।

मिट्टी अथवा कीचड़ लगाने से त्वचा वहुत अच्छी तरह साफ होती है। शरीर पर वरावर मिट्टी लगाकर रगडकर धोते रहने से त्वचा पूर्णत. स्वच्छ होने के साथ-साथ मुलायम और चिकनी हो जाती है।

इस विलक्षण औषधि मिट्टी से रोग जिस तरह आसानी और

आराम से तथा जितने निश्चित रूप से जाते है उसके लिए मिट्टी के प्रयोग की लाख-लाख प्रशंसा करनी चाहिए और इसका जोरदार प्रचार होना चाहिए। मिट्टी की पुलटिस बनाकर उसका प्रयोग करने की विधि की अब तक उपेक्षा (केवल फादर कनाइप कभी-कभी मिट्टी की पुलटिस की राय देते थे) ही की जा रही है। मैंने बहुत पहले ही मिट्टी के प्रति अपने विश्वास की घोषणा की थी कि मिट्टी का भविष्य महान् है और इसका घर-घर प्रचार हो जायगा। जहां जब जरूरत होगी, यह मिलेगी और आशातीत लाभ प्रदान करेगी। इसके प्रयोग से जो फल निकले हैं उन सबने मेरे विश्वास की पुष्टि की है।

मिट्टी की पुलटिस और मिट्टी की पट्टी के प्रयोग से आश्चर्यजनक रीति से रोगमुक्त हुए लोगों की रिपोर्ट बराबर आ रही है। सभी लोग इन प्रयोगो की जोरदार शब्दों मे प्रशसा करते हैं। बहुतों ने मुझे यह भी लिखा है कि वे मेरे विचारों का हृदय से प्रचार कर रहे हैं।

इस प्राचीन तथा सीधी और सरल प्राकृतिक औषधि को इसके योग्य सम्मान और पुरस्कार मिले, यही मेरी अभिलाषा है। तब प्रकृति की सब से बड़ी औषधि पर मनुष्य-जाति का पूर्ण अधिकार हो जायगा।

: १० :

प्राकृतिक आहार

हजारों वरस से विज्ञान इस वात का पता लगाने की कोशिश कर रहा है कि मानव-देह के पोषण के लिए किन चीजो की आवश्यकता है—इंसान की सही खूराक क्या है। जीवन-विज्ञान, रसायन-शास्त्र, शरीर-शास्त्र, ततु-विज्ञान (हिस्टॉलोजी), मानव-विज्ञान और विज्ञान की दूसरी शाखाओ मे इस गरज से छानवीन की जा रही है।

पर एक हजार साल की खोज का नतीजा क्या रहा? एक वहुत वडे और प्रसिद्ध प्रोफेसर का कहना है कि सच्चा विज्ञान-सम्मत आहार आज भी हमारे लिए अनहोनी वस्तु है। सैकड़ों साल तक सिर मारते रहने पर भी विज्ञान अभी यह नही जान पाया है कि मनुष्य को क्या खाना और क्या पीना चाहिए। इस विफलता के कारण वह मानते है कि विज्ञान मे इस काम की योग्यता ही नही है, पर दुर्भाग्यवश दुनिया आज भी उसकी इस अयोग्यता की कायल नही है।

विज्ञान तो अभी उन वातो को भी नही जान पाया है जिन्हे आदि-युग के मनुष्यो ने विना किसी अध्ययन या अनुसंधान के जान लिया था। वह गलत-से-गलत और अति अनर्थकारी सिद्धातो की घोषणा करता जा रहा है और कभी अपनी गलती को देखता-समझता नही।

अपने समय के महाविद्वानो के विपय मे हम वाईवलके इस वचन को दुहरा सकते है कि "अपने आपको बुद्धिमान् कहते हुए वे मूर्ख बन गये।"

जो आदमी सच्चे ज्ञान के लिए प्रकृति की पुस्तक के पन्ने उलटता है और यों सुखी और स्वस्थ रह कर जीने के लिए जो कुछ उसे जानना चाहिए उसे सीधे-सादे ढग से जान लेता है उसे उन लोगों के प्रयास पर हँसी आती है जो सदा अध्ययन, अनुसंधान और प्रयोगों मे तन-मन से लगे रहते है, पर जिनकी हर खोज का फल कोई बेतुका असगत सिद्धात मात्र होता है।

इन वैज्ञानिक अनुसधानो के वावजूद जो वात सचमुच मनुष्य के सुख-स्वास्थ्य की वृद्धि और उसका कल्याण करने वाली है वह दिन-दिन उसकी आखो से ओझल होती जा रही है। पर जो आदमी फिर से प्रकृति के आदेश का अनुसरण करता है उसके वताये हुऐ रास्ते पर चलता है, वह देखता है कि सव पेड़-पौधे और पशु-पक्षी वस्तुत. प्रकृति के आश्रय मे रहते हैं उन्हे रोग और दुःख-दैन्य नही सताते। उसको इस वात का दृढ़ विश्वास हो जाता है कि मै स्वास्थ्य और आत्मकल्याण के सही रास्ते पर हू। सत्-असत् की जिस उलझन और बेचैनी मे आज की दुनिया थपेड़े और गोते खा रही है वे उसे छू भी नही पाती। भले-बुरे, हितकर-अहितकर के क्षुद्र विवाद को वह दूर से चित्त के पूर्ण समाधान और प्रसन्नता के साथ देखता है। सही रास्ते पर होने का अटल विश्वास स्वयं ही सुख-स्वास्थ्य देनेवाली वहुत बडी शक्ति है।

मनुष्य का प्राकृतिक आहार क्या है, यह आज एक उलझा हुआ मसला हो गया है और इससे हमारे सही रास्ते से वहक जाने का खतरा पैदा हो गया है। कहा जाता है कि हमारे शरीर को अल्व्यूमेन, नाइट्रोजन, पोषक नमक आदि की अनिवार्य आवश्यकता है।

फिर भी इतना हम जरूर जानते है कि हमारी सच्ची खूराक वही है जो अपने प्राकृतिक रूप मे हमारी जीभ को रुचती है और

हमारी नैसर्गिक प्रवृत्ति जिसके ग्रहण के लिए हमे प्रेरित करती है। हमारी खूराक मे किन चीजो का होना जरूरी है और जो कुछ हम खाते है वह किस तरह पचकर रक्त-मांस बनता है, इस विपय मे पक्के तौर पर हम कुछ भी नही जानते। यह हमारे लिए अधिकाश प्रकृति का एक रहस्य है और सदा रहेगा।

हमारा आहार क्या होना चाहिए और हमारे शरीर के सम्यक् पोपण के लिए किन तत्त्वो की आवश्यकता होती है, इसके विषय मे विज्ञान ने जो 'सिद्धात' हमारे सामने रखे है उनसे अधिक बेतुकी बातें इनसानी दिमाग से अब तक नही उपजी। यही कारण है कि ये 'सिद्धात' रोज बदलते रहते हैं।

अत. इस मामले मे हमे खास तौर से दृढ रहना चाहिए और केवल प्रकृति को अपने जीवन-पथ का प्रदर्शक मानना, केवल उसी की आवाज का अनुसरण करना चाहिए।

चिडिया का बच्चा जब घोसले से बाहर निकलकर पहली बार बाहर की दुनिया के दर्शन करता है तो क्या उसके मन मे क्षणभर भी इसकी उलझन होती है कि उसे अपनी भूख किस चीज से बुझानी चाहिए ? नैसर्गिक प्रवृत्ति उसे राह बताती है और वह बिना किसी परेशानी के अपनी खूराक पा जाता है।

हिरन का बच्चा घास खाता है, गिलहरी का बच्चा मीगीवाले फलो की तलाश करता है और लोमडी का बच्चा जनमते ही चूहों या अन्य जानवरो का पीछा करने लगता है।

जानवर जन्म से ही जहरीले पौधो और दूसरी हानिकर चीजो से परहेज करने लगता है।

मनुष्य जब प्रकृति के आदेश का अचूक अनुसरण करता था, जब केवल नैसर्गिक प्रवृत्ति और रुचि खूराक के पहचानने मे उसकी पथ-

प्रदर्शिका थी, उस आदि युग मे उसने वनस्पतिजगत् की सबसे सुदर और उत्तम वस्तु—फल को, अपने आहार के लिए चुना था। वह घास तो संभवतः चर न सकता था, और छोटे-मोटे जानवरों को पकड़कर उनका मांस नोचना उसने शायद पसंद न किया हो।

बाइबिल कहती है—"और खुदा ने कहा, देखो मैने हर एक बीजधारी वनस्पति को, जो सारी धरती पर व्याप्त है और हर एक पेड़ को जिसमे बीज उपजाने वाला फल है, तुम्हे दिया। वह तुम्हारी खूराक होगी।"

'बीजधारी वनस्पति,' और 'बीज उपजाने वाले वृक्ष' का यहां विशेषरूप से उल्लेख हुआ है। भाव यह है कि फल उपजाने वाले पेड़ मनुष्य का आहार बनाये गए। पृथ्वी पर रहने वाले पशु-पक्षियों को, उसके कथनानुसार, 'हर एक हरे पौधे' का आहार दिया गया।

इस उक्ति से हम यह अनुमान तो कर ही नही सकते कि पेड़ खुद ही इनसान की खूराक बनने के लिए पैदा किये गए।

दुनिया के जिस-जिस हिस्से मे इंसान रहा, प्रकृति उसके लिए इफरात से फल-मेवे पैदा करती रही, मनुष्य को उनके उपजाने मे हाथ-पांव नही हिलाने पड़ते थे। हां, सब कही एक ही तरह के फल नही पैदा होते थे, देश और जलवायु के भेद से वे भिन्न-भिन्न प्रकार के होते थे।

भूमडल के इस भाग (यूरोप) मे मनुष्य की पहली खूराक जगल के बेर, मकोय, करौदे-जैसे फल थे। पीछे वह पेड़ों मे लगने वाले फल भी खाने लगा और अखरोट, बादाम-जैसे मीगीवाले फल या मग्ज उसकी खास खूराक हो गये। हर चीज जो कच्ची, शुद्ध, अवि-

कृत दशा मे उसे अच्छी लगती थी उसके भोजन की वस्तु वन गई[1]।

मीगी या गिरीवाले फल साल के वडे भाग मे उपलब्ध हो सकते है। प्रकृति ने ऐसा प्रवंध कर दिया है कि डालियो से जमीन पर या सूखे पत्तो मे झडने के वाद वे लवे अरसे तक अच्छी हालत मे रह सकें।

जवतक जंगलो की 'सफाई' नही हुई थी और प्रकृति अवाधित रूप मे अपना काम कर सकती थी तवतक मग्जवाले और गूदेदार फल हर जगह इतनी इफरात से उपजते थे कि मनुष्य को उनसे पूरा भोजन मिल जाय। हमारी परम ममतामयी माता प्रकृति ने अपनी सभी सतानो के लिए उनकी सृष्टि के समय से ही भोजन का प्रवंध कर रखा है, और अपने लाड़ले वेटे मनुष्य के सामने तो उसने शाहाना दस्तरख्वान ही विछा दिया है।[2]

इस रीति से हम आसानी से और पक्के तौर पर जान सकते है कि हमारी सही खूराक क्या है, पर हम सही रास्ते से फिर वहक न जाय, इसकी सावधानी हमे रखनी होगी। कारण यह है कि ज्यो ही हम उस रास्ते पर लगते है चारो ओर से हम पर एतराज उठाये जाने लगते है। ऐसे आदमी तो सदा रहते ही है जो यह समझते है कि प्रकृति और उसकी वाणी की वनिस्वत वे हमारी ज्यादा अच्छी

---

[1]जो चीजें कच्ची प्राकृतिक दशा मे हमारी जीभ को रुचती है वे ही हमारा प्राकृतिक भोजन मानी जा सकती है, क्योकि वनावटी तौर पर सेक-वघारकर उवकाई पैदा करने वाली सर्वथा अप्राकृतिक चीजें भी जवान को अच्छी लगने-वाली वनाई जा सकती है। रसना को धोखा देना आसान है।

[2]यह सुविदित वात है कि पुराने जमाने के जर्मन शुरू-शुरू मे केवल जगली फल खाकर रहते थे। शिकार करना उन्होने वहुत पीछे सीखा। पर उसके वाद भी फल-मेवे अरसे तक उनका मुख्य भोजन वने रहे।

रहनुमाई कर सकते है।

लोग जब पहली बार सुनते है कि मनुष्य की सही खूराक क्या है तब आम तौर से बहुत सशंक हो उठते है और सोचते है कि हमे आज से ही यह आहार आरम्भ कर देना चाहिए। लोगों के आज के खान-पान पर शंका उठाकर हम उनके हृदय के अति कोमल और मर्म-स्थान को स्पर्श करते है। अतः आहार के विषय मे अपने विचार मै बहुत ही संयत भाषा मे प्रकट करूंगा और कोई ऐसी बात न कहूंगा जिसे सुनकर कोई आदमी हिम्मत हार जाय।

हर आदमी को सबसे पहले पानी, हवा, सूरज की रोशनी और मिट्टी की ओर इस पुस्तक में बताये हुए रास्ते से लौटना चाहिए। जो कोई तुरत इस क्रम के साथ पूरा प्राकृतिक आहार न चला सके वह कम-से-कम इतना तो कर ही सकता है कि अपने भोजन को जितना सादा बना सकता हो, बना ले और खासकर हानिकर और नफासत की चीजो से परहेज करे।

इन सबसे ज्यादा जरूरी है मांस-भक्षण के विषय मे अपनी जीभ को काबू मे रखना। नमक लगाकर या धुएं मे सुखाकर रखा हुआ मांस अति हानिकारक है। सूअर का मांस और कीमा भरकर बनाई हुई चीजे तो सबसे खराब होती है।

मांस के बदले मे हम दूध अधिक मात्रा मे ले सकते है। दूध कच्चा, बिना उबाले ही पीना या दही, मट्ठे, पनीर आदि के रूप मे खाना चाहिए।

अंडा या अंडे के योग से बनी हुई चीजें खाने की सलाह मै किसी को नही दे सकता।

आलू, फलीदार तरकारियां (सेम, कोच इत्यादि), दाल और रोटी मनुष्य की प्राकृतिक खूराक नही है, यह बात तो बार-बार

कही जा चुकी है। अत: इन चीजो को थोडा ही खाना चाहिए।

आलू और फलीदार तरकारियो के वदले हमे हरी तरकारिया और सलाद पसद करना चाहिए। ताजा सव्जियो मे से कुछ को—हरी मटर, गाजर, शलजम, पालक आदि को—कच्चा ही खाना चाहिए।

रोटी-दाल, फलीदार तरकारिया और आलू देह से मशक्कत करनेवाले मजदूर के लिए कम हानिकारक हैं, पर जो लोग शारीरिक श्रम नही करते, कलम और दिमाग से रोटी कमाते है उन्हे चाहिए तो इन चीजो से पूरा परहेज रखना, पर यह न हो सके तो इन्हे थोड़ी मात्रा मे ही खाना चाहिए। वीमारी के दिनो मे तो यह परहेज खास तौर से जरूरी है।

ताजा फल और मग्जवाले मेवे सदा हमारे दस्तरख्वान पर होने चाहिए।

केक, मिठाइया, चाकलेट, कहवा, खोया और उससे वने हुए मिष्टान्न आदि हमेशा हाजमे को खराव करते है और इस कारण स्वास्थ्य को विगाड़नेवाले है।

मद्य तो वह भयावह पिशाच है जो आज सारी दुनिया मे हर वक्त ऊधम मचा रहा है और सर्वत्र मानव-जाति के सुख-स्वास्थ्य की बलि ले रहा है। अत. उचित तो यह है कि आदमी इस विलासिता से विल्कुल ही दूर रहे, पर यह न निभ सके तो वहुत ही थोडो, दवा की मात्रा मे ले।

तंबाकू भी हमारा दगा देनेवाला दोस्त है, और उससे होशियार रहने की चेतावनी मै आपको पूरे जोर से देता हू।

चाय, कहवा और उत्तेजना पैदा करनेवालो दूसरी चीजे भी सर्वत्र मनुष्य के स्वास्थ्य को नष्ट कर रही है। ये चीजे धीरे-धीरे

काम करनेवाले जहर है इसलिए इनकी बुराई जल्दी हमारी पकड मे नही आती।

कहवे से मै अपने पाठकों को खास तौर से सावधान कर देना चाहता हूं, क्योकि आज उसका रिवाज आम है। उसके बजाय हम जौ या गेहूं के सत्त का कहवा इस्तेमाल कर सकते हैं।

पर हमारा प्राकृतिक पेय तो एकमात्र जल है। वन का हिरन केवल पानी पीता है।

वैसे तो पीने की सभी चीजे हमे कम-से-कम लेनी चाहिए। शोरबा और तरल खाद्य बार-बार या अधिक मात्रा मे हमारे सामने नही रखे जाने चाहिए। प्रकृति हमे ठोस चीजे खाने का आदेश करती है जिन्हे चबाना जरूरी होता है।

पर अगर पेय और पतले खाद्यों से हमे बचना है तो यह जरूरी है कि हमारे भोजन मे अधिक मिर्च-मसाला न डाला जाय। नमक और सभी मसाले स्वास्थ्य के शत्रु है और कितने ही कठिन रोग (पेट का कैंसर इत्यादि) इनके कारण होते है।

मै भोजन के मामले मे लोगों की कमजोरियों का काफी लिहाज कर चुका। वे फिलहाल इतना भी कर दे कि अपनी खूराक सादी बनाना शुरू कर दे, प्रकृति-विरुद्ध आहार मे कुछ कमी कर दे, फल-मेवों मे स्वाद लेने लगे और वे उनकी मेज या दस्तरख्वान पर रखे जाने लगें तो हमे उन्हे अपनी राह जाने देना चाहिए।

पर अब हमे उनको राह बतलाना है जो प्रकृति का पूर्ण अनुसरण करना चाहते है, जो फल को अपने भोजन मे गौण नहीं, बल्कि मुख्य स्थान देना चाहते है या केवल फल खाकर रहना चाहते हैं। मै जानता हू कि आज भी ऐसे लोगों की तादाद कितनी बड़ी है जो बड़ी प्रसन्नता और उत्साह के साथ इस रास्ते पर चलने को उद्यत

होगे। प्रकृति की ओर लौटने का वक्त आया ही चाहता है।

हम प्रकृति को अविकल और अबाधित रूप मे अपना काम करने दे तो हमारी नैसर्गिक प्रवृत्ति, हमारी रुचि, हमारी अतरात्मा हमे केवल रसदार और अखरोट, बादाम-जैसे मीगी या गिरीवाले फलो को अपनी खूराक बनाने को प्रेरित करेगे।

मीगीदार फलो के अतिरिक्त जगल मे, प्रकृति के उद्यान मे उपजने वाले रसीले गूदेदार फल मनुष्य के लिए सबसे अच्छी खूराक है। इनके सहायक रूप मे हमारे बागो मे पैदा होने वाले लुभावने सुस्वादु फल सेव, नाशपाती, अगूर, खूबानी, शफतालू, बेर आदि है। गरम देशो के फल बादाम, छुआरे, खजूर, अजीर, सतरा, खरबूजा, अमरूद, शरीफा, चीकू, केला आदि भी हम इस सूची मे शामिल कर सकते है।

मनुष्य, देख, सृष्टिकर्ता ने तेरे लिए कैसा सुदर दस्तर-ख्वान सजा दिया है।

फल वह भोजन है जो भगवान् हमे देता है, जिसे उसका सूर्य पकाता है। काश, अब भी मनुष्य इस दिव्य देन को समझता और उसके अनादर के पाप से बचता! इस नेमत को अस्वीकार करके उसने प्रकृति और परमेश्वर के प्रति भारी अपराध किया है और और इसका दड अनिवार्य है—रोग और सैकड़ो प्रकार के दुःख-दैन्य।

किसी फलदार दरख्त को सुदर फलो से लदा देखकर क्या आप का दिल खुशी से खिल नही उठता! इस दिव्य दृश्य मे क्या आपको प्रकृति की आवाज सुनाई नही देती!

पकाये हुए आलू, रोटी, दाल, जानवरो के मुर्दे इत्यादि मन और आखो को मोह लेने वाले ताजा फलो के सामने क्या चीज है? ये पकाये हुए खाद्य मुर्दा और स्वाद-रहित होते है। बिना नमक-मसाला

मिलाये जीभ को वे रुचते ही नही। फलों मे स्वाद है, दिव्य गंध है, ताजगी और जीवन है।

अप्राकृतिक, पकाये हुए खाद्य हमारी आंतों के लिए कष्टप्रद वोझ होते है और हमारे तन-मन को शिथिल, वेदम और जीवन को भार वना देते है ; पर फल हमारी दुर्बल, रोग-जर्जर देह मे फिर से शुद्ध रक्त का मंचार करते है, उसे प्राण और वल देते है।

मनुष्य रोग-नाशक दवाओं की तलाश मे क्यो हैरान होता है ? फल मे उसे रोग-मुक्त कर देने का गुण है। प्रकृति यह वनी-वनायी दवा उसे दे रही है। फल मीठे, स्वादिष्ट होते है और उसके दुःख-दर्द की अचूक औषधि है। फल देवताओं का भोग है, उसमे अमृत वसता है। मनुष्य क्यो प्रकृति के दिये हुए इस संजीवन रस, इस अतिमधुर महौपधि को ठुकराता और जहर-से कड़वे काढ़े, अर्क पकाता-उतारता और अपने-आपको उन्हे घूटने के लिए मजवूर करता है जिसका फल उसे केवल अवर्णनीय दुःख-दर्द के रूप मे मिलता है ?

गोलिया, अर्क और काढे रोग को दूर नही करते।

"तू व्यर्थ ही वहुत-सी दवाएं इस्तेमाल करेगा, क्योकि तू रोग-मुक्त न होगा।"

इंसान इस वात को नही जानता कि गोलिया, अर्क और मरहम उसकी तदुरुस्ती को नष्ट कर रहे है और यह वड़े दु.ख की वात है। दुर्भाग्यवश जहर का असर अकसर हमे धोखा देनेवाला होता है।

प्रकृति फल को अपने आप उत्पन्न करती है, या यो कहिये कि उसे उपजाने मे इंसान का ज्यादा अहसान नही लेती ; पर अप्राकृतिक आहार को पैदा करने के लिए मनुष्य को खेतों और वागों मे लगातार कड़ी मेहनत करनी पड़ती है ; अपना वर्तमान आहार गेहूं, चावल, दाल, आलू आदि उपजाने के लिए हमें सख्त मेहनत और परेशानी

उठानी पडती है, प्रकृति को इन्हे पैदा करने के लिए मजबूर करना पडता है।

ऐसी दशा मे हमारे लिए यह समझना और वताना कठिन है कि मनुष्य अपने प्राकृतिक भोजन फल का अनादर क्यो करता है। उसकी यह मूर्खता हमारे लिए बहुत बड़ी पहेली है जिसे बूझने मे हमारी बुद्धि असमर्थ है।

फल को भी हमे उसी दशा मे खाना चाहिए जिसमे प्रकृति उसे पैदा करती है। उसे सुखाने, पकाने या बिगड़ने से बचाने के लिए नमक-मसाला लगाने से स्वभावत. उसका गुण घट जाता है। फलो का रस निकालना भी प्रकृति का अनुसरण नही है, क्योकि कृत्रिम विधि से निकाला हुआ रस उतना स्वास्थ्यकर, उतना पोषक नही होता जितना वह फल स्वाभाविक दशा मे उसके साथ सेवन करने से होता है।

अतः मनुष्य की खूराक मे गिरीवाले फल सब से ज्यादा जरूरी चीज माने जाने चाहिए। इस वर्ग के फल ही मनुष्य को गरमी और शक्ति देते है।

जिसके दात इस लायक न हो कि वादाम, पिस्ता, अखरोट आदि अच्छी तरह चबाकर खा सके उसे उन्हे घिस या पीस कर खाना चाहिए। उन्हे घिसने की कले आजकल विसातखाने की हर अच्छी दुकान मे मिल सकती है।

मै आम तौर पर 'हेजेलनट'[1] को ज्यादा पसद करता हूं, क्यो कि वह कुदरती तौर पर पैदा हो सकता है; पर अखरोट और दूसरे मग्ज भी वहुत अच्छे रहेगे। छुहारे, खजूर, अखरोट, वादाम आदि को साथ खाना वहुत मजेदार होता है।

---

[1]एक तरह का अखरोट।

कच्चा, विना उवाला हुआ दूध भी हमारी भोज्य वस्तुओ की सूची मे शामिल किया जा सकता है। मक्खन और नरम पनीर या दही भी लिया जा सकता है। हो सके तो दोनो को विना नमक मिलाये ही खाये। शुद्ध फलाहार एकवारगी चलाना सवके लिए कठिन है, विरले ही इस व्रत को निभा सकते है। इसलिए हमे साधारण आहार और फलाहार के वीच की मजिल दूध, मक्खन और रोटी के सहारे विता लेने की सलाह देनी होगी; इनके साथ थोडी हरी तरकारी लेना भी जरूरी हो सकता है। स्तन्यपायी पशु (गाय, घोड़ा इत्यादि) का वच्चा भी जव शिशु के आहार से वयस्क प्राणी के आहार पर आने लगता है तो कुछ दिन उसके साथ-साथ मा का दूध भी पीता रहता है। जान पड़ता है सभ्य स्त्री-पुरुष के विगडे हुए पेट को भी इसी तरह धीरे-धीरे फिर शुद्ध प्राकृतिक आहार पर ले जाना होगा। इस संक्रमण के लिए दूध मुझे सवसे अच्छा मालूम होता है।

थोड़ी-सी रोटी भी, त्याज्य पर कुछ काल के लिए अनिवार्य मानकर खायी जा सकती है। रोटी चोकर-समेत गेहू के आटे की हो तो ज्यादा अच्छी होगी। हमारी मामूली डवल रोटी वहुत ही दुष्पाच्य होती है, इसलिए मै उसे खाने की सलाह नही दे सकता। मक्खन, रोटी और अजीर वहुत ही अच्छा भोजन है।

उवले फल, मुरव्वे आदि के रूप मे सुरक्षित फल और रसभरी आदि ताजा फल भी दही के साथ खाना वहुत अच्छा भोजन है। ऐसी चीजे फलाहार आरभ करनेवालो के लिए खास तौर से अच्छी है। इससे उनका भोजन एकवारगी वहुत सादा न हो जायगा।

जो लोग पकाये हुए भोजन को एकवारगी न छोड़ सके वे एक वक्त घी, मक्खन या नारियल के तेल मे पकायी हुई तरकारिया और दो-चार आलू भी ले सकते हैं।

इस भोजन-व्यवस्था मे सव तरह के गिरीदार और गूदेदार फल, दूध, मक्खन, रोटी और उवाली हुई सब्जियो के लेने की छूट के साथ फलाहार आसानी से चलाया जा सकता है। इस व्यवस्था मे आपके घरवालो को स्वाद और स्वास्थ्य दोनों का सुख मिलेगा। इस प्रकार के भोजन-सुधार की आज सख्त जरूरत है। ऊची श्रेणीवालो को इस सुधार मे अगुआ होना चाहिए। इस तरह की खूराक को उन्हे रोगी के पथ्य रूप मे नही, वल्कि नित्य के सामान्य भोजन के रूप मे अपनाना चाहिए।

गरीव श्रेणी के लोग, पैसेवालो को गोश्त, शराव, मिठाई, मलाई, सिगरेट, चाय आदि खाते-पीते देखते है तो इसे पैसे का सुख समझते है और उनके अदर भी उसके भोग की लालसा भडक उठती है, पर इस सुख की स्पर्धा करके वे धनिक-वर्ग के विशेप रोगो और दुर्दशा मे भी हिस्सा वटाने की कोशिश कर रहे है। अत. ऊपर के दरजेवालो को चाहिए कि वे इन अप्राकृतिक पदार्थो के भोजन और सारी घातक विलासिताओ के सुख का त्याग कर नीची श्रेणीवालो के सामने एक अच्छी मिसाल पेश करे।

पर सच्चे अर्थ मे प्रकृति की ओर लौटना गरीव-अमीर, छोटे-वडे सभी के लिए सही रास्ता है, वशर्ते कि वे चाहते हो कि उन्हे फिर स्वास्थ्य और सुखकर जीवन मिले। प्रकृति वर्ग या दरजे का भेद करना नही जानती। पर आज की स्थिति मे प्रकृति की ओर सामान्य रूप से लौटने के क्रम, अतिशय अप्राकृतिक रहन-सहन के वाद प्रकृति के पुन. अनुसरण की तथोक्त प्रतिक्रिया का प्रारभ ऊची श्रेणी मे ही होना चाहिए।

जंगवार्न में[1] मैने देखा कि समुचित सहायता और परिवर्तनकाल के लिए बताया हुआ खाना मिलने पर लोग ऊपर बताये हुए फलाहार को कितनी जल्दी और कितने उत्साह के साथ अपनाने को तैयार हो जाते है। यही नही, मै ऐसे कुटुबो को जानता हू जिन्होंने अपने घर मे इस तरह के भोजन की व्यवस्था की है और इस सुधार से सुखी है। इन परिवारों के स्त्री-पुरुष अपने नये भोजन, उसके गुण और स्वाद की, जब कभी इसकी चर्चा चलाइये, दिल खोलकर सराहना करते है।

अवश्य ही हम चाहें तो अपने दस्तरख्वान को और भी सादा बना सकते हैं। गिरीदार फल और अपने देश मे होनेवाले ऋतुफल ही हमारी सबसे अच्छी खूराक और हमारे पोषण के लिए यथेष्ट हैं। कुछ रोगों मे अधिक सादा आहार आवश्यक भी होता है।

बहुतेरे पैसे की कमी के कारण भी अधिक सादा रहन-सहन रखने को मजबूर होगे ; पर मैने जान-बूझकर इस विषय मे जितनी छूट दी जा सकती थी, दे दी है।

इस निरामिष भोजन को, जिसमे फल मुख्य पदार्थ होता है, हम 'नव्य निरामिषवाद' कह सकते हैं।

प्रकृति ने जैसे मास को मनुष्य का भोजन नही बनाया, वैसे ही गेहू, जौ, चावल, दाल, साग, तरकारिया, आलू आदि को भी उसका आहार बनने के लिए नही पैदा किया है। कारण यह कि इन चीजों को हम कच्चा और बिना नमक-मसाला मिलाये खायें तो ये हमे अच्छी नही लगती।

मनुष्य मास, मद्य, सिगरेट, तंबाकू आदि त्याग दे तो उसके दिल

---

[1] मूल पुस्तक के लेखक एडोल्फ जस्ट द्वारा जर्मनी के हार्ट्ज स्थान में स्थापित आरोग्याश्रम।

पर से एक भारी बोझ उतर जाता है; उसे जान पड़ता है जैसे वह प्रकृति के प्रति कोई भारी अपराध कर रहा था, जिससे अब छुटकारा पा गया हो। पर आप फल, रोटी, दाल, हरी और फलीदार तरकारियां खायं और दूध-दही और गिरीवाले फल न खायं तो इस भोजन मे चिकनाई का अभाव होगा जो मानव-शरीर के धारण-पोषण के लिए बहुत ही जरूरी है। यह चीज आपको अखरोट, बादाम जैसे फलो के मग्जो मे मिल सकती है। ऐसे आहार पर रहनेवाले आम तौर से पीले और दुबले दिखाई देते हैं, मुर्दादिल और अ सर कमजोर दिल-दिमाग के और जरा से कष्ट-चिंता से घबरा जानेवाले होते हैं, और शिकायते भी उन्हे अक्सर हुआ करती है। उनकी देह मे न गरमी होती है और न शक्ति।

पहले के निरामिषभोजियों के स्वास्थ्य के बारे मे हमारे अनुभव बहुत ही खेदजनक हैं। उनमे बहुतेरे पीले, रक्तहीन, सूखी खाल और दुबली देहवाले मिलते है। अतः पुराने संप्रदाय के निरामिषभोजियों की बुद्धि-विवेक की आवाज सुननी चाहिए।

यह बात देखी गई है कि कुछ आदमी निरामिषाहार की पुरानी पद्धति के अप्राकृतिक आहार के दोष को दूसरो की अपेक्षा अधिक सह सकते हैं, और उसके कुपरिणाम सबमे समान रूप से नही प्रकट होते।

[1]अक्सर यह कहा जाता है कि हमारी गोशाला मे पालित गायें रोगी होती हैं, इसलिए हमे दूध नही पीना चाहिए। इस तर्क के अनुसार तो हमारे बच्चों को मा का दूध भी, बिना उबाले नहीं पीना चाहिए; क्योंकि स्त्रिया तो और भी अधिक रोगिणी होती हैं। पर हम देखते हैं कि जो बच्चे मा के दूध से वंचित रहते हैं उनकी देह पनपती नही। अवश्य ही चरागाह मे चरने वाली तंदुरुस्त गायो का दूध रोगी गाय के दूध से बहुत अधिक पोषक और गुणकारी होता है।

फिर भी गिरीदार फलो के आहार के विरुद्ध जो कुछ भी कहा जाता है वह एकबारगी गलत है।

कहा जाता है कि गिरियों मे तेल होता है इसलिए मनुष्य के लिए उसे पचाना कठिन होता है। ऐसा कहनेवाले यह सोचने का कष्ट नही करते कि यह कथन प्रकृति पर कितना बडा लाछन है, मानों उसने अपनी सर्वश्रेष्ठ कृति के लिए अयुक्त और अपाच्य आहार उत्पन्न किया।

प्रकृति ने गिरीदार फल गिलहरी और मनुष्य दोनों के लिए पैदा किया है। इस नन्हे से प्राणी की, जो इस डाल से उस डाल पर कूदता-उछलता रहता है, चुस्ती-फुर्ती देखकर क्या आप यह सोच सकते हैं कि वह न पचनेवाली खूराक पर जी रहा है।

जो निरामिषभोजी गिरियो के आहार पर उपर्युक्त आक्षेप करते है उन्हे मैं यह सलाह देना चाहता हूं कि वे कुछ दिन दाल, तरकारी, रोटी और आलू के बदले केवल मग्ज, पिस्ता-बादाम, अखरोट, चिलगोजा आदि खाकर रहने की कोशिश करे। कुछ ही दिनों में वे देखेंगे कि उनकी मंद जठराग्नि तीक्ष्ण हो गई है और उनका पाचन-संस्थान अधिक मुस्तैदी से अपना काम करने लगा है।

बैल को केवल घास और हाथी को धान या चावल के आहार से जो प्रभूत बल प्राप्त होता है वह अक्सर इस बात की दलील मे पेश किया जाता है कि मनुष्य भी केवल साग, भाजी, रोटी, दाल और फल खाकर स्वस्थ-सबल रह सकता है। यह दलील देनेवाले निरामिषभोजियो का ध्यान मैं इस बात की ओर खीचना चाहता हूं कि शेर और व्हेल मछली मास के आहार से भी तो ऐसा ही प्रचड बल प्राप्त करते हैं। प्राणीमात्र केवल उस आहार से स्वस्थ रहते और पुष्ट होते हैं जिसकी ओर प्रकृति उनकी नैसर्गिक प्रवृत्ति,

स्वाद, रुचि और अतरात्मा के द्वारा उन्हे प्रेरित करती है और उनके अगो की वनावट जिसकी प्राप्ति, भक्षण और पाचन के अनुकूल है। लोमडी मास और बैल घास खाकर पुष्टि-वल प्राप्त करता है। उन्हे गिरीदार फलों की गिजा दी जाय तो दोनो का स्वास्थ्य-वल गिर जायगा। गुबरैले का आहार गोवर है, पर दुनिया मे और भी कोई प्राणी है जो इस आहार पर जी सके ?

इसलिए अगर बैल घास खाकर वलवान् और सशक्त वना रहता है तो इससे यह साबित नही होता कि मनुष्य हरी और फलीदार तरकारिया या फल और रोटी खाकर स्वस्थ और सुखी रह सकता है। दूसरी ओर जब गिरीदार फल उसकी खास खूराक होते है तब उसका तन-मन अधिक सवल-सशक्त होता है। कारण यह कि यह चीज कच्ची हालत मे उसकी जीभ को अच्छी लगती है और यह इस बात का सबूत है कि प्रकृति ने यही आहार उसको दिया है। वह वर्ष के वडे भाग मे यह भोजन उसके लिए प्रस्तुत भी रखती है।

यह बात वार-वार पुराने और हाल के जमाने मे भी कही गई है कि प्रकृति ने मास नही, वल्कि वनस्पति को मनुष्य का आहार बनाया है, पर इस बात पर शायद ही किसी ने जोर दिया हो कि प्रकृति की योजना यह नही है कि आदमी साग-सब्जी, सेम-आलू और दाल-रोटी खाकर रहे, वल्कि यह है कि वह कच्चे और अपने-आप पके हुए फल खाय। इस वात की तो अव तक खास तौर से उपेक्षा की गई है कि प्रकृति ने फलो की गिरियो को ही उसकी खास खूराक बनाया है।

एक अग्रेज डाक्टर स्व० डेसमूर ने सबसे पहले प्रकाश्य रूप से हमारे वर्तमान विना चिकनाई के निरामिष भोजन मे हमारे स्वास्थ्य

के लिए जो खतरा है उसकी ओर हमारा ध्यान खींचा और बताया कि गिरीदार फल अखरोट, बादाम, चिलगोजा आदि—ही मनुष्य का मुख्य भोजन है। हमे इसके लिए उसका उपकार मानना चाहिए।

पर डेंसमूर पर भी विज्ञान का जादू बुरी तरह सवार था। इस कारण उसकी पद्धति मे अनेक दोप रह गये। उसने वैज्ञानिक प्रमाणों, खासकर आंतों की बनावट से इस बात को साबित कर दिया कि मनुष्य की सही खुराक गिरीवाला फल ही है; पर वैज्ञानिक प्रमाणों का कोई मूल्य नहीं। हमारी चिकित्सा-प्रणाली की सारी बेतुकी बाते वैज्ञानिक प्रमाणों से सही साबित कर दी गई हैं। विज्ञान की विधि से हम हर चीज को सही या गलत साबित कर सकते है। जिस विज्ञान का आधार प्रकृति नही है, और फलतः जो आधार-रहित है, उसका उपयोग इस रीति से किया जा सकता है। अतः डेसमूर के सिद्धांतो का गलत होना वैज्ञानिक रीति से सिद्ध किया जा चुका है। ध्यान देने की बात यह है कि डेंसमूर के वैज्ञानिक प्रमाण साधारण जनों को गूदे और गिरीदार फलों के मनुष्य का प्राकृतिक आहार होने का विश्वास न दिला सके और न उन्हे इस खूराक की ओर खीच सके। इसका कारण शायद यह हो कि डेसमूर भी पहले विज्ञान के नही, बल्कि दूसरे रास्तों से ही इस नतीजे पर पहुंचा।

प्रकृति और उसके नियम अटल, अपरिवर्तनीय है, वे सृष्टि के आदि से प्रलयपर्यन्त ज्यों-के-त्यों रहेगे। अतः मानव-जाति ने अपने-आप पके हुए फलों और खासकर गिरीवाले फलों को फिर अपना मुख्य भोजन न बनाया तो वह कभी सच्चे अर्थ मे स्वस्थ, सबल और सुखी नही होने की।

इसके उत्तर मे निश्चय ही यह बात कही जायगी कि बिना

फलाहारी बनाये लोगों के रोग अच्छे किये गए हैं और वे स्वस्थ, सबल भी रहे है, पर बात यह है कि जो लोग प्रकृति के सभी नियमों का फिर पूरा-पूरा पालन करेंगे उन्हे वह जिस स्वास्थ्य, बल और सुख का दान करेगी और रोगों को भगाने मे इससे जो चमत्कारिक सफलता प्राप्त होगी, आज की स्थिति में हम उसकी तनिक भी कल्पना नही कर सकते।

प्रस्तुत पुस्तक के आरंभ मे ही मैने इसे दिखाने की कोशिश की है कि हवा और रोशनी के बारे मे लोग प्रकृति से जो शका रखते हैं वह कितनी खतरनाक और समझ मे न आने वाली बात है। प्रकृति उन्हे जो आहार देती है उसकी उपयुक्तता का विश्वास न करना भी वैसी ही हानिकर और हमारी अकल मे न आनेवाली बात है। क्या यह प्रकट सत्य नही है कि हर एक जानदार, जब वह प्रकृति की दी हुई खूराक पर रहता है तब स्वस्थ, सुदर, सबल और सुखी होता है। हिरन घास चरकर और शेर मास खाकर स्वस्थ-सबल रहता है।

यह भी मशहूर बात है कि ओरग-ऊटान[1], जिसकी आते और पाचन का काम करने वाले अग मनुष्य से इतने मिलते है कि पहचानने मे धोखा हो सकता है, केवल कच्चे फल खाकर रहता है; फिर भी इतना बलवान् होता है कि 'गरम देशो के जगलो का दैत्य' कहा जाता है। बहुतो का विश्वास है कि केवल फल के आहार से मनुष्य को पूरा बल नही मिलेगा, पर आज तो मास, तरकारी, फलियां, रोटी-दाल और शराब उसका आहार है, और यह बनावटी खूराक खाकर भी वह ओरग-ऊटान से कही कमजोर है। उसका आहार-विहार और

[1]बोर्नियो, सुमात्रा के जगलो मे पाया जानेवाला लबे हाथोवाला, बलवान, बिना पूछ का बदर।

रहन-सहन सचमुच प्राकृतिक हो तो वह ओरंग-ऊटान से भी अधिक वलवान् हो सकता है। वह सृष्टि का सिरमौर है, संपूर्ण प्राणियों पर राज करने के लिए पैदा किया गया है। उसकी इंद्रियां, देह-मन की शक्तियां सबसे अधिक विकसित है, अतः उसे शरीर-वल मे भी सभी प्राणियो से वहुत आगे होना चाहिए।

दैत्यों, असुरों की पौराणिक कहानियां भी इस वात का संकेत करती है कि आदि-युग मे मनुष्य अति वलशाली था।

जानवर पके हुए फलों की अपेक्षा, कच्चे और अधपके फलो, पौधो को खाना ज्यादा पसद करते है। हर एक अनुभव उनकी इस प्रवृत्ति की पुष्टि करता है। वच्चे भी, जिनकी नैसर्गिक प्रवृत्ति आज भी वड़ी उम्रवालों से प्रवल है, आमतौर से कच्चे और अधपके फलों को ही पसंद करते हैं।

प्रकृति-विज्ञान का हर एक पंडित इस तथ्य की ओर ध्यान देता हुआ दिखाई देता है कि जानवर अपक्व फल-पौधों को, पके हुओं से ज्यादा पसंद करते हैं। मार्टिन के नव-प्रकाशित विशाल प्राकृतिक इतिहास मे हम इस वात का उल्लेख पाते है कि ओरंग-ऊटान अनपके फल खाने का खासतौर से शौकीन है।

चिड़ियों के वारे मे यह वात सुविदित है कि वे शाहदाने या विलायती मकोय को पूरा पकने के पहले ही, जव वे लाल होने लगते हैं, खाना सवसे ज्यादा पसंद करती हैं।

घास चरनेवाले जानवर भी नरम-कच्ची घास और दाने को ही ज्यादा पसद करते है। सूखी घास और पयाल भी, अगर वह पकने से कुछ पहले ही काट लिया गया हो तो, उन्हे अधिक रुचता है। अनपका चारा उनके लिए अधिक पोषक और स्वास्थ्यकर भी होता है।

जो सेव जाड़े के दिनो मे इस्तेमाल करने के लिए तोडकर रख लिये जाते है वे आमतौर से अधपके ही तोडे जाते है। पूरी तरह पकने के लिए उन्हें इससे कही अधिक दिन डाल से लगे रहना होगा।

बे-पके फल खाने से वच्चो को दस्त आने लगना और खाज आदि की शिकायत हो जाना भी इस वात का सवूत है कि अनपका फल पके की वनिस्वत देह को अधिक शक्ति और गति देता है, क्योंकि अतिसार और खाल के रोग शोधक उभार है। ये सचित विप को शरीर से वाहर कर देने की प्रक्रिया है।

अत अनपके और अधपके फल से डरना अब हमे छोड देना चाहिए और उन्हे चाव से खाना चाहिए। हमारी विगडी हुई जीभ भी उन्हे ज्यादा पसद करेगी। हरी तरकारिया, हरी सेम-मटर आदि भी पकी हुई फलियो और अन्नो से, जिनसे हमारी रोटी वनाई जाती है, अधिक पोपक और स्वास्थ्यकर होती है।

जानवरों को जब फलिया, चना-मटर और पका अन्न अधिक मात्रा मे दिये जाते है, और खासकर जव उन्हे कडी मेहनत नही करनी पड़ती, तव उनकी देह के जोड कडे पड जाते है, और कभी-कभी वे मर भी जाते है। इसके विपरीत, घोडे को जब कच्चा चारा दिया जाता है—भले ही वह सूखा हो—तव उसके जोड़ लचीले होते है। इससे सावित होता है कि फलिया और वह गेहू-जौ, जो पक जाने पर खेत से काटा गया हो, प्रकृति की पसद का आहार नही है, इसलिए इनको खाने की सलाह मै नही दे सकता। इस दृष्टि से आज के अन्नाहारी हमे पके दाने और छिलकेवाले गेहू के विना छने आटे को अपना मुख्य आहार बनाने की सलाह देकर भारी गलती कर रहे है। इस गलती की हमे अक्सर कडी सजा मिली है।

वहुतो का खयाल है कि खजूर और अजीर हमारे दातो को

नुकसान पहुंचाते हैं। जो खजूर और अजीर हम खाते है वे सुखाये हुए होते हैं, अत अपने प्राकृतिक रूप में नही होते। हो सकता है कि गरम देशों के सुखाये हुए फलो मे शक्कर का अत्यधिक होना हमारे दातो के लिए थोड़ा अहितकर हो, पर यह बात अधिक हानि करनेवाली है इसमे मुझे शक है। फिर गरम देशो के फल हमारे लिए अनिवार्य नही है, उनकी सिफारिश तो मैने महज इसलिए की है कि इससे हमारे दस्तरख्वान पर, खासकर जाडे के दिनो मे, इस तरह की और चीजे रखी जा सकती हैं, और ये हमारी जीभ को ही नही मन और आखों को भी बहुत भाती है। गरम देशो के ताजा फलों—संतरे, मौसंबी आदि के खिलाफ तो यह एतराज उठाया ही नही जा सकता।

निश्चय ही हमारे ये फल प्रकृति की अयाचित देन नही है, हम उन्हे बनावटी विधियो से पैदा करते हैं, फिर भी वे धरती से ही प्राप्त होते है और अपनी स्वाभाविक दशा मे, बिना पकाये और नमक-मसाला मिलाये, रुचते हैं; इस कारण वे भी वन के फलो की ही तरह मजे मे खाये जा सकते हैं।

गरम देशो के फल (खजूर, अंजीर, संतरे, बादाम आदि) हमारे जल-वायु से भिन्न जल-वायु मे उपजते है, और खासकर दक्षिण के देशो के लिए पैदा किये गए हैं, पर वे हमें कच्ची हालत मे रुचते है, इसलिए अप्राकृतिक आहार नही माने जा सकते। फलियां, आलू, दाल आदि खाकर हम प्रकृति की व्यवस्था से जितनी दूर चले जाने का अपराध करते हैं, गरम देशों के फलों को खाना उसकी तुलना मे प्रकृति के विधान का बहुत ही हलका उल्लघन है।

दूध सदा कच्चा ही पीना चाहिए। उबालने से वह दुष्पाच्य हो जाता है। दही और मट्ठा भी इस्तेमाल किये जा सकते है।

जगली और वगीचो मे उपजनेवाले फल, जहा तक हो सके कच्चे और विना पकाये ही खाने चाहिए। जब ताजा फल अलभ्य हो तव सुखाये या पकाये हुए फल भी खाये जा सकते है।

फलों को आग पर पकाने या उनका अचार-मुरव्वा वनाने मे शक्कर का उपयोग वहुत ही कम करना चाहिए। कृत्रिम विधि से वनाई हुई शक्कर (फलो के रस मे भरी प्राकृतिक शक्कर नही) पेट के लिए वहुत ही हानिकर है। कच्ची या लाल शक्कर अवश्य सफेद शक्कर और मिस्री से अच्छी होती है।

खजूर को हम दूध आदि को मीठा करने के काम मे ला सकते हैं। शहद रोटी के साथ खाया जा सकता है।

खाना धीरे-धीरे और खूव चवाकर खाना चाहिए। जिस भोजन मे राल अच्छी तरह मिली हो उसे आमाशय ज्यादा अच्छी तरह पचा सकता है।

आग पर पकाये हुए खाद्यो की अपेक्षा फल स्वभावतः धीरे-धीरे खाये जाते है। हम सदा सव वातो मे प्रकृति का अनुसरण करते रहे तो हमारा हर काम अपने-आप ठीक तौर पर होगा।

मासाहार से प्रचलित निरामिषाहार (हरी तरकारिया, फलिया, रोटी और कोई फल) पर जाना वहुत ही कठिन है,' क्योकि कुछ ही दिनो मे अखरोट-वादाम आदि मे रहने वाली चिकनाई की इच्छा जोरो से होने लगेगी। कुछ दिनो मे और तरह के कष्ट, वेचैनी की अनुभूति भी होगी, हालाकि मांस-मद्य के आहार से उत्पन्न विकृति-सूचक लक्षण विदा हो जायगे। यही कारण है कि वहुतेरे निरा-मिषाहार को अधिक दिन चला नही सकते और कुछ ही दिनो मे फिर पुराने खान-पान पर आ जाते है; पर आग पर न पकाये हुए फल अगर मग्जों के साथ मिलाकर खाये जाय तो पाचन का काम

करनेवाले अंगो का काम तुरंत वहुत हलका हो जाता है और पाचन-शक्ति वहुत वढ जाती है। इस आहार से दिमाग भी साफ हो जाता है और सारा जीवन वधनमुक्त, हलका-फुलका और प्रसन्नता से भरा हुआ मालूम होने लगता है। अतर मे सुख-स्वास्थ्य और आनद की ऐसी अनुभूति होने लगती है जो उसके पहले सर्वथा अज्ञात होती है। चूकि अव शरीर को वे चीजे मिलती होती है जो उसके पोपरण और वाढ़ के लिए आवश्यक है इसलिए तन-मन मे शीघ्र ही एक सुखद स्फूर्ति की अनुभूति होने लगती है और वल, ओज की नई अनुभूति के साथ-साथ जीवन मे एक नये, अननुभूत आनंद की लहरे उठने लगती है।

रही हमारी सिर चढाई हुई जीभ की वात। सो वह तो अभ्यास से कुछ दिनों मे नितात स्वादरहित, वल्कि शराव और तवाकू-जैसी अति अरुचिकर चीजों मे स्वाद पाना सीख जाती है।

सच तो यह है कि प्रकृति फल को, जिसे ईश्वरीय तेज के प्रतीक स्वय सूर्य ने उगाया-वढाया, जो स्वाद प्रदान करती है वह स्वाद ऊचे-से-ऊंचे दरजे की पाकविद्या भी रोटी-चावल, साग-भाजी मे पैदा नही कर सकती।

कोई आदमी थोड़े दिन भी अप्राकृतिक आहार की इच्छा को दवा ले तो वह प्राकृतिक भोजन मे, जो राजसी पकवानों से भी वढ़-कर और सच्चा स्वाद है, उसका मजा लेना सीख जायगा। वह चाहे तो सदा केवल कच्चे या स्वयं-पके फल खाकर रह सकता है, उसकी जीभ उससे कोई दूसरी चीज न मागेगी, और फलो के दिव्य स्वाद की दिन-दिन अधिकाधिक रसिया होती जायगी, यहां तक कि पुराने रहन-सहन को फिर अपनाना उस आदमी के लिए अति कठिन हो जायगा। यही कारण है कि जो लोग पुराने ढंग के निरामिपाहार

पर वडी कठिनाई से टिकाये जा सकते है वे रसदार और गिरीदार फलो का आहार एक वार आरभ करके फिर वडे चाव से उसका व्रत लिये रहते है।

पर इस आहार की सलाह देते हुए मुझे यह वात एक वार फिर कह देनी होगी कि हमारे आहार मे यह परिवर्तन प्रकृति के आदेश के जितना ही अधिक अनुकूल होगा, उतना ही उन शोधक उभारों की अधिक सभावना होगी जो रोग से छुटकारे और स्वास्थ्य की प्राप्ति के वीच की मजिल माने जाते है। वे अनेक रूपो मे प्रकट हो सकते है—हाथ-पाव या जोडो के दर्द, क्षणिक अवसाद की या और किसी शक्ल मे ; पर ये उपद्रव सदा शुभ लक्षण होते है। वे इस वात का प्रमाण है कि शरीर के शोधन की, रोग के कारणरूप विप के वाहर निकलने की क्रिया पूरे वेग से चल रही है। इन शोधक उभारो के वाद रोगी को आराम की पक्की अनुभूति होती है और रोगी प्रकृति की कार्यविधि को थोडा भी समझता होगा, तो इन उभारो से घवरायेगा नही।

कभी-कभी यह भी होता है कि सोलहो आने प्राकृतिक आहार-क्रम चलाने पर कुछ ही दिनो मे वडे जोर की भूख लगने लगती है और उसे बुझाने के लिए वार-वार भोज्य पदार्थों की वडी मात्रा पेट मे पहुचानी पडती है। यह भी एक सुलक्षण है, क्योकि इससे यह सावित है कि शरीर अपने आपको वनाने का काम मुस्तैदी से शुरू कर रहा है।

प्राकृतिक आहार आरभ करते ही भूख का भड़क उठना ऐसी वात नही है जिससे कोई डरे, कुछ दिनो मे वह फिर चली जायगी और अत मे अप्राकृतिक आहार-काल मे जितना खाना पडता था उससे वहुत कम मे तृप्ति होने लगेगी और यह अल्प मात्रा वड़ी

रुचि और स्वाद के साथ खाई जायगी।

मा के दूध को छोडकर और जो भोजन प्रकृति मनुष्य को देती है, सव ठोस शकल मे होता है। जानवरो मे भी जो कच्चे रसदार घास-पौधे या फल खाकर रहते है, वे वहुत ही कम पानी पीते है; एक जाति के हिरन (रो) तो कभी पीते ही नही। मुमकिन है, मनुष्य भी आरंभ मे अपायी (जल न पीनेवाला) प्राणी रहा हो, क्योकि किसी कृत्रिम साधन मात्र के बिना कुछ पीना उसके लिए अति कठिन है। पर आज वह शोरवे आदि के रूप मे कितना तरल खाद्य खाता और चाय, कहवा, शराव आदि के रूप मे कितना पेय पीता है, इसको हम सोचे तो आसानी से समझ सकते है कि इस विषय मे भी वह प्रकृति के प्रति कितना वड़ा अपराध कर रहा है।

प्राकृतिक चिकित्सा के एक आचार्य स्क्राथ की चिकित्सा-पद्धति मे केवल कुछ दिनो तक जल और अन्य पेय पदार्थो का त्याग करके ही रोग दूर किये जाते है।

केवल फल खाकर रहनेवाले को तो जल्दी ही यह अनुभव होने लगता है कि अव उसे प्यास नही लगती और पानी या और कुछ पीने की जरूरत नही है।

और दूसरों को तो प्रकृति, मां के दूध के सिवा, केवल पानी पीने के लिए देती है। फलों के रस भी पिये जा सकते है।

हम आपको एक स्वादिष्ट शरवत वनाने की विधि बताते है—किसी पहाडी सोते का एक वोतल जल लीजिये जिसमे लोहे या किसी दूसरे उपयोगी खनिज द्रव्य का मिश्रण हो। उनमें एक नीवू और रसभरी का उतना रस निचोड़िये जितना उसे स्वादिष्ट वनाने के लिए आवश्यक हो। जंगबार्न मे त्यौहारों पर यह पेय चिकित्सार्थियों को दिया गया और उन्हे वहुत पसंद आया है। उसे इकट्ठे वैठकर

पीना हमारे लिए सदा एक वढिया, आनंदजनक गोष्ठी होती है।

अतः अगर त्यौहारो, उत्सवों पर पानगोष्ठी का आयोजन आवश्यक ही हो तो यह जरूरी नही है कि उस मौके पर हम शराव ही पियें। सेव, संतरे, अगूर के रस से भी किसी की आयु और आरोग्य की कामना या सम्मान की रस्म अदा की जा सकती है। उत्साह और प्रसन्नता पर कुछ नशे का इजारा नही है।

फलो का रस और शरवत सदा शुद्ध और सरल विधि से वनाया हुआ होना चाहिए, जैसा कि स्त्रिया आमतौर से घरो मे वनाया करती है।

फलो के जो शरवत वाजारो मे विकते है और जिनका वडे-वड़े नाम देकर विज्ञापन किया जाता है उनमे मिलावट का शक करने की गुजाइश जरूर होती है गो उनमे से कुछ अक्सर नेकनीयती से तैयार किये जाते है।

मास, नमक और मसाले के आहार से हमे आज जो अप्राकृतिक प्यास लगती है उसे वुझाने के लिए हमे तीक्ष्ण, उत्तेजक पेयो की आवश्यकता होती है। हमारा ढीला-ढाला, वेदम नाडी-सस्थान भी कभी-कभी उत्तेजना मागता है, पर उत्तेजित किये जाने के कुछ देर वाद वह अपने आपको अधिक अशक्त पाता है। इसी तरह मनुष्य शराव-ताडी, चाय, कहवे का आदी वना। मै समझता हू, इस वात को सावित करने की जरूरत नही है कि शराव प्रकृति के किस तरह विरुद्ध है और इस पिशाची ने मानव-जाति पर हर शक्ल मे कैसी आफतें ढाई हैं।

शराव ज्यादा पीने से जितनी हानि करती है थोडी मात्रा मे लेने से अवश्य ही उसकी तुलना मे कम नुकसान करती है। जो डाक्टर यह मान लेते है कि जौ या अगूर की शराव थोड़ी मात्रा मे

दी जाय तो कोई हानि नही करती, वल्कि शक्तिवर्धक होती है, और यह मानकर अपने रोगियो के लिए उसकी तजवीज करते है, वे अति शोचनीय भूल करते हैं। शराव से पैदा होनेवाली थोडी-सी बनावटी उत्तेजना, जो कुछ देर वाद उससे कही अधिक सुःती-शिथिलता पैदा कर देती है, तदुरुस्त आदमी के लिए भी अति हानिकर है, रोगी के लिए तो और भी अधिक हानिकर होनी चाहिए।

पुरुप आज शराब और वीड़ी-सिगरेट के अत्यधिक सेवन से अपनें स्वास्थ्य की जो हानि कर रहे है, स्त्रिया उसकी वही हानि कहवा पीकर करने की कोशिश कर रही है। कहवा आज हमारे नारी-समाज मे वहुत अधिक रोग-क्लेश का कारण हो रहा है। जव तव इस व्यसन के पजे से अपने-आपको छुड़ा न ले तव तक कोई भी स्त्री सच्चे स्वास्थ्य के रास्ते पर नही लग सकती। जौ-गेहू के सत्त से वनाया हुआ कहवा स्वभावत. असली कहवे के जितना हानिकर नही होता; पर इस तरह के कहवे का इस्तेमाल भी धीरे-धीरे घटाकर अत मे विल्कुल वंद कर देना इष्ट है, क्योकि तरल खाद्य की अधिक मात्रा सदा हानिकर होती है।

ताजा, रसदार फल जितना ही अधिक खाया जायगा, पानी और पतली चीजो की इच्छा उतनी ही घटती जायगी। शराव के व्यसन का तो एकमात्र इलाज प्राकृतिक आहार है।

प्राकृतिक जीवन के विरोधियों के पास तरह-तरह की शंकाएं और आपत्तिया हैं। एक साहव पूछते है—अगर दुनिया के सारे लोग फिर प्राकृतिक ढग से जीवन बिताने लगे तो इतने सेव-संतरे, वादाम-अखरोट आयेंगे कहा से ? दूसरे महाशय को यह चिता सता रही है कि ये इतने वूचड़, मोची, नानवाई, पंसारी आदि क्या करेंगे जो उस दशा मे वेरोजगार हो जायगे ?

हर आदमी, जो आज प्राकृतिक आहार पर रहना चाहता हो, उन चीजो को आसानी से पा सकता है जो उसके पोषण के लिए जरूरी है।

फिर भी फलो की मांग वढ जाय तो उनकी उपज आसानी से वढाई जा सकती है। जो जमीने आज चरागाह और उन चीजो के उपजाने मे, जो मनुष्य के लिए वेकार ही नही हानिकर भी है (तवाकू, शलजम, आलू, अनाज आदि), आज फसी हुई है वे फल उपजाने के काम मे लाई जाएगी।

आज तो राजमार्गों के आसपास की और वजर, वेकार जमीन ही फलो के पेड, वाग लगाने के काम मे लाई जाती है। जगली फलो, वेर-करौंदे, रसभरी आदि की झाडिया घास-पात समझी जाती है और खोद-उखाड़कर फेक दी जा रही है।

सच पूछिये तो मनुष्य अपने जीवन-क्रम, अपने रहन-सहन मे प्रकृति-निर्दिप्ट पथ से जितना ही दूर हटा है और सभ्यता तथा विज्ञान जितना ही आगे वढे है उसकी दशा उतनी ही विगड गई है, और वह फिर प्रकृति की ओर जितना वढेगा उसी अश मे उसकी दशा सुधरती जायगी। मानव-जीवन के आदि-युग मे तरह-तरह के धधे-पेशे नही थे और मनुष्य सुखी थे। अगर आज यह स्थिति हो जाय कि वे हमारे लिए फिर वेकार हो जाय तो सभी मनुष्य फिर दुनिया के सुख भोगने लगे, गो यह वात वहुतो को अनहोनी-सी लगेगी।

मै हर एक फलाहारी से प्रार्थना करूंगा कि वह अव भी फलो का उत्पादन वढाने के लिए जो कुछ उसके किये हो सकता हो, वह करे।

मनुष्य का पाचन-यत्र अपनी वनावट और पुरजो की तरतीव के

विचार से केवल फलाहार के उपयुक्त है, अतः केवल फल उसे आसानी से और पूरी तरह पच सकता है।

जो आदमी केवल फल खाकर रहता है उसके शरीर मे विजातीय द्रव्य अथवा मल की वृद्धि तुरंत रुक जाती है और पाचन का काम करनेवाले अवयव संचित विजातीय द्रव्य को वाहर निकालने का काम ज्यादा मुस्तैदी से करने लगते है। फल इस शुद्धि की क्रिया को उत्तेजना देता है।

कच्चा या अपने-आप पका हुआ फल कितनी आसानी से पच जाता है और उसमे आरोग्य तथा जीवन-दान की कैसी अद्भुत शक्ति है, इसका विचार करने से यह वात स्पष्ट हो जाती है कि रोगों को दूर करने मे फलाहार से कितनी मदद मिलेगी।

फलाहार से मिली हुई सफलता निस्सदेह आश्चर्यजनक है। उसकी वदौलत अकसर ऐसे रोगियों को भी स्वास्थ्य की पुनः प्राप्ति हुई है जिनकी सारी जीवनी-शक्ति समाप्त दिखाई देती थी और नैराश्य के सिवा और कुछ शेष नहीं जान पड़ता था।

तव भी क्यों हम फल की उपेक्षा कर सव तरह के अस्वाभाविक खाद्यों और दवाओं का सहारा लेते हैं ?

हर एक जानवर वीमार होते ही खाना छोड़ देता है।

रोग की अवस्था में मनुष्य को चाहिए कि अपना भोजन जितना घटा सकता हो घटा दे। कम-से-कम उसे इतना तो करना ही चाहिए कि जब पेट मांगे, यानी जव जोर की भूख लगे, तभी खाय।

वीच-वीच मे एक-दो वक्त कुछ भी न खाना स्वास्थ्य के लिए अति हितकर है।

उपवास की वड़ाई हजरत ईसा ने भी की है। उन्होंने कहा

है—"फिर भी यह चीज प्रार्थना और उपवास के विना नही जाती।"

वहुतों का खयाल है कि जव हम बीमार हो और भूख न लगी हो तव भी हमे पेट मे कुछ खाना ठूस ही लेना चाहिए जिसमे शरीर ज्यादा कमजोर न हो जाय; पर यह धारणा एक घातक भ्रम है।

जब पेट खाना नही मागता तव वह उसे पचाने के काविल नही होता। ऐसी दशा मे विना भूख के जो भोजन उसमे डाला जाता है वह उसके लिए भार रूप हो जाता है। यह वात बुरी तो हर वक्त है, पर वीमारी की हालत मे खास तौर से हानिकर होती है, कभी-कभी तो खतरनाक भी हो जाती है। खाने का अधिक आग्रह तंदुरुस्त आदमी से भी नही किया जाना चाहिए, वीमार से तो हरगिज नही करना चाहिए। अपने वच्चो को हृष्ट-पुष्ट देखने के लिए वेचैन माताएं इस विपय मे उसका अहित करने का अधिक पाप न करें तो बहुत अच्छा हो।

बनावटी भोजन को जरूरत से ज्यादा खा लेने का खतरा सदा रहता है, पर प्राकृतिक आहार (कच्चा और पेड पर पका हुआ फल) मे प्रकृति ने ऐसा प्रवध कर दिया है कि उसे जरूरत से ज्यादा खा लेना आसान नही है। अत. वीमारी की दशा मे केवल फल खाया जाय तो उसके अधिक खा लेने का उतना डर न होगा।

प्राकृतिक जीवन-क्रम का वर्णन करने मे अब तक मेरा उद्देश्य यह वताना रहा है कि मनुष्य के भौतिक जीवन, उसके शरीर को इससे क्या-क्या लाभ हो सकते है। मैने यह वताने की कोशिश की है कि जिन अवस्थाओ को हम रोग कहते है वे प्रकृति की ओर लौटने की साधना, उसके वताये हुए रास्ते पर फिर से चलने से किस तरह वचाई और दूर की जा सकती है।

पर प्रकृति में हर चीज का एक-दूसरे से पूरा मेल, लगाव है, और मनुष्य मे भी देह, मन और आत्मा एक-दूसरे से अलग नही किये जा सकते। देह, मन और आत्मा का धारण-पोपण करती है और वैसे ही मन और आत्मा भी देह पर सदा अपना असर डालते हैं।

परमात्मा ने मनुष्य को सर्वथा स्वस्थ और सुदर ही नही, नितात नेक और भला भी पैदा किया था। वह सपूर्ण सृष्टि का शिरोमुकुट है। स्वय ज्ञानरूप और सद्रूप परमात्मा की सर्वश्रेष्ठ कृति शरीर मन और आत्मा की खोट-खामियो से भरी हुई नही हो सकती।

मनुष्य का मन आज सब प्रकार की पापमय वासनाओं का आगार हो रहा है। वह अपनी सारी शक्ति और साधनों से उनसे लड़ता है, पर बार-बार उनसे हारकर पाप के गढे मे गिरता है। इन कुप्रवृत्तियो पर विजय पाने के लिए वह अध्यवसाय और प्रयत्न भी अपनी सारी शक्ति लगाकर बारबार करता है, पर हर बार हार खाता और उनके अधीन होता है। अत. अगर परमेश्वर ने इनके साथ ही उसे सिरजा है—पाप की ओर ले जाने वाली प्रवृत्तिया और वासनाएं उसका स्वभाव है—तो वह खुद भला और नेक न होगा; वह खुदा न होकर शैतान होगा जिसे पुण्य से नही बल्कि पाप से प्रसन्नता होती है; पर वस्तुतः बात ऐसी नही है। मनुष्य का पापमय होना उसके अपने प्रकृति-विरोधी जीवनक्रम का फल है। एक मना की हुई चीज को खा लेना—प्रकृति-निर्दिष्ट पथ से च्युत होना—ही तो स्वर्ग से उसके पतन का कारण है।

मिसाल के तौर पर, मुक्त, अबाध प्रकृति मे पशु-पक्षियों का नियम केवल संतानोत्पादन के लिए ही मैथुन करना है। गर्भ-धारण के बाद वे खुद तो यह क्रिया बद कर ही देते है, कोई उन्हे किसी भी उपाय से इसके लिए मजबूर भी नही कर सकता। ठीक यही हाल

मनुष्य का है। प्रकृति के आदेशानुसार जीवन विताकर ज्यो-ज्यो वह तन-मन से स्वस्थ होता जाता है त्यो-त्यो व्यभिचार और दूसरे पापो से वचना उसके लिए आसान होता जाता है। यही नही, कुछ दिनो मे उससे उनका होना सर्वथा असभव हो जाता है। जव वह यह स्थिति प्राप्त कर लेता है तभी सच्चे अर्थ मे सुधरा हुआ कहा जा सकता है।

आदि-युग मे मनुष्य को मन और आत्मा का पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त था। उस स्थिति से वह जितना भी हटा, गिरा है, सव शरीर की विकृतियो के कारण हुआ है। विजातीय द्रव्य सारी इद्रियो, अगो को नुकसान पहुचाते हैं—उन अंगो को भी, जो मन और आत्मा को देह से मिलाते हैं; पर आज किसी के दिमाग मे यह वात नही घुसती कि प्रकृति के नियमो के अनुसार शरीर की सभाल रखकर हम वौडमपन, पागलपन, अन्यमनस्कता, उदासीनता, वदमिजाजी, विपाद, चिंताधिक्य, विपय-लोलुपता, जवानी की कुचालो, वुरी आदतो, पाप-अपरावो की प्रवृत्ति, काम-क्रोध, ईर्ष्या-द्वेप, दूसरो का वुरा चाहना आदि मानस दोपो को दूर भगा सकते है।

जो हो, अगर साथ-साथ शरीर की भी प्राकृतिक विधि से वैसी ही सभाल न रखी जाय तो नीति, शिक्षा और मन-आत्मा के संस्कार के लिए किया हुआ सारा श्रम व्यर्थ जायगा, वल्कि हो सकता है उससे हमारी दशा और वुरी हो जाय।

यूनान के पुराण हमे 'डानियड' नामक कन्याओं की कथा सुनाते है। ये डानिअस नामक राजा की वेटिया थी। वाप के आदेश से इन्होने अपने पतियो को सुहागरात मे ही कतल कर दिया। इस अपराध का दड उन्हे यह दिया गया कि मृत्यु के वाद प्रेतलोक मे छलनी मे सदा पानी भरती रहे।

जो लोग आज मनुष्य को प्रकृति की ओर वापस जाने के रास्ते पर लगाये विना ही उन्हे अधिक भला और सुखी वनाने की कोशिश कर रहे है वे भी इन कन्याओं जैसा ही काम कर रहे है। वे भी छलनी को हमेशा पानी से भर रहे है जो कभी भरने की नहीं।

वेशक वे सारे विधानकार और लोकोपकार-व्रती, जो प्राकृतिक जीवन-क्रम के महत्त्व के विपय मे विल्कुल कोरे है, अक्सर केवल वुराई को वढ़ाने का पुण्य कमाते हैं। मिसाल के तौर पर हम वेश्या-वृत्ति के विरुद्ध, जो एक खुली वुराई है, लड़ते है और इससे गुप्त पाप की वृद्धिमात्र करने का फल पाते है जो प्रकट वेश्यावृत्ति से ज्यादा खराव और खतरनाक है।

दुनिया की सारी बुराई, सारा पाप, जो आज मानव-जाति के लिए भयानक दैत्य रूप हो रहा है, नष्ट किया जा सकता है, पर केवल एक चीज हमें इसका वल-सामर्थ्य दे सकती है—प्रकृति की ओर लौटना।

वाइविल कहती है—"इस प्रकार ईश्वर ने मनुष्य को अपने स्वरूप मे उत्पन्न किया। उसने ईश्वर के स्वरूप मे उसे उत्पन्न किया।"

परमेश्वर प्रेमरूप है और मनुष्य इस विषय मे उसकी समता करता है—उसका प्रतिरूप है। भगवान् और अपने भाइयों को प्यार करना ही आरंभ मे मनुष्य का स्वभाव था।

मनुष्य जव प्रकृतिनिर्दिष्ट पथ से विचलित हुआ तो उसके फल रूप मे उसे जो शारीरिक दुःख-दर्द मिले उनके साथ-साथ उसकी आत्मा पर भी मल के छींटे पड़ गये। विपय-सुख की वासना वहुविध वीभत्स रूपो मे प्रकट हुई—कामुकता उनमे सवसे वड़ी वुराई थी। मनुष्य का प्रेम मलिन-दूपित हो गया। उसके मानस मे द्वेप का अंकुर उगा और द्वेष से ईर्ष्या, दूसरों का वुरा चाहने की वृत्ति और परमेश्वर तथा अपने

बंधुओं—मानव-संतानों—के प्रति किये जाने वाले सारे पापों का वंग वढ़ा। परमेश्वर की प्रतिभा उसमे अधिकाधिक लुप्त होती गई।

प्रकृति के राज्य मे हम देखते है कि सभी मांस-भक्षी प्राणी क्रूर-हिंस्र स्वभाव के होते हैं और घास-पात खाने वाले पशु सीधे और शातिप्रिय होते है। विना पूछ के वदर (एप) और कुत्ते को ज्यो ही मास की खुराक मिलने लगती है वे कटहे और खतरनाक हो जाते हैं। पुच्छहीन बंदर तो कुछ दिन इस खुराक पर रहते ही हद दरजे का लपट हो जाता है।

अतः प्रकृति की वताई विधि से जीवन विताना केवल पेट का प्रश्न नही है। उसके जरिये हम केवल अपनी देह का दु.ख-दर्द दूर करना नही चाहते, वल्कि इससे उच्चतर लक्ष्यो को—उस वस्तु को भी प्राप्त करना चाहते है जो सदाचार और धर्म का चरम लक्ष्य है। इस पथ के अनुसरण से मनुष्य को परमेश्वर की प्रतिरूपता पुनः अधिकाधिक प्राप्त होती जायगी।

: ११ :

मांस और शराब

प्रकृति ने मनुष्य को मांस खानेवाला शिकारी जानवर नही वनाया है।

मनुष्य को कच्चा मास अच्छा नही लगता। उसे उसके वनाने, पकाने, वघारने, छोंकने और उसमे मसाला मिलाने की जरूरत होती ही है। उसे मांस के साथ और कुछ न सही, नमक तो चाहिए ही।

जव हिंसक पशु अपना शिकार मार लेता है तव वह उल्लास से

भर जाता है और ताजा खून पीकर मतवाला-सा हो जाता है।

पर मनुष्य, जो पूर्णतया पशु नही हो गया है, हत्या करने से घबराता है। जब वह पशु को, जिसे मनुष्य का सजातीय ही कहना चाहिए, मारने के लिए खूखार अस्त्र उठाता है तो उसका विवेक उसे हमेशा ऐसा करने से रोकता है। मरते हुए पशु का छटपटाना देखकर कठोर-से-कठोर हृदय पिघल जाता है। मास खानेवालों को यदि जानवर को स्वयं अपने हाथों मारकर खाना पड़े तो अधिकांश न खाना ही पसंद करेंगे। कच्चा, बिना पका मांस अथवा कसाई की दूकान मे रखी पशु की लाश देखकर सभी का मन घृणा से भर जाता है। अतः अनेक स्थानों मे मास को खुला ले जाने के विरुद्ध कानून बन गये है।

मनुष्य इस संबंध में भी प्रकृति, अपने विवेक, रसना, घ्राण-शक्ति, आंख और नैसर्गिक प्रवृत्ति की बात क्यों नही सुनता ? क्या ऐसा कर सकना बहुत सरल नही है ?

मनुष्य इस प्रकार के वैज्ञानिक अनुसंधान में कि वह पशु का मांस खानेवाली जाति का है या सर्व-भक्षी सूअर, भालू आदि की जाति का है, क्यों अपनी शक्ति व्यर्थ खर्च करता है ? पशु की ये दोनों जातिया तो मनुष्य को सदा से ही क्रूर और निर्दय प्रतीत होती रही है और इस नाते वह इनसे सदा घृणा करता रहा है।

मास मनुष्य के लिए उचित भोजन है या नही—इस प्रश्न की छान-बीन मनुष्य उन सरल साधनों से नहीं करता जो प्रकृति ने उसे दिये है। वह दांत और आंत का अध्ययन करता है, मास के अवयवों को जानने की कोशिश करता है—यह मनुष्य की अस्वस्थ ज्ञान-पिपासा का दूसरा प्रमाण है।

अनेक विद्वानों ने, जिन्हे मांस खाना निश्चय ही बहुत प्रिय रहा

है, कहा है कि मनुष्य के दांतो को देखकर कहा जा सकता है कि मनुष्य अशतः मासाहारी है और आज भी ऐसे बहुत से लोग हैं जो उनके इस राग को बिना समझे-बूझे अलाप रहे है।

जो कुछ भी हो, अपने शिकार को पकडने और फाडने के जैसे नाखून और दात शिकारी जानवरो के होते हैं वैसे मनुष्य के नही है। इसी तरह मास-भक्षी पशु की पाचन-प्रणाली भी मनुष्य की पाचन-प्रणाली से सर्वथा भिन्न होती है। –

शिकारी जानवर, मसलन कुत्ता, मास के साथ-साथ हड्डी भी खा सकता है, पर मनुष्य तो ऐसा नही कर सकता। इससे यह साबित होता है कि मनुष्य का आमाशय इन पशुओ से सर्वथा भिन्न प्रकार का है।

मनुष्य के दात और आंख की फल और शाक खाकर रहनेवालों एव मास-भक्षी तथा सर्व-भक्षी पशुओं के दातो और आखों से तुलना करने पर प्रतीत होता है कि मनुष्य शिकारी पशुओ की जाति का न होकर फल और शाक खानेवाली जाति का ही है। हाथी और चूहो के दातो मे जो साम्य है उससे अधिक साम्य मनुष्य और मास-भक्षी तथा सर्व-भक्षी पशुओ के दाढ और आखो मे नही है। मनुष्य की आतो की लबाई भी बताती है कि मास उनके अनुकूल नही है।

यदि प्रकृति ने मनुष्य के लिए मास नही बनाया है तो उसका उपयोग मनुष्य के लिए अवश्य ही क्षतिकारक है। मनुष्य मास खाकर स्वस्थ और मजबूत नही बनता, वरन् बीमार पडता है और कमजोर होता है।

कहा जाता है कि मनुष्य को मास खाना चाहिए, क्योंकि उसमे चर्बी होती है जो आदमी को सर्दी से बचाती है। अगर यही बात है तो शरीर मे आवश्यक गरमी स्नेह-प्रधान मेवे खाकर क्यो नही

उपजाई जाती ? इन मेवो मे मनुष्य के लिए प्राकृतिक चिकनाई पाई जाती है और उनमें वे सब चीजे नही होती जो मनुष्य के लिए हानिकारक और जहरीली है।

ग्रीनलेंड में न शाक होते है न मेवे जिनसे वहां के निवासी, जिन्हे एसकिमो कहते है, पोषण पा सके। अतः वे लोग उत्तरी ध्रुव की कड़ाके की सरदी मांस और पशु की चरबी खाकर बर्दाश्त करते है। यह हो सकता है कि चरबी के आहार के कारण एसकिमो उत्तर की सरदी मे रह पाता है, पर उसके इस अप्राकृतिक भोजन के कारण उसका शरीर कुरूप और भद्दा हो गया है और उसका मस्तिष्क बिल्कुल जड़।

लोग अक्सर अपने अप्राकृतिक जीवन, मास और शराब की आदत को खराब मौसम के बहाने के पीछे छिपाते हैं। मौसम की आड़ लेकर वे प्राकृतिक जीवन के विरुद्ध बड़े-बड़े पाप करते है, मौसम उनका विवेक दबा देता है। फलाहार अप्राकृतिक खाद्यों की अपेक्षा मनुष्य को सरदी और गरमी सहने की अधिक शक्ति देता है।

ऐसा मानने की तो गुजाइश नही है कि मनुष्य, जो पृथ्वी का सर्वाधिक विकसित प्राणी है, पृथ्वी के एक अंश पर ही रहने के लिए बनाया गया था। बाइबिल कहती है: "पृथ्वी को परिपूर्ण करे।"

पर सारी पृथ्वी को भरने के लिए, पृथ्वी के प्रत्येक भाग मे रहने के लिए यह आवश्यक नही है कि वह अपने प्राकृतिक भोजन को छोड़े।

उष्ण कटिबंध के उष्णतम भाग और उत्तर के शीततम भाग मनुष्य के रहने योग्य नही है। पर यदि यह समझा जाय कि प्रकृति ने मनुष्य को गरम जगह मे रहने के लिए बनाया है तो भी उसे अपना अप्राकृतिक जीवन छोड़कर प्राकृतिक जीवन ही व्यतीत करना

आरभ करना चाहिए। इससे उसकी नैसर्गिक प्रवृत्ति अधिकाधिक जाग्रत होगी और वह गरम जगह मे रहना पसद करेगा। पर वास्तव मे शीतोष्ण कटिवध ही मनुष्य के रहने के अधिक उपयुक्त है। अपने इस कथन पर मैं अधिक प्रकाश आगे डालूगा।

मनुष्य ईश्वर की प्रतिमूर्ति है। उसे इस पृथ्वी की वादशाहत भलमंसाहत और दयालुता के साथ करनी चाहिए। जव वह अपने भोजन के लिए पशु की हत्या करता है या उसकी हत्या का कारण होता है तो वह अपने अतर्नाद के विरुद्ध चलता है। आज तो मनुष्य अपने इन वन्धुओ के खून से अपने हाथ लाल कर रहा है। भोजन प्राप्त करने के लिए किये गए इस पाप के फलस्वरूप उसे वहुत कडी सजा भुगतनी पड़ेगी।

इस दृष्टि से मास खाना अप्राकृतिक रिवाज है, प्रकृति की अवज्ञा है जिसका परिणाम वहुत बुरा और खतरनाक होना चाहिए। मास और अन्य अप्राकृतिक खाद्यो को खाने पर उनका ठीक पाचन नही हो पाता। मास न पचने पर पेट मे पडा सडता रहता है, सडन से उठा हुआ खमीर शरीर और रक्त मे फैलता रहता है जिस की वजह से अनेक प्रकार की सूजन उत्पन्न करने वाली और बुरी-बुरी वीमारिया पैदा होती हैं।

यूनान की पौराणिक कथाओ मे ओरेस्टेस की कथा आती है जिसमे उसने कोई भयानक हत्या की थी। इसका वोझ उसकी आत्मा पर वरावर पडा रहता था, उस हत्या का वदला लेने के लिए इरिनिस नामक देवता उसपर वरावर सवार रहता था। आज मनुष्य-जाति का विवेक इन हत्याओ के वोझ से दवा पड़ा है और उसे पृथ्वी पर कही सुख और शाति नही मिल रही है।

मास की गरमी और उसे स्वादिष्ट वनाने के लिए उसमे डाले

गये मसाले और नमक हमेशा नशीले पेय और मद्य पीने की इच्छा पैदा करते है। इस प्रकार मास खाना छिपे हुए शैतान, मद्य के लिए घर का दरवाजा खोल देता है। मद्य मांस का भाई है, जो निहायत ही पाजी और शरारती है और हमेशा अपने भाई के साथ रहता है। मद्य तनिक-सा पीया जाय या वहुत-सा, पर क्या किसी से भी इसका हानिप्रद और खतरनाक रूप छिप सकता है ?

शराव नाड़ियो को उत्तेजित करती है और इसको पीने वाला सुदर सपनो की माया मे पहुंच जाता है ; पर जव नशा उतरता है तो उसकी प्रतिक्रिया यह होती है कि यह दुनिया उसे नीरस और शून्य लगती है, उसकी यथार्थता उसे कष्ट और पीडा पहुंचाती है। शराव पीनेवाले समझते है कि शराव से उन्हें शक्ति मिलती है, पर वास्तव मे वे धोखे मे रहते है। वनावटी तरीके से पैदा की गई उत्तेजना स्वास्थ्य के लिए अत्यंत हानिकर है। यदि शराव के क्षणिक प्रभाव के भुलावे मे न पड़ा जाय तो यह तुरत समझ मे आ जाता है कि शराव शरीर को वहुत कमजोर कर रही है और नाड़िया खास-तौर से छिन्न-भिन्न होती जा रही है। शराव से आत्मा पतित और मस्तिष्क कमजोर होता है। फलतः मनुष्य पाप और दोष की ओर अग्रसर होता है।

जो मास नही खाता उसकी मानसिक वृत्ति सदा ऐसी रहती है कि उसे शराव का सुंदर किंतु क्षणिक, साथ ही मायावी स्वप्न-सुख भोगने की इच्छा नही होती।

पर यदि मांस शरीर और आत्मा के लिए इतना हानिकारक है तो सवाल यह उठता है कि क्या वाइविल और ईसा ने मास का विरोध नही किया है ? क्या ही अच्छा होता यदि हम फिर अपने जीवन के प्रत्येक कार्य के लिए ईसा और वाइविल से अधिक-से-अधिक

पथ-प्रदर्शन ग्रहण करते !

तौरेत के पुराने अनुवादो मे अनेक भूले हैं और कुछ तो इतनी भद्दी भूलें है कि उनसे मास के संबध के उपदेश उलटे अधिक अस्पष्ट हो गये हैं।

खुदा का बनाया पहला विधान यह है :

"देख, धरती पर जितने दाने वाले पौधे है वह सब मैंने तेरे लिए उपजाये है; ये तेरे लिए मास (भोजन) का काम करेंगे।"

इस प्रकार इस उपदेश मे हम देखते है कि इस विधान से मनुष्य को मास खाने का हुक्म नही है।

यह विधान हर आदमी की आत्मा पर अकित कर दिया गया था, और कोई दूसरा हुक्म अलावा इसके मनुष्य को नही दिया गया था। सर्वशक्तिमान् ईश्वर को मनुष्य पर शासन करने के लिए एक से अधिक विधान की क्या जरूरत हो सकती थी !

अगर मनुष्य ने ईश्वर[1] का बनाया यह पहला विधान माना होता तो दूसरे अन्य विधान और मनुष्य के बनाये आजतक के हजारों विधानो की जरूरत ही न होती।

ईश्वर का बनाया यह पहला विधान बाइबिल मे आगे चल कर फिर दुहराया गया है, उसने एक रोक लगानेवाला वाक्य जोड़ दिया गया है और दड देने की धमकी भी दी गई है :

"बाग के हर पेड के फल तू खुशी से खा सकता है, पर ज्ञान के

[1]यदि मनुष्य प्रकृति-पथ से न हटा होता, वह गलत रास्ता न पकडता तो न उसे हत्या करने की इच्छा होती, न झूठ बोलने की जरूरत, न वह चोरी करता और न अन्य कोई भी अनैतिक कार्य। ऐसी दशा मे उसे अपने अतर की उस आवाज को जगाने की जरूरत नही होती जो उसे ईश्वर और अपने भाइयों के विरुद्ध इन पापो को करने से रोकती है।

भले और बुरे की समझवाले पेड़ से पैदा हुए को न खाना। अगर तूने उसे खाया तो तुझे मौत की सजा मिलेगी।"

भला ज्ञान का पेड़ क्या हो सकता है ? कही पेड़ मे भी भलाई और बुराई समझने की ताकत होती है !

शुरू मे जिस भाषा मे और जिस समय वाइबिल लिखी गई थी उसमे शब्दों का वडा दारिद्रय था, उसमे उन वृक्षों (पेड़) के लिए जो पृथ्वी मे अच्छी तरह गड़े थे और उन वृक्षों (पशु) के लिए जो विकासोन्मुख होकर पृथ्वी से अलग हो गये थे एक ही शब्द है 'वृक्ष'। पशु का वृक्ष से भेद करने के लिए 'ज्ञान', 'भलाई और बुराई की पहचान' आदि विशेषण लगाये गये है। वनस्पति-वर्ग और पशु-वर्ग में वहुत निकट का सबंध है। विज्ञान पौधे और पशु (अणुवीक्षण यंत्र द्वारा देखे जाने योग्य कृमि, मूगा वनानेवाले कीड़े) के वीच की सीमा निर्धारित नही कर पा रहा है; पर आज पशु और पौधे मे खास फर्क यह समझा जाता है कि पशु मे अनुभव करने और समझने की शक्ति होती है।

इसलिए वाइविल मे वृक्षों से पशुओं को अलग करने के लिए "बुराई और भलाई समझनेवाला" यह वाक्यांश जोड़ा गया है। वाइविल मे पशु को एक जगह 'सजीव वृक्ष' कहा है, अर्थात् वृक्ष (प्राणी) जिसमे जीवन हो। अतः वाइविल मे यदि "भलाई और बुराई समझनेवाला प्राणी" लिखा होता तो ज्यादा सही होता और इस प्राणी से, जो यह समझ सकता है कि क्या बुरा है और क्या भला है, क्या हानिकर और क्या लाभदायक है, और जिसे मनुष्य की तरह अनुभव की शक्ति है, किसी अन्य का नही, पशु का ही वोध होगा। मनुष्य के पतन का आरंभ यही से हुआ, उसने पहला पाप यही किया

कि उसने पशु[1] का निषिद्ध मास खाया।

इस विचार के विरुद्ध यहा प्रमाण इकट्ठे किये जाय तो एक लंबा लेख हो जायगा और यह करना मै उचित नही समझता।

हिंदू-धर्म के ग्रथो मे, जिनका अनुवाद जर्मन भाषा मे भी सही-सही मिलता है, पशु का मास खाना निपिद्ध ठहराया गया है।

प्रकृति के-प्रागण की ओर दृष्टिपात करने पर ज्ञात होता है कि केवल मांस खानेवाले प्राणी हत्या करते है। प्रकृति मासाहारी मे हत्या की इच्छा प्रतिष्ठित करती है। मनुष्य ने अपने पतन के वाद पहला या यों कहिए कि एक ही बुरा काम किया था, वह था हत्या—भ्रातृ-हत्या। इसका अर्थ यही है कि मनुष्य के पतन का कारण मासाहार है अन्यथा हत्या का यहा कोई अर्थ नही है।

मनुष्य के पतन के वाद के प्रसंगो मे चमडे का नाम आता है।

"आदम और उसकी पत्नी ने चमडे के कोट वनाये और पहने।"

अगर मनुष्य ने पशुओ को न मारा होता तो चमडा कहा से मिलता ? वाइविल यह दिखाती है कि सुसभ्य आदमी किस प्रकार वहका। शुरू मे मनुष्य स्वर्गीय वायु-मडल मे रहता था, वह केवल वही फल खाता था जो प्रकृति स्वत. उपजाती थी। मनुष्य के प्रकृति-पथ से पतन का आरंभ तभी हुआ जव उसने आखेट शुरू किया और आखेट के कारण ही उसका पतन हुआ। आखेट के परिणामस्वरूप मनुष्य ने मास खाया और चमडा पहना।

---

[1]तौरेत मे अनेक ऐसे स्थल हैं जिनसे यह प्रमाणित होता है कि मनुष्य का पहला पाप यही था कि उसने मास खाया था। आरभ मे लोग अपने इस पाप को पहचानते थे और इससे वचने की कोशिश करते थे, पर धीरे-धीरे वे फिसलते गये। अत मे वे अपने इस पाप का समर्थन करने लगे और यहा तक समझने लगे कि मनुष्य ईश्वर की ओर से मास खाने के लिए स्वतत्र है।

अब आदमी बीमार पडा और उस घोडे की तरह अशात रहने लगा जिसे उसका प्राकृतिक खाद्य घास न देकर साफ की हुई और बनाई हुई जई खिलाई जाती है और उससे उत्पन्न अशाति को दूर करने के लिए उससे कठिन श्रमसाध्य काम लेना पड़ता है। अब आदमी को काम करना पड़ा, उसने जगल साफ किये और कृषियुग का आरंभ हुआ।

इस प्रकार आदमी जो खेती कर रहा है वह अपने किये की सजा भुगत रहा है।

"तू जमीन पर कहर लाया है, तू जिंदगी भर रोयेगा और इससे पैदा हुआ खायगा।"

"यह तेरे लिए काटे और झाडियां भी पैदा करेगी ; तू पसीने-पसीने हो जायगा तब कही जाकर तुझे तेरा रोटी मिलेगी।"

यह ईश्वरीय प्रकोप सारी दुनिया पर छा गया। मनुष्य की ओर से बिना किसी प्रयास के पृथ्वी पहले फल उपजाती थी। उसे किसी प्रकार की मशक्कत नही करनी पडती थी, पर आज का खेतिहर अपनी सारी मेहनत के बावजूद, खराब फसल, घास-फूस का रोना रोता है, चिंता और आशंका उसके भाग्य मे लिख गई है।

फलों के बदले अब मनुष्य को खेत की जड़ी-बूटी (लेटूस, पात-गोभी, हरा मटर आदि) खानी पडती है। यह उसकी सजा है।

"तू खेत मे पैदा की गई जड़ी-बूटी खायगा।"

जितनी भी चीजे आदमी मेहनत से, खेती-बारी करके उपजाता है उसके स्वास्थ्य के लिए हानिकर है, वे उसकी ऐहिक प्रसन्नता की घातिका है।

अन्न की काश्त के बाद लोग अगूर की काश्त करने लगे और हानिकारक शराब का चलन चला।

"नूह नामक व्यक्ति ने खेती करना शुरू किया और उसने एक अगूरो का वाग लगाया।"

"उसने शराव पी और शराब पीकर मतवाला हो गया और अपने खेमे मे नगा पडा पाया गया।"

"उसके एक लडके ने उसे नगा पड़ा देखा और अपने दो भाइयों को बताया।" आदि

इसके वाद व्यापार और कला का रिवाज चला।

"और जिल्हा भी नगी मिली और ट्यूवलकेन भी, जो तावे और लोहे के काम का कारीगर था।"

गृहनिर्माण-कला भी प्रचलित हुई। वैवीलोनिया मे मीनार वनने लगी। और अनेक भाषाएं भी चल पड़ी जिसके फलस्वरूप भाषा-विज्ञान पैदा हुआ।

पर कष्ट धीरे-धीरे वढा, मनुष्य अधिकाधिक गलतियां करने लगा, वह ईश्वर और प्रकृति-पथ से दूर होता गया। रोग, दु ख, अभाव, असतोप और नैराश्य वढते गये। इसी को लक्ष्य करके कवि ने गाया है :

"हम लोगो की उम्र साढे तीन बीसी है, यह बुद्धि और श्रम-बल से चार वीसी भी वनाई जा सकती है, पर उस मेहनत का फल व्यर्थ आयास और दु ख से अधिक क्या है ?"

पर कभी-कभी ऐसे फरिश्ते और साधु-संत भी आते रहे हैं जिन्होने मनुष्य के प्रकृति-पथ से हटने और मास खाने के विरुद्ध अपनी वाणी का प्रयोग किया और साथ ही उन्होने ईसा का अवतार होने की ओर सकेतमय भविष्यवाणी की।

तव इस दुनिया की काली अघेरी रात का अंत आया और

सुदर प्रभात का आविर्भाव हुआ, दुनिया के वनावनहार का जन्म हुआ।

ईसा आदम के पतन के लिए प्रायश्चित्त करना चाहते थे, वे हमे प्रकृति और ईश्वर की ओर पुनः लौटा ले जाना चाहते थे, वे मनुष्य के किये हुए पहले पाप, मांस-भक्षण को भी धो डालना चाहते थे। जब तक मनुष्य उससे मुक्त नही हो जाता वह ईश्वर की भेजी हुई खुशी का स्वागत करने योग्य कैसे हो सकता है!

ऐसी स्थिति मे ईसा मास कैसे खा सकते थे! ईसा सबसे अधिक मृदुता और दया की शिक्षा देते थे। तो क्या उन्होने अपनी आत्मा और ईश्वर की आवाज के विरुद्ध मनुष्य को राक्षस बनानेवाला पशु-मांस खाया होगा, जिसे जवह करने मे दया को एकबारगी तिलांजलि दे देनी पड़ती है! यह कार्य ईसा की दया का विरोधी होता, वह हत्या के पाप से मुक्त नही हो सकते थे। भला ईसा शरीर और आत्मा को रुग्ण बनाने वाला पाप और दोष मे फसाने वाला मांस का भोजन स्वीकार कर सकते थे!

तौरेत के अनुवाद मे की गई गलती के समान ही बाइबिल के अनुवाद मे भी गलती मिलती है। प्राचीन समय मे लोग मास खाने के पाप के प्रायश्चित्तस्वरूप देवताओ को शात करने के लिए पशु की बलि दिया करते थे। इतिहासकारो का कहना है कि एसेन जाति के लोग, जिनसे ईसा संबद्ध थे, पशु-बलि नही देते थे। इससे यह आसानी से समझा जा सकता है कि वे मांस भी नही खाते थे। धर्मशास्त्रियों की भी यही मान्यता है।

इसको इस तरह भी कह सकते है कि वे लोग पशु की बलि नही चढ़ाते थे, मास नही खाते थे। ईसा और उनके शिष्यो ने कभी कोई बलि नही दी। उन्होने तो पशु-बलि का निषेध भी किया है।

"मुझे दया चाहिए, वलि नही।"

जिस किसी ने वाइविल की भावना को समझा है और खास तौर से तौरेत की, जानता है कि ईसा ने मास खाना साफ-साफ मना किया है और इसमे शक और शुवहे की जगह ही नही है कि ईसा मांस नही खाते थे।

तर्क के बच्चे साप से पैदा हुआ विज्ञान मनुष्य को आज भी उसी प्रकार पथ-भ्रष्ट कर रहा है जिस प्रकार इसके पिता सर्प ने आदम को स्वर्ग मे किया था। यह आज भी पढ़ा रहा है कि प्रकृति-पथ का त्याग करने से मनुष्य की आत्मा और शरीर को अनेक लाभ मिलेंगे।

अभी एक विद्वान् ने कहा है कि मनुष्य ने परिष्कृत एवं वैज्ञानिक जीवन अपनाकर बडी उन्नति की है और अत मे वह देवताओं की तरह अमर हो जायगा।

पर विज्ञान धोखा देने और भुलावे मे रखने के सिवा अधिक क्या कर रहा है ?

प्रत्येक स्थिरबुद्धि और निष्पक्ष व्यक्ति यह कहेगा कि मनुष्य अप्राकृतिक जीवन को अपनाकर देवता नही वन सकता, इसके विपरीत वह रोगी, दुखी, पापी, पाजी, मूर्ख और सच्चे अर्थ मे दानव ही तो बनेगा।

जव ईश्वर के वनाये विधान की अवहेलना करनेवाले विज्ञान-द्वारा कूट तर्कपूर्ण वैज्ञानिक आधारो पर मास-भक्षण का प्रतिपादन किया जाय तो हमे वहुत सजग रहना चाहिए।

ऐसी खतरे की घडी के वास्ते हमे प्रकृति की आवाज सुननी चाहिए जो इस सवध मे निश्चित चेतावनी देती है।

पर शराव के संवंध मे ईसा का क्या रुख था ? इस प्रश्न का

उत्तर भी हमे पाना है।

तौरेत मे लिखा है :

"शोकातुर कौन है ? दुःखी कौन है ? चिंतित कौन है ? घबराहट से भरा जीवन किसका है ? अकारण चोट किसे लगती है ? आखे लाल किसकी रहती हैं ?"

"जो देर तक शराब पीते रहते है; जो नशीली शराब की खोज में रहते है।"

"उसका अभिमान करना उचित है जो शराब के चक्कर में नहीं पड़ता।"

"तू शराब को रौंद, पर उसे पी मत।"

"शराब पीकर मतवाला मत हो।"

'अंतिम भोज' के समय ईसा ने कहा था :

"आज मै तुम लोगों से कहता हूं कि अब से मैं शराब नहीं पीऊंगा और अब मै अपने पिता के राज्य मे चलकर तुम लोगों के साथ नई शराब ही पीऊंगा।"

नई का अर्थ है ताजी, जिसमे खमीर न उठा हो; नई शराब का अर्थ है अंगूर का ताजा रस। इस अवतरण से प्रतीत होता है कि इसलिए कि वे अति कठोर प्रतीत न हों और कही जो कार्य[1] वे कर रहे थे उसमें व्याघात न पडे, उन्होने एक बार के लिए शराब पीने का असाधारण कार्य कर दिया होगा (ईसा का स्वभाव बड़ा मृदु था, वे लोगो का आग्रह टाल न पाते थे), पर वे हमेशा अगूर के रस की प्रशंसा करते थे और शराब की बुराई।

कहा जाता है कि ईसा ने साना के विवाह में बरातियों के लिए

[1]इस घटना से ईसा की बुद्धिमत्ता और प्रेम-भावना की गहराई समझी जा सकती है।

शराब तैयार की थी; पर बहुत सभावना इसी बात की है कि वह शराव मादक नही थी। यही कारण है कि शादी मे गये लोगो ने उसे बहुत पसद किया था। आज भी फलो के ऐसे अनेक रस बनाये जाते हैं जिनका स्वाद शराब से हजार गुना अच्छा होता है।

: १२ :

अग्नि

मालूम नहीं, किस कुसमय में अग्नि का आविष्कार करके मनुष्य प्राकृतिक जीवन से इतनी दूर हट गया।

आग की मदद से ही मनुष्य अनेक तरह के अप्राकृतिक भोजन, शराब, दवाए आदि बना सका। सुसभ्य जीवन के सारे साधनो का—जो आरंभ से रोगो को लिये आ रहे है—और हमारे आज के जीवन के सभी कष्टो का कारण अग्नि ही है।

इसलिए अग्नि ही मनुष्य के सारे कष्टों का असली कारण है; पर आदमी आज अपने शत्रु को पहचान नही रहा है। वह समझता है कि अग्नि उसकी हितकारिणी है, उसकी वजह से उसे सुख-सपदाएं मिली है! पर इस सबध मे सत्य भावना भी जाति के प्राणो मे सन्निहित और जाग्रत है। अनेक प्राचीन कथाओ मे अग्नि का शत्रु एव राक्षसो की भाति वर्णन है। शैतान की तस्वीर मे शैतान आग उगलता दिखाया गया है। यूनान प्रोमीथियस-संबधी पौराणिक कथा मे बड़ी चित्ताकर्षक एव सुंदर रीति से बयान किया गया है कि मनुष्य द्वारा अग्नि का आविष्कार देवताओ को कितना बुरा लगा और उन्होने मनुष्य को इसके लिए कितना कठोर दड दिया और

फिर किस प्रकार ससार की सारी वदमागिया एक-एक करके अग्नि से पैदा हुई।

प्रोमीथियस (अर्थात् अग्रबुद्धि) ने स्वर्ग से अग्नि को इसलिए चुराया कि उसकी सहायता से मनुष्य को मास जायकेदार लगने लगे। प्रोमीथियस के इस कार्य से जेस नामक देवता को वहुत क्रोध हुआ और उसने प्रोमीथियस को काकेसस नामक पर्वत पर ले जाकर जंजीरो से वाध दिया। गीधों ने उसका कलेजा निकाल कर खा लिया, पर उसको मिले वरदान के अनुसार कलेजा फिर निकल आया। गीध फिर झपटे और फिर कलेजा खा गये। इस प्रकार नया-नया कलेजा निकलता रहा और गीध उसे वरावर सताते रहते।

इस कथा के अनुसार आज भी अग्नि मनुष्य का कम अनिष्ट नही कर रही है। यदि मनुष्य के पास भुनने एव राधने को अग्नि न होती तो उसके लिए मास खाना अशक्य हो जाता। फिर पशुओं को पकड़ने और मारने के औजार-हथियार भी वेकार हो जाते।

मै पहले ही वेता चुका हूं कि शराव और दवाएं अग्नि की ही सहायता से वनती है। मैने निश्चित रूप से यह भी सावित कर दिया है कि सभी वुरी बीमारिया मांस, शराव और दवाओं से ही पैदा होती हैं। मास की ही भांति अन्य खाद्यों को भी रांधने से रोग पैदा होते है।

गदी हवा-सरीखे अन्य किसी कारण से पशु वीमार न पड़ जाय तो हरा चारा और वनस्पतियां मिलते रहने पर वह खूब स्वस्थ रहता है और उसकी सुदरता वनी रहती है। यदि उसका चारा और आलू, गाजर, शलजम आदि तरकारिया उसे उवाल कर दी जायं तो यह पका हुआ भोजन लार से विना अच्छी तरह मिले ही जल्दी-

जल्दी उसके गले के नीचे सरकता जाता है और वह आवश्यकता से अधिक खा जाता है। ऐसा भोजन वह कस-कस कर खाता है जिससे वह मोटा, कुरूप, सुस्त और ढीला अर्थात् बीमार हो जाता है। इस रीति से पशु का वजन छ महीने तक तो बढता जाता है, फिर उसके अधिक खाते रहने पर भी वजन नही बढता, वरन् घटने लगता है और उसे कई तरह के रोग घेरने लगते है। उसकी पाचन-शक्ति खराब हो जाती है और पहले जहा थोडे भोजन से उसकी शक्ति बनी रहती थी, वहा अब ज्यादा-ज्यादा खाने पर भी उसका पूरा नही पड़ता।

मनुष्य जो कुछ आज खाता है उसे प्रकृति ने उसके लिए नही बनाया है, इतना ही नही, वरन् वह उसे पका-राधकर अपने लिए अधिक प्रतिकूल, दुष्पाच्य और शक्तिहीन, बना लेता है। सोचिये तो सही, आग की सहायता से हम अपना भोजन कितना हानिकारक एव अनर्थकारी बना लेते है।

इस भोजन से हमारा पाचन-सस्थान अशक्त हो जाता है और विजातीय द्रव्य (अथवा भोजन) शरीर मे इकट्ठा होने लगता है। फिर यह फोडे-फुसी, दाद-खाज, ज्वर आदि अनेक रूपो मे बाहर निकलता है। रोग के इन लक्षणो को दबाने के लिए डाक्टर चीर-फाड़ एव मरहम-पट्टी करते है और रोगी को दवा पिलाते है, पर विजातीय द्रव्य के इकट्ठा होने का काम तो बद नही होता और उसे निकालने के लिए शरीर को फिर-फिर प्रयास करना पडता है। रोगो के कारण की जानकारी न होने के कारण आज मनुष्य प्रोमीथियस की भाति बधा पड़ा है और उसे अपने कष्ट को सहना है।

यदि हम अपना भोजन बनाने के लिए आग का उपयोग न करे तो हमे पुन. प्राकृतिक भोजन को अपनाना होगा और तब

डाक्टरों को चीरने-फाड़ने का मौका ही नही मिलेगा।

जिस प्रकार गरम पानी का स्नान त्वचा और नाड़ियों को शिथिल कर देता है ठीक उसी प्रकार गरम भोजन आमाशय को। इसलिए अच्छा हो कि जो भी भोजन किया जाय वह ठंडा हो। अधिक-से-अधिक वह सिरगरम हो सकता है। गरम तो वह किसी हालत मे होना ही नहीं चाहिए। गरम भोजन बहुत हानि करता है।

यदि मनुष्य केवल फल खाता है तो गरम भोजन द्वारा होने-वाली हानि से बच जाता है। उसे भूख से अधिक खा जाने का भी खतरा नही है। अप्राकृतिक भोजन मे मनुष्य भूख के अनुसार भोजन करते रहने की कोशिश करते रहने पर भी अधिक खा ही जाता है।

इसलिए मनुष्य जब पका भोजन नही करता तो उसे इतने लाभ मिलते है—स्त्रियों को चूल्हे के सामने बैठकर जहरीले धुएं से अपना स्वास्थ्य खराब करने और रोग लगाने की जरूरत नही होती। उन्हें अच्छे कामों के लिए समय मिलता है। वे अपने बच्चों की देख-भाल अच्छी तरह कर पाती है। वे ईश्वर के बनाये सुंदर प्राकृतिक स्थानो मे अपना अधिक समय बिताती हैं। उन्हे अब अपने और अपने कुटुंबियों के लिए उन खाद्यों को पकाने की जरूरत नही होती जो समस्त रोगों एवं संसार की सारी विपत्ति के कारण हैं। ज़ल्दी ही सारे कुटुंब का स्वास्थ्य परिष्कृत हो जाता है जिससे उन्हे अपूर्व शक्ति और प्रसन्नता की प्राप्ति होती है।

फलों, विशेषत: मेवों, का भोजन शरीर को सब प्रकार की शक्तियों से परिपूर्ण करता है। मनुष्य की मानसिक वृत्तियां उन्नत होती हैं और उसे देवताओ की-सी क्षमता प्राप्त होती है।

वर्षों पहले की बात है, एक बार इंगलैंड मे कोयले की खानों के

मजदूरों ने हड़ताल कर दी थी। उन खानो मे काम के लिए कुछ घोड़े भी रखे गये थे। ये घोडे वही दस-पद्रह वर्षों से थे। जब उन्हें बाहर प्रकाश मे लाया गया तो वे पागल-से हो गये और वापस सीली, अंधेरी खानों मे चले गये। भोजन पकाना बंद कर देने पर स्त्रियो एवं उनके परिवारवालो को क्या-क्या लाभ होंगे, स्त्रियो को जब यह बताया जाता है तब उनकी भी हालत मुझे उन खान के घोडो की-सी होती दिखाई देती है। वे भी चुपचाप अंधेरे रसोईघर मे चली जाती है जहा उनके पसीने से भरे मुख को धूआं काला करता है, उनकी सूरत ही बदल जाती है। स्त्रिया ईश्वर की सर्वोत्तम रचना हैं। ईश्वर ने उनका निर्माण भाड झोकने के लिए नही किया है।

शराबी यह जानते हुए भी कि शराब पीने का नतीजा बहुत बुरा होगा, शराब पीना छोड नही पाता। विद्वान् का पढते-पढते शरीर टूट जाता है, चेहरा पीला पड़ जाता है और सिर चदला हो जाता है, वह जानता है कि ससार के सभी सुख उससे दूर हटते जा रहे है, पर वह अपनी पढाई छोड नहीं पाता। इसी प्रकार स्त्रियां यह जानते हुए भी कि भोजन पकाना बद करने से उन्हे एव उनके बच्चो को पृथ्वी का सच्चा आनद मिलेगा, वे चूल्हा झोकने सरीखे अप्राकृतिक कार्य का मोह नही छोड पाती।

जब आरभ मे प्रकृति ने मनुष्य को पैदा किया था तो वह सर्वांग-सुदर था। यूनानियो ने वीनस की मूर्ति मे स्त्री-सबधी अपनी पूर्ण भावना को अभिव्यक्त किया है। आज की स्त्रिया इस सौंदर्य से अनेक अशो मे बहुत दूर हो गई है। इस सौंदर्य की पुन. प्राप्ति का एक ही साधन है—प्राकृतिक जीवन।

प्राकृतिक जीवन स्वास्थ्य का प्रदाता है और स्वास्थ्य ही सौंदर्य है। क्या हमारी स्त्रियो का यह खयाल है कि जिस सौंदर्य की

अभिलापा स्त्रिया करती हैं वह उन्हे चूल्हा देगा।

प्रकृति के प्रागण मे रहनेवाले बूढे और जवान पशुओ में हमे वह अंतर दिखाई नही देता जो हमे मनुष्यो मे देखने को मिलता है। वडी उम्र के पशु ही पशुओं मे सुदर और मजबूत होते है और मादा के पास होने पर प्रसन्न। प्यार पुष्प से भी अधिक सुकुमार है, पर वह हमारे अप्राकृतिक जीवन के कारण वढ नहीं पाता, सभ्यता के झोंके से मुर्झा जाता है; कभी-कभी वह वच्चों मे उस प्रकाश की तरह दिखाई दे जाता है जिसका अंत शीघ्र ही होनेवाला है। आत्मा के सुदरतम आवेगो का हनन करनेवाली, धुएं-भरे रसोईघर से पुरअसर दूसरी कोई वस्तु नही है। एक स्वस्थ स्त्री, जो अपने स्वास्थ्य के प्रताप से हमेशा सुन्दर एवं युवा वनी रहती है, एक सुकोमल रज्जु के सहारे पुरुप का ही नही सारे संसार का नेतृत्व कर सकती है। क्या ही अच्छा होता कि स्त्रिया अपने को रसोईघर की काली कोठरी से मुक्त कर लेती और प्रेम के अनवरत आनंद की अधिकारिणी वनती।

आरंभ मे पुरुप को, जव वह प्रकृति से दूर नही हुआ था— उसका पतन नही हुआ था, भोजन-प्राप्ति के लिए पसीना नही वहाना पड़ता था और न उसे अपनी आत्मिक अशाति और खालीपन को दूर करने के लिए जिस-तिस काम को ही करना पडता था। निषिद्ध भोजन द्वारा ही मनुष्य पर यह गाज गिरी।

"एड़ी-चोटी का जोर लगाने पर ही तुझे तेरा भोजन मिलेगा।"

यदि स्त्रिया प्राकृतिक जल-स्नान करने लगें, वायु और प्रकाश का सहारा लें तो उनमे एक नव चेतना जाग्रत होगी और वे अंधेरे-काले रसोईघर मे काम ढूढ़ने के वजाय अन्य उपयोगी कार्यो मे लगेंगी।

सारे अन्वेपणों और आविष्कारों, जिन पर आज की सभ्यता को

नाज है और उसके हवाई जहाज, बारूद, रेल, बाइसिकल, तार, फोन आदि साधनो के खतरो और उनके द्वारा की गई हानियो को समझने के लिए हमे अपने दिमाग से सारे पूर्व सस्कारो और पक्षपात को निकाल बाहर करना होगा। आज के लोग उन्हे देखकर चौंधिया गये हैं। उन्होने ऐसे चश्मे लगा रखे हैं जिनसे अनिष्ट उन्हे वरदान प्रतीत होता है। इन सिद्धियो द्वारा प्रदत्त रोग, हडबडी, अशाति, नैराश्य और नाडी-दौर्बल्य हमे दिखाई नही देते। जो सुख ये सिद्धिया लाई हैं वह केवल मृग-मरीचिका है।

इसमे सदेह नही कि आज हम एकाएक न अग्नि का सर्वथा परित्याग कर सकते है और न तुरत सारे अप्राकृतिक कार्यो का अत ही कर सकते हैं। हम प्रकृति की ओर धीरे-धीरे ही लौट सकते है।

: १३ :

भोजन का उपयुक्त समय

प्रकृति हर एक बात के लिए अपना ठीक नुस्खा हमे दिया करती है—वह हमे यह भी बतलाती है कि हमे भोजन कब करना चाहिए।

प्रकृति मे सर्वत्र यही देख पड़ता है कि जानवर शाम को ही अपना मुख्य आहार ग्रहण करते है। जगल मे रहनेवाले जानते है कि शिकारी जानवर दिन के समय शायद ही कुछ खाते है। सूर्यास्त हो जाने पर वे खूब खाने लगते है। जाडे के दिनों मे भी, जब जमीन बर्फ से बिल्कुल ढकी रहती है, शिकारी जानवर खाद्य प्रस्तुत किये गए स्थान पर शाम को ही आते है, हालाकि दिन मे भी वे आना

चाहते तो उनके मार्ग मे कोई वाधा न पड़ती। जंतुशाला में भी उन्हें शाम को ही खिलाया जाता है।

प्राय: लोग खुमारी उतारने के लिए प्रातःकाल भी कुछ मद्यपान कर लेते हैं, पर इसका असर सायंकालीन मद्यपान से वहुत बुरा होता है। मद्यपान की गोष्ठियां भी शाम को ही जमा करती है, प्रातःकाल नही जम सकती। प्रातःकाल भोजन करने पर क्लाति जान पड़ती है, पर व्यालू के वाद ऐसी कोई शिथिलता नहीं जान पड़ती। प्रातःकाल शरीर खाद्य पदार्थ को उतना नही पचा सकता, शाम को या रात्रिकाल मे ही उदर विशेप रूप से सक्रिय रहता है।

ईसाई साधु प्रकृति के इस अभिप्राय के अनुसार दिन के समय वहुत कम खाते थे। जो लोग इस नियम का कड़ाई के साथ पालन करते थे वे तो सूर्यास्त के पहले कुछ भी नही खाते थे। सव लोग शाम को अपने मुख्य भोजन के लिए एकत्र हो जाते थे और उस समय व्यालू भी एक धर्मकृत्य ही माना जाता था। ईसा ने अपने शिष्यों के लिए यही नियम रखा था और जिस तरह नियमित स्नान आज वपतिस्मा नामक संस्कार के रूप मे रह गया है उसी तरह यह सायकाल का सहभोज भी 'प्रसाद' पाने के रूप मे वच गया है। प्रकृति का नियम तो सायकालीन भोजन का ही है, पर इसके विरुद्ध बुद्धि का प्रदर्शन करने के लिए तरह-तरह की दलीले पेश की जाती है जिनमे कोई दम नही होता।

अगर प्रातःकाल कुछ खाया भी जाय तो सिर्फ नाम के लिए। अगर दोपहर तक कुछ भी न खाया जाय तो वहुत अच्छा। दोपहर तक उपवास करना, जो प्रकृति के अनुकूल है, जरा भी कठिन नहीं है। दोपहर के समय भोजन करते समय भी अधिक न खाकर यथा-सभव कम खाने का खयाल रखा जाय। शाम को विना किसी हिचक

के भरपेट खाया जा सकता है।

मेरा उपचार करने वाले रोगियों ने यह स्वीकार किया है कि दोपहर तक कुछ भी न खाने पर उपचार से अधिक लाभ होता देख पडा। इसी विचार से मै अपने रोगियो को दोपहर तक कुछ भी न खाने की सलाह दिया करता हूं। अगर दिन का भोजन सूक्ष्म रहा है तो सोने के पहले भरपेट खाने पर किसी तरह की तकलीफ नही होगी।

: १४ :

बच्चों का पालन-पोषण

कितना मधुर और पवित्रतम आनद और कितने प्रकार के अनुभव प्रकृति हमे बच्चों द्वारा प्रदान करती है! बच्चे अनमोल रत्न है, इन्हे ईश्वर ने हमे धरोहर के रूप मे दिया है। बच्चेवालों के कर्त्तव्य गुरु है और जिम्मेदारी बहुत बडी। हमे अपने बच्चो के लालन-पालन और शिक्षा का अधिक-से-अधिक ध्यान रखने की आवश्यकता है। इस सबध मे भी हमे प्रकृति से ही सीख लेनी चाहिए और उसी के बताये मार्ग पर चलना चाहिए।

प्रकाश मे आने के बहुत पहले ही शिशु मे प्राण पड जाते हैं।

जिस स्त्री को बच्चा होनेवाला हो उसका यह समझ लेना कर्त्तव्य हो जाता है कि एक नवीन प्राणी के प्रति उसका एक पवित्र दायित्व पैदा हो गया है और ईश्वर ने उसे एक गंभीर काम सौंपा है। इस काल मे उसे गप-बाजी, दुष्कामना, ईर्ष्या, घृणा, स्पर्धा और सभी प्रकार के उत्तेजक एवं अशांत करनेवाले कार्यों से किनाराकशी

अख्तियार करनी चाहिए, उत्तेजना तथा घवराहट पैदा करनेवाले आमोद-प्रमोद से दूर रहना चाहिए। इसके वदले उसे विधाता की शांत और गंभीर प्रकृति का चितन करना चाहिए और आनंदपूर्वक प्रकृति मे विचरण करना चाहिए। मैंने अपनी इस पुस्तक में प्राकृतिक जीवन का यथेष्ट वर्णन किया है। गर्भिणी स्त्री के लिए यह जीवन विताना आवश्यक है। इस समय वेश-भूपा के संवंध मे भी और दिनों की भाति अविवेकी न वनना चाहिए। माताओं को इसका ज्ञान नही है कि वच्चा जनने के पहले ही वे उसके प्रति कितना वड़ा पाप कर सकती हैं।

स्त्री के गर्भ मे जव वच्चा वढ़ता रहता है उस समय उसके जीवन के परिवर्तनों का कितना सीधा प्रभाव वच्चे पर पड़ता है, यह हम नही जानते, यह हमारा दुर्भाग्य ही है।

ऐसे अनेक जड और पागल दीख पड़ते है जिन्हे दुनिया मे न शाति ही है न किसी प्रकार का आराम, और जो पाप और दोष में लिपटे ही रहते है और पृथ्वी पर भारस्वरूप हो रहे है। उनमे से अधिकाश के कष्ट का कारण उनके गर्भ मे रहते समय उनकी माता पर पडा हुआ कोई अशुभ प्रभाव ही है।

कितना अच्छा होता कि इन अभागो को देखकर माता-पिता इसका अंदाजा कर सकते कि वे अपने वच्चो के प्रति कितना वड़ा पाप कर सकते हैं।[1]

---

[1]यहा मैं डाक्टर राश की लिखी छोटी पुस्तक "स्त्रियो के अधिकतर जीर्ण रोगो एवं उनके स्थायी कष्टो का कारण" की ओर पाठको का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हू। यह पुस्तक विवाहितो को वताती है कि सयोग-सवधी कितनी भयकर भूलें उनसे वन पडती हैं। लोगो की ऐसी धारणा-सी हो रही है कि विवाहित अनियन्त्रित सयोग कर सकते है। ये घातक विचार हैं और इनका

जो स्त्री थोडा भी प्राकृतिक जीवन व्यतीत करती है उसे प्रसव-समय की पीडा से डरने की जरूरत नही है। उसे बड़ी आसानी से बच्चा हो जायगा। यदि पीड़ा हो तो पेडू पर मिट्टी की पट्टी रखने से बहुत मदद मिलती है। सौरी मे वायु और प्रकाश की बड़ी आवश्यकता होती है अत. सौरी की सारी खिड़किया खुली रखनी चाहिए।

नवजात शिशु को गरम पानी से न नहलाकर ठडे पानी से शीघ्रता से नहलाना और साफ करना चाहिए। इससे बच्चे को शक्ति प्राप्त होती है और, वह सहनशील बनता है। साल की कोई भी ऋतु

परिणाम माता-पिता और उनके बच्चो को भी सहना ही पडता है। यह पाप है, पर खेद है कि अविवाहितो द्वारा किये गए पाप को ही आज का समाज दुराचार कहता है।

संयोग जाति-रक्षा के महान् उद्देश्य के लिए ही होना चाहिए। अन्य जीवो की तरह आरम्भ मे मनुष्य इस सम्बन्ध मे भी प्रकृति की आवाज सुनता था। यह आवाज होती थी एक लम्बे अतर पर, सुनाई देती थी स्पष्ट। आज इस सम्बन्ध मे भी मनुष्य अपनी हीन एव घृणास्पद इच्छा का शिकार हो रहा है। बच्चा पैदा करने के लिए आज सयोग नही होता, लोग तो यह देखकर घबराते हैं कि सयोग से बच्चे भी पैदा होते है। प्रकृति के इस कार्य मे अक्सर बाधा डालने की कोशिश करते हैं। वाह! प्रकृति और मनुष्य की कैसी प्रतिद्वद्विता चल रही है? प्रत्येक पत्र मे गर्भ-निरोध की दवा का विज्ञापन खुल्लमखुल्ला छपता है। प्रकृति के विरुद्ध किये जाने वाले ये पाप बताते हैं कि मनुष्य जाति ह्रास की ओर अग्रसर हो रही है। आज अनाचार और अनैतिकता की कोई सीमा नही रह गई है गो कि इसका फल मनुष्य को पग-पग पर भोगना पड रहा है। अब शीघ्र ही ज्ञात हो जायगा कि इस सम्बन्ध मे मनुष्य जाति ने अपनी कितनी हानि की है। पर लोग यदि प्राकृतिक जीवन की ओर अधिकाधिक अग्रसर होगे तो ये पाप अपने-आप बद हो जायगे अन्यथा इनको निश्चित रूप से कम किया जा सकेगा।

क्यों न हो, वच्चों को जव भी नहलाया जाय, ठंडे पानी से ही—इसकी आदत आरंभ से ही डालनी चाहिए, इससे वच्चे जन्म से ही वीमार एवं दुर्वल होने से वचेंगे। कड़ाके की सर्दी में इस पानी का ताप अधिक-से-अधिक कमरे की गरमी जितना कर लिया जा सकता है।

वच्चे को कोट और मोजों मे कसने की जरूरत नही है। उसके शरीर पर वायु और प्रकाश लगने और उसमें प्रवेश करने का पूरा मौका देना चाहिए। अक्सर वच्चे को नंगा रखना चाहिए, इससे उसकी जीवनी शक्ति वढ़ती है।

जव नवजात शिशु अपनी संसार-यात्रा आरंभ करता है स्वतंत्रता, वायु और प्रकाश के प्रति उसके मन में चाह उत्पन्न होती है; पर इसके विपरीत जव वह अपने को कपड़ों से लपेटा और वंधा हुआ, दूषित वायु से परिपूर्ण कमरे मे पाता है तो जीवन के प्रति उसका सारा उत्साह ही समाप्त हो जाता है। यदि वच्चे को कभी हवा खिलाने ले भी जाते हैं तो मोटे-मोटे कपड़ों से ढककर और जिस गाड़ी मे उसे टहलाने ले जाते है उसे भी इस डर से पूरी तरह ढकी रखते है कि वच्चे तक कही वायु और धूप पहुंच न जाय।

गांव के लोग अपनी गाय-वकरियों के वच्चों को खास तौर से धूप में ले जाते हैं और यह देखकर खुश होते हैं कि वच्चे धूप खाकर प्रसन्न होते हैं और शीघ्रता से वढते हैं। अपने वच्चों को हम शक्ति-प्रदायिनी वायु और जीवनदायी सूर्य से दूर रखते हैं। यदि इस दशा मे वच्चे कमजोर रहें या अकाल ही कालकवलित हो जायं तो इसमे क्या आश्चर्य है?

वच्चों के दिन भर रोने और रो-रोकर अपने को थका डालने तथा माता-पिता को हैरान करने का कारण वच्चे के माता-पिता ही

है। बच्चे को जरा स्वतत्र कीजिये, उसके बदन पर से भारी कपडे हटा दीजिये, उसे वायु और प्रकाश मे रखिये, फिर देखिये वे कितने शात रहते है और कितनी जल्दी-जल्दी वढते हैं। यदि इस सारी गडबडी के कारण वच्चे की पाचनशक्ति खराब हो जाय तो पेडू पर ठडी पट्टी रखनी चाहिए। ठडे पानी मे भिगोकर कपडे की पट्टी भी रखी जा सकती है, पर मिट्टी की पट्टी से शीघ्र लाभ होता है।

आज जैसी भयकर भूले वच्चो की चिकित्सा मे की जाती है उन्हे देखकर तो ताज्जुब ही होता है कि क्यो इतने कम ही बच्चे मरते है। इससे प्रमाणित होता है कि मनुष्य को आरभ से ही पशु से अधिक जीवनी-शक्ति मिली होती है। क्योकि मनुष्य का बच्चा जैसे अप्राकृतिक उपचारो को सहकर जीवित रहता है वैसा उपचार यदि पशु के बच्चे का किया जाय तो वह कभी भी जीवित नही बच सकेगा।

बच्चो के जीवन के आरभिक वर्षो मे की गई गलतियो का बुरा असर उनके जीवन-पर्यंत चलता रहता है। इसलिए हमे सदा प्रकृति का अधिक-से-अधिक सहारा लेना चाहिए।

शुरू मे बच्चे को माता का ही दूध मिलना चाहिए। गर्भवहन करते समय एवं बच्चे को पिलाते समय यदि माता प्राकृतिक जीवन व्यतीत करे तो निश्चय ही उसे अपने बच्चे के लिए पूरा दूध होगा। यह सोचना मूर्खता से खाली नही है कि माता के मास खाने और शराब पीने से वच्चे को यथेष्ट शक्ति और पोषण मिलेगा। ऐसा करने से तो माता को दूध कम होगा और बिल्कुल खराव होगा।

अप्राकृतिक जीवन व्यतीत करने के कारण यदि माता का दूध सूख जाय तो बच्चे को नीरोग गाय का दूध मिलना चाहिए। इसके अभाव मे उसे चरनेवाली, स्वस्थ और स्वच्छ गाय का कच्चा, विना

उवाला हुआ दूध देना चाहिए ।

हम लोग कीटाणुओं के डर से कच्चा दूध वर्तते डरते हैं और समझते हैं कि दूध को गरम करने से कीटाणु मर जाते हैं और दूध निरापद हो जाता है । कीटाणु अन्य कृमियों की भांति ही सड़न से पैदा होते हैं । जिस प्रकार मैली त्वचा पर चीटिया-फतिंगे आ जाते हैं उसी प्रकार जव शरीर मे स्थित विजातीय द्रव्य सड़ने लगता है तव कीटाणु पैदा हो जाते हैं । यदि शरीर मे कीटाणु वाहर से घुस भी जायं तो वहां उन्हे उपयुक्त खाद (विजातीय द्रव्य) न मिलने पर वे कभी जीवित न रह सकेंगे । यदि हम प्राकृतिक जीवन व्यतीत करें, अपने शरीर मे विजातीय द्रव्य न पैदा होने दे तो हमे कीटाणुओं से डरने की आवश्यकता नही है; पर यदि हमारा शरीर गंदा हो तो खाद्यों के उवालने अथवा कृमि-विहीन करने की कोई क्रिया हमे उनसे वचा नही सकती । यदि शरीर मे या दूध मे विजातीय द्रव्य पैदा हो गया है तो वहा कृमियों का होना आवश्यक है । वे वहां पहुंचकर एक आवश्यक कार्य करते हैं ।

यदि रोगी गाय का दूध उवालने से उसके कीटाणु मर भी जायं तो वह विजातीय द्रव्य तो नष्ट नही हो जाता जो सचमुच भयानक चीज है और जिस के कारण उस दूध की ओर कीटाणु आकृष्ट होते हैं ।

यदि वच्चे के शरीर में विजातीय द्रव्य यथेष्ट मात्रा मे हो तो उसे कीटाणुओं से किसी प्रकार भी नही वचाया जा सकता और यदि न हो तो कीटाणु उसे कोई हानि नही पहुंचा सकते । जिस कच्चे दूध मे कीटाणु पैदा हो गये होते हैं उसमे उवाले दूध की वनिस्वत सड़न शीघ्र पैदा होती है और वह पचता भी शीघ्रता से है । कीटाणु कभी-कभी पाचन मे भी सहायक होते हैं । दूध को उवाल कर हम

उसे दुष्पाच्य अतएव हानिकर वनाते है, ऐसे दूध के पीने से वच्चें के शरीर की वाढ रुकती है।

भाप या अन्य किसी प्रकार से गरम किया हुआ दूध भी उवाले दूध के समान ही हानिकारक है।

इसलिए वच्चे को, जव तक वह मेवे खाने लायक न हो जाय, माता या गाय का ही दूध पिलाना चाहिए।

जई के दलिये आदि का भी, जो वच्चो के भोजन के नाम से वाजार मे डिव्वा-वंद विकते है, पूरा वहिष्कार होना चाहिए। इनके मुकावले मे वच्चो को कुछ उवली तरकारिया और थोडी रोटी देना अच्छा है। वच्चो को छुटपन से ही दूध और मेवे अच्छे लगते है और ये उनके अनुकूल भी होते है। फलाहार से वच्चे की जो शारीरिक और मानसिक उन्नति होती है उसे देखकर माता-पिता को हार्दिक आनद प्राप्त होता है।

हमारे आज के वनावटी जीवन के दु खद वातावरण मे आज भी स्वर्ग का एक द्वार खुला हुआ है। वह है वच्चे। वच्चो को फल खाने दें अन्यथा आप इस द्वार को भी वद कर देगे और उनके वहुत से आनद और प्रसन्नता से उन्हे वचित कर देगे। उन्हे कच्चे और अवपके फल भी विना किसी डर के दिये जा सकते है। ये उनके लिए विशेष लाभदायक है।

ईसा ने कहा है .

"वच्चो को कष्ट न दो, उन्हे मेरे पास आने से मत रोको।"

ईसा के अधिकतर अनुयायी गावो मे रहते थे और कारीगरी तथा किसानी का काम करते थे। उनमे जो कट्टर होते थे वे हमेशा खुले मे पहाड़ अथवा रेगिस्तान मे रहते थे और उनमे से वहुत से केवल वही खाते थे जो पृथ्वी अपने-आप विना किसानी या वागवानी

के उपजाती है। इन पूर्णतः प्राकृतिक जीवन वितानेवालो को कभी-कभी शिक्षरण के लिए वच्चे सौंपे जाते थे।

इस प्रकार जब 'जान' निरे वच्चे थे, उनके माता-पिता ने उन्हे शिक्षा प्राप्त करने के लिए एक रेगिस्तान मे भेज दिया था। उनके वारे मे कहा गया है :

"वच्चा वढा और मजवूत हो गया और इजराइलियों का साथ होने तक रेगिस्तान मे ही रहा।"

हां, यदि वच्चे प्राकृतिक जीवन व्यतीत करना आरंभ कर दें तो यह निश्चित है कि उन्हे स्वास्थ्य और आनंद मिलेगा, जिसे प्राप्त कर सकना वड़ो के लिए साधारणतः संभव नही है। इसलिए मैं माता-पिताओ से वहुत जोर देकर कहना चाहता हूं कि वे अपने वच्चों को प्राकृतिक जीवन व्यतीत करने दें, उन्हें प्रकृति-पथ पर लौटा ले चलें। इस कार्य के फलस्वरूप इस संसार मे वे अनिर्वचनीय आनंद के अधिकारी होंगे और जव वे स्वर्ग मे पहुंचेंगे तो ईश्वर उन्हें उनके इस उत्तम कार्य के लिए पुरस्कृत करेगा।

जिन वच्चों की नैसर्गिक प्रवृत्ति तीव्र रहती है वे अक्सर पका भोजन ग्रहण नही करना चाहते, उन्हे फल ज्यादा पसंद आते हैं; पर उन्हे जवरदस्ती अप्राकृतिक भोजन कराया जाता है और कभी-कभी तो मार-मार कर। इसके फलस्वरूप वे स्वभावतः वीमार पड़ते हैं, उन्हे दवा दी जाती है, वे फिर इसे भी लेने मे पूरी आनाकानी तथा विरोध करते हैं, इस समय भी माता, जिसके हृदय के कोने-कोने मे रोगी बच्चे के प्रति प्यार भरा रहता है, कठोरता से काम लेती है, गोकि उसका हृदय अंदर से रोता रहता है; वच्चे को जवरदस्ती दवा पिलाई जाती है और कभी-कभी तो कार्य की सफलता के लिए छड़ी से भी काम लेना पड़ता है; पर जव अप्राकृतिक चिकित्सा का

प्याला लवरेज हो जाता है, बच्चा उसके बोझ के नीचे टूट जाता है और धरती माता की शीतल गोद मे शरण पाता है। माता दु.खभरा टूटा दिल लिये बच्चे की छोटी कब्र के पास खड़ी रहती है, बेचारी को इसका पता नही होता कि बच्चे की मृत्यु का कारण वह स्वयं है।

साधारणतः माता-पिता यही चाहते है कि उनके बच्चे सदा मोटे-ताजे बने रहे। जबतक कि उनके बच्चे मोटे किये गए सूअरो की भाति या चित्रो मे अंकित देवताओ के दरबार मे तुरही बजानेवाले फूले हुए बच्चो की तरह नही हो जाते, उन्हे सतोष नही होता।

बडे भी मोटे, मासल होने और अपना वजन बढाने की फिक्र मे रहते हैं। पहले वे यह नही चाहते कि उनका पेट लटक आये, तब भी ये आदमी का मूल्य खिला-पिलाकर खाने के लिए मोटे किये गए पशु के समान ही समझते है।

यह भी प्रकृति के विरुद्ध है, अत सर्वथा गलत है।

प्रकृति के प्रागण मे विचरण करने वाले पशु को देखिये, वह बच्चा हो या बड़ा या बूढा, उसका शरीर बड़ी सुदर रीति से सुगठित एव संतुलित होता है। न उसका शरीर मोटा होता है और न कोई अंगविशेष ही फूला रहता है।

मनुष्य को तभी स्वस्थ समझना चाहिए जब उसका शरीर सुडौल हो एवं उसके अग अनुपात-युक्त हों तथा वह मोटा-भद्दा नही हो जाता या उसके शरीर पर जगह-जगह चर्बी नही चढ जाती। अधिकतर फल खाकर रहने वाले का ही शरीर सुंदर एव सुगठित रह सकता है और यही भोजन मनुष्य को स्वस्थ रखता है। इसलिए बच्चो को अधिकतर फल खिलाकर ही रखना चाहिए ताकि वे भद्दे-मोटे न होकर सुदर एवं सुरूप हो। स्वस्थ और सुदर शरीर का गठन कैसा होना चाहिए यदि यह जानना हो तो अपोलो और बेलवेडियर की

मूर्तियां देखी जा सकती है ।

सबसे अधिक भयानक एवं घातक गलती, जो मनुष्य ने अवतक अनजान में प्रकृति के प्रति की है, वह है टीके का चलन ।

यह विज्ञान एवं आंकड़ों के आधार पर सावित कर दिया गया है कि टीका लगाना अनिवार्य होने के पहले वच्चों को चेचक अधिक होती थी । जो प्रकृति को समझता है वह आसानी से अनुमान कर सकता है कि टीका लगाना कितना नुकसानदेह है । छोटे वच्चों में काफी जीवनी-शक्ति होती है जो उनके शरीर मे, इकट्ठे पैतृक विजातीय द्रव्य को, वाल-रोग कहे जाने वाले उभारों द्वारा, जिनमे चेचक भी एक है, निकालने की कोशिश करती है । इस शक्ति को टीके का जहर बेकाम कर देता है । इस प्रकार वच्चों की वाढ मे अडचन पड़ती है और उन्हे प्रकृति का सहारा पाकर शरीर का शोधन करने वाले तीव्र रोग के बजाय बुरा जीर्ण एवं साघातिक रोग हो जाता है ।

टीका एक बार देने के वाद जव वह कुछ वर्षों वाद दुहराया जाता है उस समय यह स्पष्ट दिखाई देने लगता है कि टीके के फलस्वरूप शरीर मे कई प्रकार के रोग उत्पन्न होने की चेष्टा कर रहे हैं ।

पता नहीं मनुष्य-जाति को इस भयंकर भूल से कव मुक्ति मिलेगी जिसके द्वारा वह अपने वच्चों पर कानूनन वड़े-से-वड़ा कष्ट और कठोर-से-कठोर यातना लादती है ।

मैं यहा फिर जोर देकर यह कहना चाहता हूं कि गंडमाला, लकवा, मिरगी एव अन्य अनेक प्रकार के नाडी-संवधी रोग, जो लोगो को अक्सर होते रहते हैं, अधिकतर टीका लगवाने के फल हैं ।

यदि टीका लग ही जाय तो उस पर मिट्टी की ठंडी पुलटिस

वांधनी चाहिए और उसे दिन मे कई वार और कई दिनों तक बाधते रहना चाहिए। पुलटिस, जहा टीका लगा हो उसके चारों ओर दूर तक फैला दी जाय। इस वक्त बच्चा सर्वथा प्राकृतिक जीवन व्यतीत करे। यदि इतना कर लिया जाय तो टीके से कोई हानि होने की संभावना नही रहेगी।

यदि टीका लगाने पर उस जगह दाने न उभरे तो कानूनन फिर टीका लगवाना होता है, ऐसी हालत मे यदि दुवारा टीका लगे तो उसकी चिकित्सा पहले बताई रीति से करनी चाहिए। तीन वार टीका लगाने के वाद चौथी वार टीका लगाने की इजाजत कानून नही देता।

रोगनाशक टीको के विरोध मे यहा कुछ विशेष तौर से कहने की आवश्यकता नही है। ये भी कम जहरीले नही होते। टीका लगाने से डिप्थीरिया दव सकता है, पर इसके फलस्वरूप डिप्थीरिया से भी भयानक रोग कैंसर, पागलपन आदि उभर सकते है।

अन्य तीव्र रोगो की तरह डिप्थीरिया का इलाज भी वच्चे का सर्वनाश किये वगैर प्राकृतिक रीति से आसानी से एवं निश्चयात्मक रूप से हो सकता है। मृत्यु के इस दूत से माता-पिता को जरा भी डरने की जरूरत नही है। इस रोग से घवराकर जल्दी मे उन्हे अपने वच्चे को इसके "प्रतिरोधक" इजेक्शन नही लगवाने चाहिए।

वच्चो के सारे रोग स्वास्थ्यकारक उभारमात्र है, उनके सवध मे किसी प्रकार की चिंता की जरूरत नही है। कोई भी रोग (डिप्थीरिया, मोतीझरा, लाल बुखार, मीयादी बुखार आदि) होने पर पहली वात यह करनी चाहिए कि कमरे की खिडकिया खोलकर वच्चे को नगा ही लिटा देना चाहिए और यदि वह चाहे तो वही चलने-फिरने भी देना चाहिए। यह जितनी ही देर तक किया जा सके

उतना ही अच्छा है। यदि संभव हो सके तो इस समय बच्चे का खुली जगह टहलना ज्यादा अच्छा है। इस समय प्राकृतिक स्नान भी कराना चाहिए और पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी रखनी चाहिए। यदि बच्चे को डिप्थीरिया हो गया हो तो मिट्टी की पट्टी गर्दन पर रखनी चाहिए। यह भी आवश्यक है कि बच्चे को कुछ भी खाने को न दिया जाय, और यदि दिया भी जाय तो बहुत थोड़ा, सो भी फल और मेवे। ज्यों ही संभव हो, बच्चे को बाहर खुली जगह मे जाने देना चाहिए (यदि संभव हो तो नंगे बदन ही)। इस विधि से रोग जिस तेजी से जायंगे उसे देखकर आप को आश्चर्य होगा और आप देखेंगे कि रोग जाने के बाद बच्चा अधिक प्रसन्न रहने लगा है और उसके चेहरे पर आभा आ गई है। तीव्र रोग के द्वारा बच्चे का शरीर बहुत से विजातीय द्रव्य और कूडे-करकट से अपने को मुक्त कर लेता है।

हमारे अनेक अप्राकृतिक ढंगों (गलत भोजन, वायु एवं प्रकाश-विहीन कमरे का वास, मोटे रंगीन चुस्त कपड़ों का पहनावा) के कारण बच्चे सुकुमार हो जाते है। अक्सर वे मद्य-रूपी राक्षस के चंगुल से भी दूर नही रखे जाते। स्कूल मे पहुंचते-पहुंचते लड़के अपने बड़ो के दोषो की नकल करने लगते है। वे बड़े घमंड के साथ शराब और सिगरेट-बीड़ी पीने लगते है। सभी बड़े, और खास तौर से अध्यापक, यदि उच्च जीवन का उदाहरण बालकों के सामने रख सकें तो इस दिशा मे बहुत काम हो सकता है।

विलासिता एवं अन्य प्रकार की अप्राकृतिक आदतों तथा आजकी सर्वाहृत एवं सर्व-गुणकारी (!) स्कूल की पढ़ाई की अविवेकपूर्ण आवश्यकताओ एवं श्रम के कारण बच्चों की नाड़ियों पर आवश्यकता से अधिक भार पड़ता है और वे कमजोर हो जाते है। इस प्रकार बच्चों मे असमय ही कामुकता की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है जिसे

वे वश मे नही कर पाते। फलतः जवानी के सब से अधिक घातक शत्रु हस्तमैथुनका पदार्पण होता है। बच्चे के आचरण मे आये शर्मीलेपन को देखकर सजग माता-पिता को तुरत अदाजा होजाता है कि उनका लड़का यौवन के सवसे बडे शत्रु के चगुल मे फस गया है जिस से छुटकारा पाने के लिए वेचारा तड़फड़ाया करता है, मन-ही-मन बुरी तरह अपनी भर्त्सना करता है और आत्मग्लानि से मरता रहता है। माता-पिता को चाहिए कि इस रोग के शिकार बच्चे को कोई दंड न दें। ऐसे बच्चे का मानसिक एव आत्मिक विकास मार-पीट और जोर-जबरदस्ती के वजाय विल्कुल भिन्न रीति से ही करना चाहिए। दड, खास तौर से शारीरिक दड तो कभी देना ही नही चाहिए। कडे दड के भय से बच्चे को इस रोग से मुक्त करने की कोशिश करना बिल्कुल गलत है। इस वक्त तो बच्चे को प्यार की खास तौर से जरूरत होती है। माता-पिता को बडे प्यार और कोमलता से ऐसे बच्चे की चिकित्सा जल, प्रकाश, वायु, प्राकृतिक भोजन, कसरत आदि प्राकृतिक साधनो द्वारा करनी चाहिए। इस विधि से उनका बच्चा उस राक्षस के हाथ से शीघ्रता से मुक्त हो जायगा और फिर स्वाभाविक रूप से प्रसन्न-वदन रहने लगेगा और उसका चेहरा चमकने लगेगा।

जब बच्चो को इस तरह नही सभाला जाता तो वे जवान तो हो जाते हैं, पर उनमे न जवानी का उत्साह होता है न आनंद, जीवन उन्हे भारस्वरूप लगता है। वे कमजोर, चिड़चिडे और थके-से रहते है और उनमे किसी प्रकार की आशा नही रह जाती। उनकी आखो को देखने से प्रतीत होता है कि वे आत्मग्लानि और दु.ख मे डूबे रहते हैं।

अक्सर बच्चो को सोये-सोये विछावन पर पेशाव कर देने की

आदत पड़ जाती है। यह आदत भी प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा छूट जाती है। इस रोग से पीड़ित बच्चों को भी किसी प्रकार का दंड देना पाप है।

एक वार फिर मै नंगे पैर चलने और खास तौर से बच्चों के लिए नंगे पैर चलने की आवश्यकता पर जोर देना चाहता हूं। बच्चों के कपड़ों को भी सादा और प्राकृतिक रखने पर मै एक वार फिर जोर देना चाहता हूं। छाती को व्यर्थ के कसे कपडे से ढके रहने की जरूरत नही है। इस नियम का बच्चों और बड़ों को समान रूप से पालन करना चाहिए। कपड़े ढीले रहे ताकि हवा छाती तक पहुंच सके। बच्चों के कपडे वनाते वक्त इसका खास खयाल रखना चाहिए।

कई वार प्राकृतिक जीवन के अनुसरण से बच्चों की वढ़ी मानसिक शक्ति देखकर मुझे आश्चर्य हुआ है। दरजे मे हमेशा पिछड़े रहनेवाले लड़कों को शीघ्र ही पाठ याद होने लगा और वे जल्दी विना किसी प्रयास के अपने साथियो से आगे वढ़ गये।

मैंने देखा कि इनमे से कई युवक, जो फौज मे भर्ती हो गये, वहां के कठिन जीवन और परिश्रम को खुशी-खुशी विना किसी प्रयास के वर्दाश्त कर रहे थे। आगे चलकर तो उन्होने फौज मे वड़ा नाम कमाया।

मैंने वार-वार कहा है कि प्राकृतिक जीवन का मनुष्य पर एक वडा प्रभाव यह भी पड़ता है कि मनुष्य की आत्मा परिष्कृत होती है और वह भद्र वनता है। यह चीज वच्चों मे वरावर देखने को मिल सकती है। निश्चय ही प्राकृतिक जीवन वह नीव है जिस पर आत्माके लिए ईमानदारी और सचाई का भव्य प्रासाद वन सकता है। इसलिए प्राकृतिक जीवन व्यतीत करते समय हमे आत्मा को निर्दोष वनाने का पूरा प्रयास करना चाहिए और वच्चो की शिक्षा-दीक्षा में इसका विशेष यत्न करना चाहिए।

: १५ :

शिक्षा क्या है ?

मनुष्य ईश्वर की प्रतिकृति है, वह प्यार का सार है। इसलिए उसकी शिक्षा प्रकृति के अनुरूप ही होनी चाहिए। जहा तक बन सके मनुष्य मे ईश्वरीय भावको लौटाना चाहिए।

ईसाने कहा है :

"तू अपने सच्चे मालिक ईश्वर को पूरे दिल से, अपनी रूह और अपने दिमाग की सारी ताकत के साथ प्यार कर।"

"अपने पडौसी को तू उसी तरह प्यार कर जिस तरह तू अपने को प्यार करता है।"

इन शब्दों मे मनुष्य के लिए सही प्राकृतिक शिक्षा भर दी गई है।

शिक्षण पर आजतक जो वडे-से-बडे ग्रथ लिखे गये है, इस गभीर विषय पर जितने अधिक-से-अधिक विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान हुए हैं उन सब मे मिलाकर उतना भी सार नही है जितना ईसा के केवल इस एक वाक्य मे है। आज लोग युवको को वैज्ञानिक ढग से शिक्षा देते हैं, पर होता यह है कि—

"ज्ञान बढ़ जाता है; पर हृदय चला जाता है।"

जो लड़का जिस तिस तरह लैटिन की पहली किताव के शब्द याद कर लेता है, वह अपने साथ खेलनेवाले लडके को, जो साधारण स्कूल मे पढ़ने जाता है, हेठी निगाह से देखने लगता है और जल्द ही उसका साथ छोड़ देता है। इस प्रकार ज्यो-ज्यो लड़का पढाई मे बढ़ता जाता है, उसका झूठा घमंड और वनावटी ढग वढता जाता है जो वहुत खतरनाक है। लेकिन हमे आज की शिक्षा द्वारा पैदा हुई कृत्रिमता और खोखलेपन तथा सचाई के अतर को समझना चाहिए। हमारे आज के युवक की चाल सुधारने के लिए

उससे ड्रिल कराई जाती है, उसे वाहरी चाल-ढाल के सव नियम वताये जाते है, पर उसके हृदय और स्वभाव को सुदर वनाने के लिए कुछ भी नही किया जाता। उसकी आत्मा मे दृढ़ता आने के वदले उसका अधःपतन हो जाता है। अप्राकृतिक जीवन विताने वाले फूहड़ अशिक्षित लड़कों का उदाहरण भी अनुकरणीय नही है; पर उनका अपरिष्कृत व्यवहार उस नम्रता और मैत्री-भावना से अच्छा है जिनका हृदय से कोई संवंध नही है। वनावटी नम्रता और सहृदयता धोखा और दगावाजी नही तो और क्या है ! अतः वच्चों को प्राकृतिक जीवन विताना सिखाना चाहिए। यह उन्हे ईश्वर और मनुष्य को प्यार करना सिखायेगा और प्रेम ही हमारे जीवन को उन्नत वना सकता है। हमे उन्हे अपने साथी को सच्चे हृदय से प्यार करना सिखाना चाहिए; क्योकि ईसा के शव्दो को दूसरी तरह यों भी तो कहा जा सकता है कि जो अपने पड़ौसी को प्यार करता है वह ईश्वर को भी प्यार करता है। युवकों को ईश्वर को प्यार करना अवश्य सीखना चाहिए और अपने साथियों के प्रति अपने हृदय मे प्रेम और मैत्री की भावना रखनी चाहिए और उन्हे गरीव-अमीर का खयाल किये वगैर इसे प्रदर्शित करना चाहिए। जिन माता-पिता के हृदय की, प्रेम की दैवी विभूति, नष्ट नही हो गई है अथवा जिन्होंने फिर उसे जाग्रत कर लिया है उन्हे अपने वच्चों मे प्यार पैदा करने की रीति स्वयं ज्ञात हो जायगी। केवल इसी विधि से मुक्ति एवं शांति-प्रदायिनी शिक्षा एवं सद्गुणो की प्राप्ति हो सकती है। केवल प्राकृतिक जीवन और अपने साथियों के प्रति सच्चा प्यार मनुष्य को इस ससार मे आनद और प्रसन्नता प्रदान कर सकते है और इस प्रकार प्राप्त आनंद और प्रसन्नता किसी अवस्था मे भी मनुष्यो का साथ नही छोड़ते।

ऐसे वच्चे के जीवन मे दुःख और अभाव का कभी प्रवेश नही

होता ।

कितने ही अभिभावको का खयाल है कि कालेज की शिक्षा प्राप्त कर लेने पर ही उनके वच्चे का जीवन सुखी हो सकेगा । यह शिक्षा दिलाने के लिए वे वहुत चिंतित रहते है और विना वच्चे के स्वास्थ्य का खयाल किये उसे कालेज मे भेजते है और इस प्रकार वे उसे घोर विपत्ति मे फसा देते है । वे यह भी चाहते है कि लडका पढ-लिखकर ऊचा ओहदा पाये, उसे लंवी तनख्वाह मिले और लोग उसका खूव आदर और सम्मान करे ।

वाहरी सम्मान की चकाचौध मे मत आइये । अक्सर लोग इनके अंदर-ही-अदर पीडाओ से भरा भारमय जीवन व्यतीत करते है । सुखी वही है जो पूर्णतया स्वस्थ है, जिसकी आवश्यकताए कम है और जो सादगी से और प्रकृति के निकट रहता है । ऐसा आदमी स्वतत्र है, उसके हृदय मे मनुष्य के प्रति प्यार होता है और ईश्वर की सहायता के प्रति विश्वास ।

जिस लड़के पर हमेशा मानसिक कार्य और चिंता का वोझ पडा रहता है उसकी नाड़िया दुर्बल हो जाती है, फलत उसकी सारी मेहनतों के वावजूद रोग और कष्ट ही उसके पल्ले पड़ते है । कोशिश करके भी नैराश्य ही उसके हाथ आता है । ओहदा, सम्मान, नाम, धन उसे नजदीक आये दिखाई देते है, पर वे उसकी पकड मे नही आते । लड़कियो पर मानसिक कार्य लादना तो और भी समझ मे नही आता । उनके लिए तो वह लड़को से भी अधिक हानिकारक है । स्त्रियां और लड़किया मानसिक कार्य की कठिनाई सहने के लिए वनी ही नही है । जिन माता-पिताओ को इसकी अनुभूति हो गई है कि सुख, वडे कहलानेवाले समाज मे सीमित न होकर, व्यक्ति के हृदय मे है और फिर निर्धन सतोषी लोगो मे ही परिव्याप्त है वे

वहुत सोच-समझ कर ही अपने वच्चों के लिए धंधा चुनेगे।

सभ्यता, विज्ञान और धन के छल-भरे सुख और आनंद के वदले प्रकृति के साहचर्य मे प्राप्त सच्ची प्रसन्नता को पसंद कर, सकना आज वहुतों के लिए कठिन है। जिन माता-पिताओं ने विचार-पूर्वक अपना दृष्टिकोण वदल लिया है, जो अभिमान-वश कोई कार्य नही करते, न अपने पर आम विचारों का असर ही पड़ने देते है और जो अपने हिताहित को पूरी तरह समझ सकते हैं वे अपने वच्चों को स्कूल की उतनी ही शिक्षा दिलवायेंगे जितनी कि आज के जमाने मे नितांत आवश्यक है। स्कूलों की अंदरूनी हालत पर जरा गौर कीजिये, तव आप स्वयं कहेगे कि लड़के की स्कूली पढ़ाई जितनी कम हो उतना ही अच्छा है। स्कूल कम जाने के कारण लड़के को अच्छा धंधा मिलने मे कोई कठिनाई नही होगी।

भविष्य मे तो फलों की वागवानी आदि अनेक छोटे-छोटे व्यापारों के चल निकलने की आशा है जिनका- करनेवाला स्वतंत्र, सुंदर एवं स्वस्थ जीवन व्यतीत कर सकेगा। तव विज्ञान पढ़ानेवाले स्कूल मे मुक्ति खोजने की आवश्यकता नही है, यह मुक्ति तो प्राकृतिक जीवन के स्वाभाविक परिणाम, अखड शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य और ईश्वर तथा उसके वदों को प्यार करने से मिलेगी।

यही जीवन का सच्चा दर्शन है। अपने तथा अपने वच्चो पर इसका प्रयोग करने से ही इस सदी का हमारा प्रचलित रोग नाड़ी-दौर्वल्य शीघ्रता से जायगा और मनुष्य-जाति पर नूतन आनंद की वर्षा होगी।

अनेक पैतृक दुर्वलताओं के कारण जन्म से वच्चो का शरीर, मन तथा आत्मा स्वाभाविक रूप से कुछ भिन्न होती है। यदि ऐसे वच्चों को माता-पिता अपने इच्छित आदर्श की ओर जवरदस्ती ले जाने

की कोशिश करेंगे तो फल अप्रीतिकर एव घातक होगा।

जैसा बच्चा ईश्वर हमे दे, उसके लिए हमे उसका कृतज्ञ होना चाहिए और उसका पालन एव शिक्षण प्राकृतिक ढंग से, जिसका कि मैंने यहा बयान किया है, करना चाहिए।

इसलिए शिक्षण मे भी हमे प्रकृति से ही पथ-प्रदर्शन प्राप्त करना चाहिए। यह शिक्षण का सबसे आवश्यक सिद्धात है।

: १६ :

उपचार

आरोग्य-लाभ-सबधी विवरणो, धन्यवाद के पत्रो आदि का वस्तुत कोई महत्त्व नही है। अप्राकृतिक साधनो से दिखावटी लाभ आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। प्रत्यक्ष रूप मे तो रोग अच्छा हो जाता है, पर बाद मे उससे भी खराब दूसरा रोग पैदा हो जाता है। यह कोई जरूरी नही है कि यह दूसरा रोग तत्काल प्रकट हो जाय, संभव है, यह पहले जैसा बुरा भी न जान पडे, पर दरअसल यह ज्यादा खतरनाक होता है। बहुत से नि:शक्त लोगों, विशेष कर नाड़ी-दौर्बल्य वालो को सुधार जान पडने लगता है और वे अपने को नीरोग समझकर आरोग्य-लाभ का विवरण भी लिख कर भेजते हैं, पर पीछे भ्रम दूर हो जाने पर उन्हे घोर नैराश्य होता है।

इस के अलावा प्रशसात्मक पत्र प्राप्त करने के लिए चाल-बाजिया भी खूब की जाती हैं। अगर उन पर विचार करे तो हम आसानी से समझ जायगे कि गुप्त और पेटेंट दवाएं बेचने वाले धूर्त लोग किस तरह आरोग्य-लाभ की बहुत-सी रिपोर्टें पेश करते हैं।

इसलिए विचार करने का विषय यह है कि कौन-सी पद्धति कहा तक प्राकृतिक नियमों के अनुकूल है। जो पद्धति प्राकृतिक नियमों का अनुसरण करने वाली होगी, वही स्वास्थ्य की दिशा मे अग्रसर कर सकेगी।

मुझे आशा है कि मेरी पद्धति लोगों का विश्वास प्राप्त कर सकेगी, क्योंकि यह हर पहलू से प्रकृति के अनुकूल पड़ती है। इसी विचार से मै यहा पत्रों का उद्धरण और उपचारों का अधिक विवरण न देकर स्पष्टीकरण के लिए सिर्फ थोडे-से उदाहरण दे रहा हूं।

शोथयुक्त आमवात

श्री…ग्रंथिशोथ से पीड़ित थे। छः महीने पहले भी यह रोग उन्हे हुआ था और (उस समय) निकोटिन विष बुरी तरह इस्तेमाल किया गया था। उन्हे भयकर दर्द होता था और अंग, विशेषकर हाथ, ऐंठकर टेढ़े हो गये थे। उनके चिकित्सक ने तो हवा से बचने के लिए कहा था, पर मैंने उन्हे एक झंझरीदार झोंपड़ी मे रखा। वे निर्वस्त्र कर जमीन पर लिटा दिये जाते थे और वायु-प्रकाश का स्नान भी कई वार कराया जाता था। इस उपचार के वाद गरम विस्तरे पर लिटाकर पसीना लाने के लिए कंवल ओढ़ा दिया जाता था। खाने को गिरी, वादाम, फल, कच्चा दूध, मक्खन और थोड़ी-सी रोटी दी जाती थी।

पहले ही दिन उनका दर्द कम पड़ गया। दूसरे दिन अंग सीधे हो गये, पांचवें दिन टहलने लगे और नवे दिन तो अपना काम शुरू कर दिया।

कठिन नाड़ी-रोग

श्री नौ वर्षों से नाड़ी-रोग से परेशान थे। अंत में वे धनुष्टंकार के भी शिकार हो गये। रोग ने उन्हें जीवन से निराश कर दिया था,

पर एक ही सप्ताह के उपचार से सुधार के लक्षण देख पड़ने लगे। उपचार मे वायु-प्रकाश-स्नान, पृथ्वी से शक्ति-ग्रहण और प्राकृतिक स्नान का क्रम चलाया जा रहा था और खाने को गिरी, फल, दूध, मक्खन और थोड़ी-सी रोटी दी जाती थी। दोपहर तक कुछ नही खाते थे और विना विस्तर के ही जमीन पर सोया करते थे। दस सप्ताह मे वे पूर्णतः स्वस्थ हो गये। उनका खयाल था कि शयनकाल मे धरती से प्राप्त होनेवाली शक्ति वहुत लाभदायक सिद्ध हुई।

सिर का विकार और वहरापन

श्री' का सिर एक मच से गिरने के कारण जख्मी हो गया। उनके शरीर मे एकत्र विजातीय द्रव्य को इस क्षत-स्थान से निकलने का मार्ग मिल गया और वहा कठिन रुग्णावस्था प्रस्तुत हो गई। वे वचपन से ही एक कान के वहरे थे। उसमे नश्तर लगा था और उनके मन मे यह धारणा वैठ गई थी कि कर्ण-पटल काटकर निकाल दिया गया है। इसके अलावा उनकी एक आख भी खराव थी—हर एक चीज धुधली-सी दिखाई देती थी। औपधोपचारको ने जवाव दे दिया था। मेरे उपचार से एक ही पक्ष मे सुधार देख पड़ने लगा। उन्हे केवल सिर के रोग से छुटकारे की आशा थी, पर दूसरे सप्ताह मे उन्हे खराव कान से भी कुछ-कुछ सुनाई देने लगा जिसका उन्होने स्वप्न मे भी खयाल नही किया था। घर जाकर उन्होने उपचार जारी रखा और कुछ दिनो मे उनकी आख की खरावी भी वहुत-कुछ दूर हो गई।

उपचार मे प्राकृतिक स्नान, वायु और प्रकाश का प्राय सारे दिन स्नान, नंगे पाव चलना आदि रखे गये थे। उन्हे खुली झोपडी मे सोने मे वडा आनंद मिलता था। खाने को गिरी, गरम मुल्क के फल, दूध, थोड़ी रोटी और मक्खन दिये जाते थे।

उदर-विकार और सुषुम्ना का क्षय

एक बयालीस वर्ष के सज्जन उदरविकार और सुषुम्ना के क्षय से वर्षों से पीड़ित थे। औषधोपचारकों के कथनानुसार उनके उदर मे घातक अर्बुद था। सुषुम्ना का क्षय उनके चलते समय पैरों के झटके से स्पष्ट हो जाता था। मेरे यहां आने के समय वे कोई चीज-खाने में असमर्थ थे और रात मे उन्हे लगभग चालीस वार कै हुआ करती थी।

वे झंझरीदार झोंपड़ी मे रखे गये और पेडू पर गीली मिट्टी की पट्टी लगाई गई। पट्टी रहते समय तो कै वद रहती, पर हटा लेने पर फिर शुरू हो जाती। इससे रोग मे मिट्टी की प्रभावकारिता स्पष्ट हो गई। कभी-कभी साधारण स्नान कर लेते थे, कुछ समर्थ हो जाने पर वायु-प्रकाश-स्नान भी चलाने लगे।

दस दिनो के वाद मिट्टी की पट्टी वंद कर देने पर भी उन्हे कै नहीं आई। उस समय से उनकी हालत मे सुधार होने लगा। भूख भी अच्छी मालूम होने लगी और विना किसी हिचक के भर पेट फल खाने लगे। उदर-विकार दूर होने पर सुषुम्ना का क्षय भी अच्छा होने लगा।

मूत्रावरोध—जलोदर का पूर्वरूप

श्री ...दो साल से सख्त वीमार थे और इसके कारण उन्हें अपना काम छोड़ देना पड़ा था। कृत्रिम सहायता लिये विना कभी पेशाव नही उतरता था और पैर का शोथ भी शुरू हो गया था। इस समय तक वे कम-से-कम सत्तर चिकित्सकों को अपना रोग दिखला चुके थे जिनमे से लगभग वीस तो प्रसिद्ध प्राध्यापक थे। उन्होने कई पेटेंट दवाओं का भी इस्तेमाल किया था और कुछ हद तक भ्रम मे डालनेवाले आरोग्य-लाभ का अनुभव भी किया था; पर

इन अप्राकृतिक उपचारों से रोग घटने के बजाय बढता ही गया। मेरे यहा आने के समय उनकी बीमारी भयकर रूप धारण कर चुकी थी और वे मौत के डर से जड-से हो गये थे। मूत्र अन्य मार्गों से निकलने का प्रयत्न कर रहा था; यह ऊपर से ही देखने से स्पष्ट हो जाता था। घुटने के नीचे कई जगह खुले फोडे हो गये थे जिनसे बदबूदार पछा निकल रहा था। हालत कैसी खतरनाक थी, यह समझने मे देर न लगी। वे झझरीदार झोपडी मे पहुचा दिये गए जिसमे उन्हे शुद्ध हवा मिल सके। पेडू पर और वृक्कवाले भाग पर मिट्टी की पट्टी लगाई गई जो थोड़ी देर के बाद बदल दी जाती थी। वायु-प्रकाश-स्नान के लिए उन्हे कभी-कभी झोपड़ी से बाहर भी आना पडता था। धरती से शक्ति प्राप्त करने के अवसरो का भी उन्होंने लाभ उठाया। पहले केवल फल खाने को दिये जाते थे, पीछे दूध, मक्खन और रोटी भी दी जाने लगी। इस उपचार से उन्हे दूसरे ही दिन काफी पेशाब उतरा और साथ ही मामूली पाखाना भी हुआ। तीसरे दिन चलने लगे और चौथे दिन तो उनमे दौडने की शक्ति आ गई। दूसरे सप्ताह मे पैर के जख्म सूख गये और वे पहाड पर तीन-तीन, चार-चार घटे चक्कर लगाने लगे।

नाड़ी-क्षोभ

श्री ' ' के नाड़ी-संस्थान मे इतना क्षोभ था कि वे छः मास से काम छोडकर घर बैठे हुए थे। रात को उन्हे जरा भी नीद नही आती थी और बेचैनी के मारे बड़बडाते रहते थे। वायु-प्रकाश-स्नान विशेष रूप से कराया गया। पाचवें दिन वर्षा के कारण ठंड अधिक थी। इससे उन्हे बडा लाभ हुआ। वे बहुत जल्द नीरोग होकर अपना काम करने लग गये। नाड़ी-रोगो मे ठडी हवा और प्रकाश का स्नान बहुत प्रभावकारी होता है।

फुप्फुस-प्रदाह (न्यूमोनिया)

श्री……छः सप्ताह से न्यूमोनिया से पीड़ित थे। उन्हें बड़ी परेशानी थी। औषधोपचार चल रहा था और मेरे यहां आने के पहले तक वे एक कमरे में कैदी की-सी हालत मे रखे गये थे। घातक ठंड लगने का भय उनके दिमाग से निकाल देने पर वे घंटो नगे बाहर घूमने लगे। पहले ही दिन शाम को उनकी तबीयत हलकी जान पड़ने लगी। उनके मत से छः सप्ताह के औषधोपचार से जितना लाभ हुआ था उससे अधिक सिर्फ एक दिन मे सादे तरीको से हुआ। कुछ ही दिनों के उपचार से वे बिल्कुल नीरोग हो गये।

शोथ—जलोदर

श्री……शोथरोग से ग्रस्त थे। उनके चिकित्सकों के मत से रोग असाध्य था। मेरे यहां वे बड़ी मुस्तैदी से वायु-प्रकाश-स्नान चलाने लगे। शोथ के स्थानों, विशेषकर उदर और पैर पर मिट्टी की पट्टी का प्रयोग किया गया। झोपड़ी के परदे रात को यथासंभव खुले रखे जाते थे। आहार भी प्राकृतिक रखा गया। पहले ही सप्ताह में अच्छा फल दिखने लगा और वे शीघ्र ही नीरोग हो गये।

श्री……का जलोदर सिर्फ बारह दिन उपचार करने पर चला गया। इतनी शीघ्रता से नीरोग हुआ देख उनका औषधोपचारक अवाक् रह गया।

गले का रोग

श्री……गले के रोग से वर्षों से पीड़ित थे। औषधोपचार से उन्हे अबतक कोई लाभ नही हुआ था। उपचार के और साधनों के साथ गले पर गीली मिट्टी का प्रयोग करने पर उन्हें जल्द ही आरोग्य-लाभ हो गया।

सिर की रूसी

कुमारी ' ·· के सिर मे रूसी पैदा हो गई थी। फलाहार, वायु-प्रकाश-स्नान आदि के द्वारा शरीर को विजातीय द्रव्य से मुक्त करने का प्रयत्न किया गया। सिर पर गीली मिट्टी की पट्टी भी लगाई जाती रही जो उसे वहुत अनुकूल जान पड़ी। चार ही सप्ताह मे वह विल्कुल अच्छी हो गई।

सुषुम्ना का क्षय

श्री··· ' सुषुम्ना के क्षय से ग्रस्त थे। एक प्रसिद्ध चिकित्सालय मे चौदह सप्ताह रहे, पर कोई लाभ नही हुआ। वायु-प्रकाश-स्नान से उनकी शक्ति वहुत वढ गई। पैरो पर गीली मिट्टी का प्रयोग किया गया। शीघ्र ही सुधार देख पड़ने लगा। दो सप्ताह वाद वे लगातार घंटों टहलने लगे। चलते समय पैरो का झटका कम पडता जाकर विल्कुल दूर हो गया।

दंत-पीड़ा

श्री ··· 'भयंकर दंत-पीडा से हफ्तो से वेचैन थे। दतोपचारको ने दांतों के गड्ढो को भरकर पीड़ा-नाशक दवाओ का भी इस्तेमाल किया, पर किसी से कोई लाभ नही हुआ। दर्दवाले दात के सामने गाल पर मिट्टी की पट्टी देने पर कुछ दिनों मे दर्द विल्कुल दूर हो गया। मिट्टी कभी धोखा नही देती, दर्द के कारण को ही दूर कर देती है।

अस्थि क्षय

श्री ·· के पैर की अस्थि क्षयग्रस्त थी। वे छ' महीने अस्पताल मे रहे, दो वार नश्तर लगा और नीचे की एक हड्डी भी निकाल दी गई, फिर भी पैर अच्छा नही हुआ। अगर उन्होने मेरे उपचार का सहारा न लिया होता तो शायद पैर काटकर अलग भी कर दिया गया होता। वायु-प्रकाश-स्नान, फलाहार आदि के साथ गीली मिट्टी के

प्रयोग से वे विल्कुल नीरोग हो गये। निकाली हुई हड्डी की जगह नई हड्डी तो नही वैठाई जा सकती थी, पर पैर विल्कुल नीरोग हो गया और वे लंगड़ाते हुए उसका उपयोग भी करने लगे।

आंत्रिक(टायफायड) ज्वर

एक दस बरस का वच्चा आंत्रिक ज्वर से ग्रस्त हुआ। उस की माता ने पत्र द्वारा मेरी राय पूछी। मैंने खिड़किया खुली रखकर नग्न सुलाने, भोजन वंद कर देने या नाममात्र का देने और रोज- मामूली स्नान कराने को कहा। इस उपचार से वच्चा दो-तीन दिनों मे ही अच्छा हो गया। माता ने औषधोपचारक से कहे बिना चुपके-चुपके यह उपचार किया। खतरनाक वुखार से अत्यल्प समय मे ही बच्चे का मुक्त देखकर चिकित्सक को वडा अचंभा हुआ। उसने अपने आश्चर्य पर यह कह कर परदा डालने की कोशिश की कि निदान में गलती हुई होगी, यह आंत्रिक ज्वर नही था, हालांकि वह पहले कह चुका था कि बदन पर नजर आनेवाले दाग आंत्रिक ज्वर के ही सूचक है। अगर रोग का चिह्न प्रकट होने के साथ ही ठीक उपचार हुआ होता तो कुछ ही घटों मे वह अच्छा हो गया होता।

साधारण निर्वलता

कुमारी···नाड़ी-सस्थान की अस्तव्यस्तता के कारण वहुत कमजोर हो गई थी और उसका सिर वरावर भारी रहा करता था, वह वहुत कम चल पाती थी। जंगवार्न मे उपचार करीने पर दो ही सप्ताह मे वह विना थकावट महसूस किये ग्यारह घंटे रोज चलने लगी। इससे यह सिद्ध हो गया कि फलाहार, वायु-प्रकाश-स्नान आदि से शक्ति प्राप्त होती है। साधारणतः यही विश्वास किया जाता है कि मासाहार से ताकत वढ़ती है, तथाकथित शक्तिवर्द्धक मांसाहार ही उक्त कुमारी की निर्वलता और अस्वस्थता का कारण हुआ।

फलाहार के सहारे वह जल्द ही स्वस्थ और सशक्त हो गई।

मूर्च्छा

श्रीमती···को मूर्च्छा हो गई थी। गरदन पर गीली मिट्टी की पट्टी रखने पर उन्हे फौरन होश हो गया। इससे स्पष्ट है कि मिट्टी की पट्टी रोजमर्रा के जीवन मे भी लाभदायक होती है।

भगंदर

श्री को भगदर हो गया था और मेरे यहा आने के पहले नश्तर भी लगाया जा चुका था। मुझे उनकी अवस्था चिंताजनक जान पडी। वे बैठने के लिए हमेशा अपने साथ रवर का तकिया लिये चलते थे। मुझे भी उनके नीरोग होने की आशा नही थी; क्योकि मिट्टी की पट्टी रुग्ण भाग तक नही पहुच सकती थी और वाहर से भी उस पर कोई प्रभाव नही डाला जा सकता था, फिर भी मिट्टी की पट्टी का ही प्रयोग किया गया और इसी से वे अच्छे भी हो गये।

अधता

श्री की एक आख कुछ दिनो से विल्कुल अधी हो गई थी। औषधोपचारको की सारी कोशिशें वेकार सावित हुई। मेरा उपचार चलाने पर कुछ ही दिन वाद उन्हे कुछ-कुछ दिखाई देने लगा। कुछ हफ्ते वाद आख बिलकुल अच्छी हो गई। मिट्टी की पट्टी ने इसमे भी आश्चर्यजनक कार्य कर दिखलाया। उनके घर पहुंचने पर उनका चिकित्सक मेरे उपचार की यह सफलता देखकर अवाक् रह गया।

वाल-विसूचिका

एक ढाई साल के वच्चे को (वाल) विसूचिका हुई। उसको ज्वर हो आया। माता प्राकृतिक उपचार की पुरानी पद्धति से परिचित थी। उसने दो वार शीतल स्नान कराया जिससे वुखार

कम हो गया, पर फिर वढ गया। दूसरे दिन उसका पिता, जो मेरे सरल ढंग से परिचित था, घर आया और वच्चे को खुली खिडकी के सामने डेढ़ घंटे नग्न अवस्था मे अपनी गोद मे रखा जिससे बुखार वहुत कम हो गया। दूसरे दिन ज्वर फिर कुछ वढा, पर वायु-प्रकाश-स्नान कराने पर रोग पूर्ण-रूप से चला गया।

वालविसूचिका होने पर माताएं वहुत घवड़ा जाती हैं और औषधोपचार द्वारा नन्हे-से शरीर को हानि पहुंचाई जाती है। मेरी पद्धति मे शत्रु का धीरता-पूर्वक सामना किया जाता है और भय का नाम भी नही रहता; क्योंकि स्वयं प्रकृति हमारा मार्ग-प्रदर्शन करती है जो हमारा साथ नही छोड़ती। चंद दफा हवा और प्रकाश का स्नान, जिसके लिए किसी यंत्र, कवल आदि की कोई जरूरत नहीं होती और कुछ खर्च भी नही पड़ता, वच्चे को विल्कुल नीरोग कर देता है और वच्चा जोश मे भरकर उछल-कूद मचाने लगता है।

जननेन्द्रिय के रोग

श्री···को वर्षो से नाड़ी-दौर्वल्य था। सिर वरावर भारी रहा करता था जिससे वे काम करने मे असमर्थ हो गये थे और जीवन से ऊवकर आत्महत्या की ही वात सोचा करते थे। औपधोपचारकों के निदान परस्पर-विरोधी थे और सवने रोग का दूसरा-ही-दूसरा कारण वतलाया। मेरा उपचार आरंभ करने पर शीघ्र ही परिवर्तन देख पड़ा। एक पक्ष के वाद सूजाक उभर आया। उन्होने वतलाया कि कुछ वर्ष पहले एक लड़की से संवंध होने पर यह रोग हुआ था और एक लेप का प्रयोग किया गया था। मेरे उपचार से सूजाक जल्द ही अच्छा हो गया और उसके साथ ही नाड़ी-दौर्वल्य भी जाता रहा। शक्ति प्राप्त हो जाने पर फिर जीवन मे दिलचस्पी पैदा हो गई।

यौन-अनैतिकता मनुष्य को सबसे अधिक हानि पहुंचाती है। यह भ्रष्टाचार आज बहुत से रोगो का कारण हो रहा है। यौनरोग जननेन्द्रियो मे ही उत्पन्न होते है और उनका पहला रूप सूजाक है। यह एक प्रकार से तीव्र यौनरोग कहा जा सकता है। मूत्रनलिका में प्रतिश्याय हो जाता है और मवाद के रूप मे उससे विष निकलने लगता है।

जीवन सयत न रहने पर सूजाक से छुटकारा नही मिलता और औषधोपचार से तो विष शरीर मे स्थायी रूप से अड्डा जमा लेता है। इससे अधता, क्षय, घातक अर्बुद आदि भयकर रोग हो जाते हैं इसलिए मनुष्य को इस प्रकार के दुष्कर्म से बचने का प्रयत्न करना चाहिए और यदि भूल से रोग हो ही जाय तो आरभ होने के साथ ही सही प्राकृतिक उपचार कराना चाहिए।

उपदश और तज्जन्य व्रण सूजाक से भी खतरनाक होते हैं। उनकी पहचान जननेन्द्रिय पर हुए फोडे से हो सकती है। अगर इन पर जल्द ध्यान न दिया जाय तो शरीर मे विष तेजी से बढने लगता है और विभिन्न रूपो मे प्रकट होता है। सारे शरीर मे, यहा तक कि मुह के अदर भी, फोडे हो जाते हैं जिससे मनुष्य को समाज का त्याग कर देना पडता है। यह विप अपस्मार, उन्माद, सौषुम्निक क्षय आदि रोगो के रूप मे भी प्रकट हो सकता है।

ये सब बुराइया विशेषकर पारे के प्रयोग से ही उत्पन्न होती हैं। यह शरीर के विष को निकाल बाहर करने मे तो असमर्थ बना ही देता है, ऊपर से और भयकर विष के रूप मे शरीर मे पहुंच जाता है। इसके उपचार मे पारे का प्रयोग प्रकृति के नियमो के विरुद्ध और मानवता के प्रति भयकर अपराध है।

उपदश भी प्राकृतिक उपचार से अच्छा हो जाता है। रोग

हाल का होगा तो जल्द ही अच्छा हो जायगा, पुराना हो तो धैर्य और अध्यवसाय आवश्यक होगा ।

मधुमेह

यह रोग भी वहुत भयकर होता है । औषध-विज्ञान इसमे खास तौर से मांसाहार की राय देता है, पर इस तरीके से मधुमेह कभी अच्छा होते नही देखा गया । और रोगो की तरह यह भी अप्राकृतिक जीवन का ही परिणाम होता है । मांसाहार-सवंधी उक्त गलत धारणा के कारण रोगियों को फलाहार पर लाना कठिन होता है । इस धारणा का शीघ्र अंत कर लोगों को यह हृदयंगम कर लेना चाहिए कि रोगो मे कोई अतर नही होता और सवका उपचार प्रकृति के नुस्खे के मुताविक होना चाहिए । जव मनुष्य को उपचार के सही तरीके का पता चल जायगा तो मधुमेह से डरने का कोई कारण नही रहेगा ।

फोड़े

श्री ...को दो साल से सारे शरीर मे फोड़े हो गये थे । अब तक वे पेटेंट लेपो का प्रयोग कर उनसे पिंड छुडा रहे थे । पिंड क्या छुडा रहे थे, एलोपैथिक लेपो के सहारे विकृत द्रव्य को वाहर न निकालकर शरीर मे लौटाते जा रहे थे । इस अप्राकृतिक उपचार का परिणाम यह हुआ कि उनका वायां पैर इतना सूज गया कि वे चलने-फिरने से लाचार हो गये । जांघ के ऊपरी हिस्से पर विजातीय द्रव्य का इतना अधिक असर हुआ था कि वह विल्कुल काला पड़ गया था । स्थिति चिंताजनक थी । वहुत से औषधोपचारको ने तो पैर कटवा देना ही अच्छा समझा होता । विश्व-व्यापक उपचार गीली मिट्टी की पट्टी ने इस पर भी अपना कर्तव्य पूरे तौर से निभाया । जांघ के ऊपरी हिस्से—सूजनवाली जगह—पर पट्टी लगाने पर चौथे

दिन सारा विजातीय द्रव्य एकत्र हो गया और वहा से मवाद तथा दूषित रक्त निकलने लगा। वहां एक छेद हो गया और उसी राह से विजातीय द्रव्य रोज सतह पर आने लगा। लगातार पट्टी लगाते रहने पर कुछ दिनो मे जख्म भर गया। पट्टी के साथ-साथ शुद्ध हवा, धूप, वर्षा, फलाहार आदि ने भी विजातीय द्रव्य बाहर निकालने मे मदद की। मवाद निकलते समय रोगी का पेशाब भी रक्त जैसा होता था, जिससे यह स्पष्ट था कि उस मार्ग से भी विकार निकल रहा है।

मेरी पद्धति से उपचार करने पर आरभ मे प्राय· फोडे निकल आते हैं। कारण बिल्कुल साफ है और यह शुभ लक्षण भी है, क्योकि यह इस बात का सूचक है कि मेरे उपचार से मल निकालनेवाले अंगो को उत्तेजन मिला है। जब तक यह चलता रहे तब तक फोडे के संबंध मे कुछ न किया जाय, प्रकृति को स्वय अपनी फिक्र करने के लिए छोड़ दिया जाय। अगर दर्द बढ जाय तो गीली मिट्टी की पट्टी से काम लिया जा सकता है। फोडो का उपचार सिर्फ गीली मिट्टी से होना चाहिए, उन्हे चीरने या खोलने की जरूरत नही है। पकने पर वे स्वयं फूट जायगे और तब उन्हे बहाने मे यह मिट्टी और मदद करेगी।

फोड़ा निकलना शरीर के लिए बहुत लाभदायक है। इसमे कभी-कभी ज्वर भी हो जाता है जो इस बात का प्रमाण है कि शरीर स्वास्थ्य-लाभ की क्रिया मे सलग्न है।

मैने प्राय· देखा है कि लोग गरम पट्टी या गरम पुलटिस छोड़ने के लिए जल्द राजी नही होते। यह प्रकृति-विरुद्ध है; क्योकि गरम सेंक से फोड़ा प्राय· समय के पहले ही पक जाता है। अप्राकृतिक उपचार से शरीर को कुछ-न-कुछ हानि होती ही है। गीली मिट्टी

की पट्टी से ही शरीर को आराम मिलता है और घाव जल्द भर जाता है। अगर पतले सूती कपड़े पर गीली मिट्टी फैला दी जाय तो वह पलस्तर की तरह चिपक जायगी, ऊपर से बांधने की जरूरत नहीं रहेगी।

शिर:शूल

श्री·····वर्षों से शिर:शूल से परेशान थे। रात को गरदन पर गीली मिट्टी की पट्टी लगाने से इस दीर्घकालीन शिर:शूल से उन्हें हमेशा के लिए छुटकारा मिल गया।

दद्रु आदि चर्मरोग

श्री······वर्षों से क्षयकारक चर्मरोग से पीड़ित थे। सारे उपचार निरर्थक सिद्ध हो चुके थे। गीली मिट्टी की पट्टी ने उन्हें रोग से पूर्णत: मुक्त कर दिया।

सर्पदंश

हाल में ही एक ग्राम में एक लड़की को घास छीलते समय एक बहुत विषैले सांप ने डस लिया। पैर सूजने लगा और उसे बहुत पीड़ा होने लगी। नगर ले जाते समय तक हाथ भी सूज गया और वह बेहोश हो गई। चिकित्सकों के जवाब दे देने पर उसका पिता मुरदे की-सी हालत मे उसे वापस लाया। उसने कभी दंत-कथा के रूप में सुना था कि सदियों पहले सर्प-दंश से इसी अवस्था मे पहुंचा हुआ एक आदमी जमीन मे गाड़ने से अच्छा हो गया था। उसने भी यही करने की ठानी और बाग मे गड्ढा खोदकर लड़की को गले तक नग्न गाड़ दिया। अधिकारियों ने लड़की को निकालने की कोशिश की, पर गांववालों ने पिता का पक्ष लिया और सामूहिक रूप से अधिकारियों का विरोध करने लगे। बलवा होने की संभावना देखकर अधिकारी

चुप हो गये। चौबीस घटे के बाद निकालने पर लड़की बिल्कुल अच्छी पाई गई।

इस घटना से यह स्पष्ट है कि अतिम अवस्था प्रस्तुत हो जाने पर भी मिट्टी विष से मुक्त कर देती है। अगर मिट्टी का प्रयोग तत्काल किया जाय और एक-एक घटे पर पट्टी बदली जाती रहे तो सर्प के विष का सारा असर जाता रहेगा।

पागल कुत्ते के काटने पर भी सर्पदश की ही तरह गीली मिट्टी की पट्टी फौरन लगाई जानी चाहिए। प्रोफेसर पास्टर की युक्ति अविश्वसनीय और अनिश्चित है, पर प्रकृति की युक्ति कभी व्यर्थ नही जाती। अगर पास्टर के तरीके से कुत्ते से प्राप्त उन्माद से पिंड छूट भी जाय तो उससे मनुष्य का स्वास्थ्य इतना खराब हो जाता है कि वह कुत्ते के उन्माद से भी भयकर रोग का शिकार हो जाता है।

इन बातो से स्पष्ट है कि मिट्टी कैसी प्रभावकारी वस्तु है। वस्तुतः यह बिना मूल्य की या सस्ती होते हुए भी अनमोल और सर्वसुलभ उपचार का साधन है।

सुषुम्ना का रोग और मोटापा

श्री की नाडियां रुग्ण हो गई थी और सुषुम्ना तो बिल्कुल निष्क्रिय हो गई थी। उनका वजन २१५ पौंड था। मेरे यहा आने के समय उनके बचने की कोई आशा नही थी, पर चार ही सप्ताह मे नीरोग होकर चले गये और अपना कारबार भी शुरू कर दिया। यहा उनका वजन ५५ पौंड घट गया। वे प्राय कमर तक और कभी-कभी सीने तक जमीन मे गाड़ दिये जाते थे। यह उपचार बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ। और सब उपचार भी यथाविधि चलाये जाते रहे।

शोथयुक्त जीर्ण आमवात

श्री ······जीर्ण शोथयुक्त आमवार्त से वर्षों से ग्रस्त थे जिससे उनके अंग गतिहीन हो गये थे। प्राकृतिक उपचार की पुरानी पद्धति से भी उन्हे कोई लाभ नही हुआ और हालत दिनोदिन खराब ही होती गई। उनका एक पैर काटा जानेवाला था ही कि संयोग से मेरी पुस्तक उनके हाथ पड़ गई। स्नान, फलाहार, वायु-प्रकाश-स्नान आदि से उनको इतने कम समय मे आरोग्य-लाभ हुआ कि उनके मित्र देखकर चकित रह गये। पैर की तो रक्षा हो ही गई।

गठिया, कंप, कटिशूल तथा इस श्रेणी के अन्य रोग रक्त के दूषित होने पर ही होते है। प्राकृतिक चिकित्सा के सही तरीके से ये बहुत जल्द अच्छे हो जाते है।

कुत्ते के काटने का घाव

श्री····· को एक बड़े कुत्ते ने काटा था जिससे दो घाव हो गये थे। एक घाव तो इतना बड़ा था कि देखने वाले को यह विश्वास ही नहीं होता था कि वह कुत्ते का काटा हुआ है। वह लगभग पौने दो इंच बड़ा और पौन इंच गहरा था। कुत्ते ने वहां का मांस नोच लिया था।

कुत्ते का काटना घाव से ज्यादा खतरनाक होता है इस कारण उनके मित्र बहुत चिंतित थे। मैंने घाव को ठडे पानी से खूब तरकर गीली मिट्टी की पट्टी लगा दी और ऊपर से गीले सूती कपडे से उसे बांध दिया। पट्टी रोज सुबह बदल दी जाती थी। वे मेरे बताये हुए नियमों के अनुसार प्राकृतिक ढंग से रहते थे और बराबर चलते-फिरते, दौड़ते और पहाड पर चढते रहे, पर कभी किसी तरह की तकलीफ नही हुई। छोटा घाव तो दूसरे ही दिन भर गया, बड़े घाव के कारण भी उनको कोई कष्ट नहीं हुआ और न उसमे सूजन ही

हुई। तीन सप्ताह मे बड़ा घाव भी भर गया। पट्टी खोलने पर उसमे से बदबूदार पंछा निकला करता था। मिट्टी घाव के जरिये सारे शरीर के विकृत पदार्थ को खीच लेती है, इसी कारण वह सर्पदश आदि मे लाभदायक होती है। इस प्रकार के जख्मो मे तवाकू, शराव आदि मादक वस्तुए वहुत हानिकारक होती है।

सारे मासाहारी जीव हिंस्र होते है, पर हिंसा की यह प्रवृत्ति क्षुधा की तृप्ति के लिए ही जाग्रत होती है। मासाहारी पुरुषो मे यह प्रवृत्ति वडे घृणित रूप मे व्यक्त होती है। मनुष्य के लिए मासाहार प्राकृतिक नही है इसलिए इससे विचारों और भावनाओ का विकृत होना स्वाभाविक ही है। इसके अलावा एक और राक्षस मद्य के रूप मे लोगो मे घुसा हुआ है जो वहकाकर सर्वनाश किया करता है। मनुष्य केवल आहार के लिए हत्या नही करता, वह अपने भाइयो पर भी हाथ साफ किया करता है।

मनुष्य की हिंस्र प्रवृत्ति का नियमन करने और इसकी भयकरता कम करने के लिए ही युद्धकला विकसित की गई है। युद्ध मे मनुष्य को अपनी रक्तपिपासा शान्त करने का अवसर मिलता है। रक्त की नदिया वह चलती हैं और विजय के हर्षनाद मे मरते हुए लोगो के कराहने की आवाज और भग्नहृदय पुत्रो, पिताओ, माताओ और स्त्रियों के आर्तनाद मिले रहते है। अगर मनुष्य की हिंस्रवृत्ति को खुलकर खेलने का अवसर मिले, शातिप्रिय सरकारे उसे रोकने मे समर्थ न हो सकें तो उस हालत मे मै लोगो का ध्यान मिट्टी की ओर आकृष्ट करूंगा। घायल सैनिक के लिए मिट्टी सुलभ है। वह अपनी लार से इसे भिगो सकता हैं। अगर गोली नही निकलती तो उसे पडी रहने दीजिए, उसे निकालने के लिए चीर-फाड करना हानिकारक ही नही, खतरनाक भी होता है। जख्म पर गीली मिट्टी की पट्टी

लगा देने पर तकलीफ दूर हो जायगी और वह अच्छा होने लगेगा। अगर गीली मिट्टी का प्रयोग किया जाने लगे तो युद्ध-क्षेत्र के अस्पताल मे अंग-भग करने की उतनी जरूरत नही रहेगी और जख्मो के कारण होने वाली मृत्यु-संख्या भी कम हो जायगी।

श्री ·····भीषण नाड़ीविकार से ग्रस्त थे। किसी उपचार से कोई लाभ न होने पर उन्होने तीन मास मेरा उपचार चलाया। वचपन मे उन्हें कोई वालरोग नही हुआ था और वाद मे भी कोई तीव्र रोग या जुकाम नही हुआ था। उन्होने इसे अच्छे स्वास्थ्य का लक्षण माना था; पर असल वात यह थी कि उनका शरीर तीव्र रोगों या जुकाम के जरिये विजातीय द्रव्य वाहर निकालने मे समर्थ नहीं था। नाड़ी-रोग का यही कारण था। अगर उन्होने प्राकृतिक उपचार का सहारा न लिया होता तो किसी पागलखाने मे होते या कब्र मे। उपचार आरभ होने पर उन्हे वडे-वडे फोडे निकलने लगे। इसके बाद छोटे-छोटे तीव्र रोग शुरू हुए और विसूचिका के लक्षणों से युक्त अतिसार भी हुआ। इन सवसे उनको कुछ आराम ही मिलता गया। अंत मे भयंकर इन्फ्लुएंजा प्रकट हुआ। चेहरा विवर्ण हो गया और कमजोरी भी वढ गई। वर्षा और अधिक ठंड होने पर भी वे खुली झोंपड़ी मे रखे गये। कभी-कभी आधे घटे तक वायु-प्रकाश-स्नान भी चलाते रहे। वे शायद ही कुछ खाते थे। साधारण स्नान भी चलता था। उस झोपडी मे कुछ ही घंटों तक रहने पर उन्हें वडा आराम मालूम हुआ। विजातीय द्रव्य ढीला पड़कर मुह और नाक से निकलने लगा और पसीना आना भी शुरू हो गया। इसके अनंतर ज्वर उतर गया और उन्हे ऐसा जान पड़ा जैसे स्वास्थ्य की दिशा में काफी आगे वढ गये हों।

क्या यह सीधा-सादा और सस्ता उपचार नही है? वहुत से लोग

इन्फ्लुएंजा का अप्राकृतिक उपचार कराकर काल के शिकार हो जाते है और जो बच जाते है उनकी हालत मरे हुए लोगो से भी खराब होती है, क्योकि हलका तीव्र रोग जीर्ण रोग मे परिणत हो जाता है और वे जीवन मे तरह-तरह के कष्टो और रोगों के शिकार होते रहते हैं।

यह खयाल करना कि केवल सबल व्यक्ति खुली हवा से लाभ उठा सकता है, भ्रम है। हवा कभी किसी को किसी भी हालत मे नुकसान नही पहुचाती। कम ताप मे वायु-प्रकाश-स्नान से निर्बलो को शक्ति-वृद्धि की अनुभूति होती है, यह बात यदि ब्रह्मा भी आकर कहे तो किसी को विश्वास नही होगा। जो व्यक्ति इस प्रकार की झोंपड़ी मे रहने का प्रबन्ध नही कर सकता उसे रात में कमरे की खिड़कियां खोलकर सोना चाहिए और नग्न शरीर मे वायु-प्रकाश लगने देना चाहिए। अगर सबल व्यक्ति के लिए हवा और प्रकाश आवश्यक है तो निर्बल और अस्वस्थ के लिए तो इनकी आवश्यकता और भी बढ़ जाती है। रोग मे वायु हानिकारक होती है, यह धारणा बड़ी हानिकारक है। बच्चो को मसूरिका, रक्तपित्त आदि रोग होने पर खिड़कियां बद कर हवा और प्रकाश का प्रवेश बद कर दिया जाता है या उन्हे जल्द खुली हवा मे नही जाने दिया जाता, पर इससे बच्चो का जीवन दु.खमय हो जाता है। वे अन्धता, बेधिरता, मानसिक दौर्बल्य आदि के शिकार होते रहते हैं या कब्रिस्तान मे कब्रो की सख्या बढाते है।

एक लड़के को मसूरिका निकलने पर कमरे की खिडकिया बराबर खुली रखी गईं, वायु-प्रकाश का स्नान कराया गया और तीसरे ही दिन मैदान मे निकाला गया। घर तथा पड़ोस के सभी लोग मां-बाप के इस कार्य पर बुरा-भला कहने लगे और औषधोपचारक ने तो

यहां तक कहा कि अगर छः महीने तक भी कोई खरावी नहीं देख पड़ी तो भी इस का नतीजा बुरा ही होगा। मसूरिका निकले कई साल हो गये, पर बच्चा प्राकृतिक ढंग से रहता हुआ संतोषजनक रीति से प्रगति कर रहा है और अपने मां-बाप के आनंद का कारण हो रहा है।

रोग होने पर लोग मनुष्यों द्वारा आविष्कृत दवाओं के लिए चिकित्सकों के यहां दौड़ते हैं जो खुद दर्द और रोग से कराहते रहते हैं। जो लोग ऐसा करते हैं वे चतुर माने जाते हैं और प्रकृति के उपायों की खिल्ली उड़ाई जाती है और जो लोग इन उपायों का सहारा लेते हैं उनपर फबतियां कसी जाती हैं।

उपर्युक्त सभी रोगों मे एक ही तरह का उपचार किया गया, केवल स्थानिक उपचार के लिए गीली मिट्टी के प्रयोग मे कुछ अंतर पड़ा। सबने पेड़ू पर गीली मिट्टी की पट्टी लगाई और नंगे पैर चलने का सबको प्रोत्साहन दिया गया। योग्य व्यक्तियों से मालिश भी कराई गई। मालिश प्रायः साधारण स्नान के बाद हुई और यह बहुत लाभ-दायक सिद्ध हुई।

आरोग्य-लाभ का तरीका सादा होना चाहिए और उसमें वही एक-सूत्रता होनी चाहिए जो स्वयं प्रकृति में है। यह सत्य है कि सभी लोगों में प्रगति एक-सी नही होती, पर इसका कारण पद्धति नही, शरीर में वर्त्तमान जीवनी-शक्ति का अंतर है।

तरह-तरह के रोगों के नामों और लक्षणों के फेर मे पड़कर समय नष्ट करना ठीक नही; जहां कोई रोगसंबंधी लक्षण देख पड़े, प्रकृति के नियमों के अनुसार चलकर आरोग्य-लाभ का प्रयत्न शुरू कर देना चाहिए। आजकल रोगकी परीक्षा करने की विचित्र-सी चाल चल पड़ी है और अप्राकृतिक उपचार चलाने की तैयारी मे ही कई दिन

लग जाते हैं। इस परीक्षा और तैयारी मे जितना समय लगता है उतने में तो रोग से मुक्ति ही मिल जा सकती है।

मैने अब तक जो कुछ कहा है उससे हर एक आदमी को यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि रुग्णावस्था मे क्या करना चाहिए। रोगों से बचा रहकर कैसे जीवन व्यतीत किया जा सकता है, इस पर काफी लिख चुका हूं, फिर भी अगर रोग हो ही जाय तो शात रहिये। मैने प्राकृतिक उपचार के जो साधन बतलाये हैं उनकी सहायता से रोहिणी, आंत्रिक ज्वर, विसूचिका आदि भयंकर रोगो की सारी भयंकरता जाती रहेगी।

हर हालत मे शुद्ध, ताजी हवा की प्राप्तिपर ध्यान दीजिये, गीली मिट्टी की पट्टी का प्रयोग कीजिये, वायु-प्रकाश का स्नान और शीतल स्नान चलाइये, मालिश कराइये, उपवास कीजिये और रोगमुक्त होने पर भरसक अपक्वाहार ग्रहण कीजिये, खुली जगह मे रहिये, नगे पांव चलिये और यथासंभव धरती की शक्ति का उपयोग कीजिये। जिन लोगों ने मेरी बातो का समझदारी के साथ अनुसरण किया होगा वे यह समझ गये होगे कि सभी रोगो मे एक ही तरीका क्यो बरता जाता है और भिन्न-भिन्न रोगो के लिए भिन्न-भिन्न तरीके क्यो नहीं है।

उदाहरणार्थ, अगर कोई व्यक्ति आंत्रिक ज्वर से आक्रात होता है तो पहले तो उसके कमरे की सारी खिड़कियां—सर्दी के दिनों मे भी—खोल दीजिये, इसके बाद प्राकृतिक स्नान कराकर वायु प्रकाश का स्नान कराइये और रोगी चलने लायक हो तो तेजी से टहलाकर, नही तो कंबल ओढाकर शरीर मे गरमी लाने की कोशिश कीजिये। वायु-प्रकाश-स्नान हर मौसम मे कई बार चलाया जा सकता है। यह भरसक मैदान मे ही होना चाहिए, अगर यह सभव न हो तो कमरे मे

ही चलाइये। इसका लाभ तुरंत देख पड़ता है। समय पंद्रह मिनट से लेकर कई घंटोंतक हो सकता है। समय जितना अधिक होगा उतना ही अधिक लाभ होगा। पेडू पर की गीली पट्टी विशेष लाभदायक होती है। यह नाभि से गरमी खीचकर वहां के विजातीय द्रव्य को छिन्न-भिन्न कर देती है। आहार-संबंधी नियमों का पालन तो किया ही जाना चाहिए। यथासंभव खुली हवा मे रहना अच्छा होता है।

विसूचिका का उपचार भी इसी प्रकार होता है। विसूचिका तथा अन्य सभी तीव्र और जीर्ण रोगों मे पेडू पर गीली मिट्टी की पट्टी लगाना लाभदायक होता है क्योंकि यही स्थान ज्वर तथा अन्य रोगों का केन्द्र होता है। मसूरिका, वातकफज्वर, फुप्फुस-प्रदाह आदि मे भी यही उपचार चलाया जाय। अगर रोग जीर्ण (नाड़ी-रोग, क्षय, शोथ या इस प्रकार का कोई दूसरा रोग) है तो प्रकृति के इन्ही उपायों का अवलंबन किया जाय और अरसे तक इन्हे चलाया जाय। क्षय तथा अन्य फुफ्फुसीय रोगों मे मिट्टी की पट्टी सीने पर, शोथ (जलोदर) में सूजे हुए स्थान पर पेट की खराबी मे पेडू पर और यौन रोगों मे पेडू और जननेन्द्रिय पर लगाई जाती है।

फोड़ा आदि चर्मरोगों मे तो मिट्टी की पट्टी ही मुख्य उपचार है, पर इनमें भी सारे शरीर के उपचार पर ध्यान देना चाहिए। अस्वस्थता की तथा अच्छी हालत मे भी दोपहर तक कुछ न खाना लाभदायक होता है। अगर लाचारी हो तो प्रातःकाल अत्यल्प मात्रा मे ही कुछ खाया जा सकता है।

रुग्ण होनेपर सब लोग चारों ओर से तरह-तरह के अप्राकृतिक उपाय और दवाएं बतलाने लगते हैं, पर ये सभी निरर्थक ही नहीं होते, अपने साथ कुछ बुराई भी लाते है, इसलिए चाहे जैसी भी स्थिति हो, केवल प्राकृतिक उपचार का सहारा लीजिये।

अगर संयोगवश आशा के अनुरूप ,बहुत जल्द सुधार न देख पडे तो भी शाति और धैर्य बनाये रखे, घबड़ाकर अप्राकृतिक उपचार का प्रयोग न करने लगे। अप्राकृतिक उपचारों से सच्ची सफलता कभी प्राप्त नही हो सकती; न जानने के कारण हम इनसे अपना बहुत बडा नुकसान कर लेते है।

औषधविज्ञान संक्रामक रोगो का हौआ है और उसने सर्वत्र इसका आतक फैला रखा है, पर जब हम इन भयकर रोगों से भी छुटकारा पा जाते है तो इनसे डरने का कोई कारण नही रह जाता। जो हमारी प्राकृतिक उपचार-पद्धति का अनुयायी है उसके दिमाग से तो सारे असाध्य और सक्रामक रोगो का भय दूर हो ही जाना चाहिए। इस भय से बहुत बड़ा नुकसान हुआ करता है।

इसी सरल, एकरूप प्राकृतिक विधि से लोग अपने स्वास्थ्य की चिता और औषधोपचारक-वर्ग से मुक्ति-लाभ कर सकते है। इस प्रकार लोगो को अपने स्वास्थ्य पर, जो सर्वाधिक मूल्यवान् भौतिक सपत्ति है, पूर्ण अधिकार प्राप्त हो सकता है और अयोग्य, उत्पीड़क औषधोपचारकों की दासता से मुक्ति मिल सकती है।

मानवजाति स्वतत्रतारूपी बहुमूल्य बरदान के लिए बराबर सघर्ष और युद्ध करती रही है। क्या वह अपने शरीर, अपने स्वास्थ्य के सबंध मे स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए प्रयत्न नही करेगी ?

